1998 से निरंतर प्रकाशित

ISSN 2581-446X

वर्ष-8, अंक-5, अप्रैल-मई 2025, ₹100/-

RNI. No. MPHIN/2017/73838

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

28 वर्षों की निरंतर सांस्कृतिक यात्रा का 134 वाँ अंक...

'पद्म श्री' सम्मान से विभूषित
पंडित रामनारायण उपाध्याय केन्द्रित विशेषांक

अतिथि संपादक : प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

‘कला समय’ का ‘डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित’ पर केन्द्रित विशेषांक राज्य संग्रहालय के गरिमामय आयोजन में डॉ. राजपुरोहित के कर कमलों से लोकार्पण

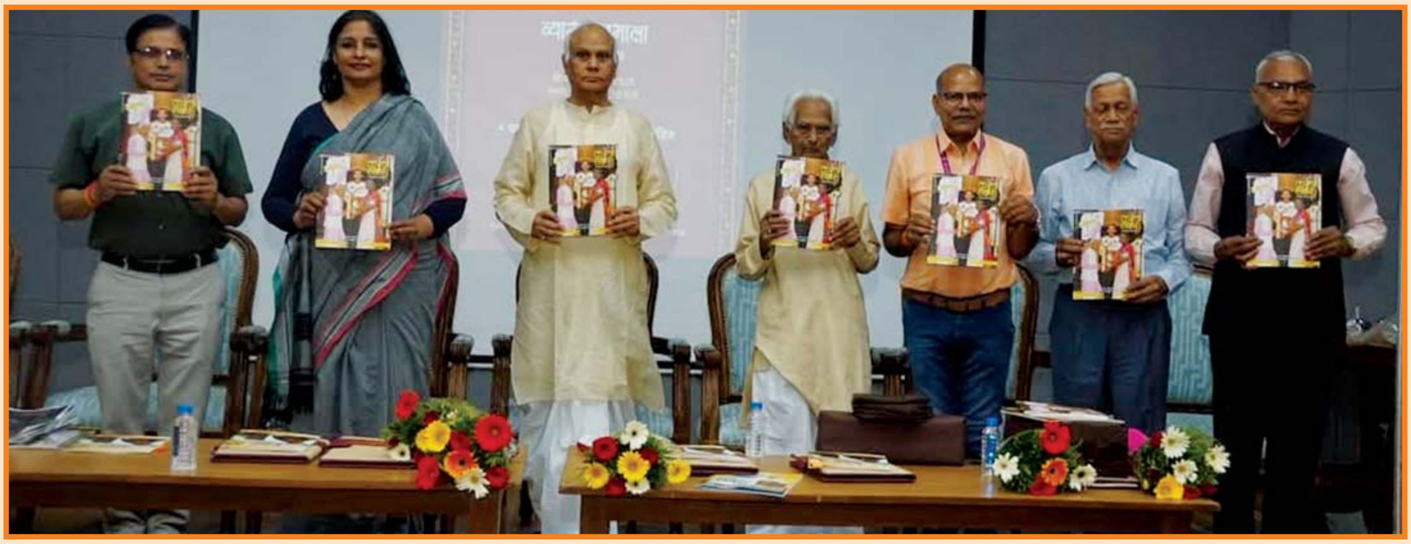

4 मई 2025 भोपाल। डॉ विष्णु श्रीधर वाकणकर की धरोहर को समर्पित दो दिवसीय समारोह का भव्य समापन - प्रसिद्ध पुरातत्वविद् डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर पुरातत्व शोध संस्थान भोपाल द्वारा दो दिवसीय आयोजन का सफलतापूर्वक समापन हुआ। सचिव, म. प्र. शासन संस्कृति विभाग एवं आयुक्त, पुरातत्व के मार्गदर्शन में यह गरिमामयी आयोजन अत्यंत हर्षोल्लास और प्रेरणादायक व्याख्यानों से भरपूर रहा। समापन समारोह की शोभा पद्मश्री डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित एवं प्रोफेसर सीताराम दुबे ने बढ़ाई। जिनकी उपस्थिति ने आयोजन को विशेष बना दिया। अपने प्रेरणादायक व्याख्यान में डॉ. राजपुरोहित ने सम्राट विक्रमादित्य की गौरवशाली परंपरा का वर्णन करते हुए उनकी शिक्षाओं और कथाओं को साझा किया। उन्होंने युवाओं से आह्वान किया कि वे इन ऐतिहासिक प्रसंगों से सीख लेकर जीवन में आगे बढ़ें। प्रोफेसर सीताराम दुबे ने डॉ. वाकणकर की अनुसंधान परंपरा और ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए बताया कि किस प्रकार भीमबेटका जैसी खोजों ने न केवल मध्यप्रदेश की पुरातत्व दृष्टि को समृद्ध किया, बल्कि उसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई। समारोह का विशेष आकर्षण रहा पुस्तकों का विमोचन। डॉ. वाकणकर की जयंती को समर्पित इस अवसर पर तीन महत्वपूर्ण पुस्तकों का लोकार्पण किया गया। पहली पुस्तक वाकणकर संस्थान द्वारा वर्ष 2023-24 में किए गए कार्यों पर आधारित थी। दूसरी पुस्तक कला समय द्वैमासिक पत्रिका डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित को समर्पित थी और तीसरी पुस्तक डॉ. नारायण व्यास प्रसिद्ध भीमबेटका शैलाश्रयों पर केंद्रित थी।

माया-देवी गुप्ता ओपन आर्ट गैलरी में उमेश कुमार गुप्ता की पुस्तक ‘बरसात’ का लोकार्पण

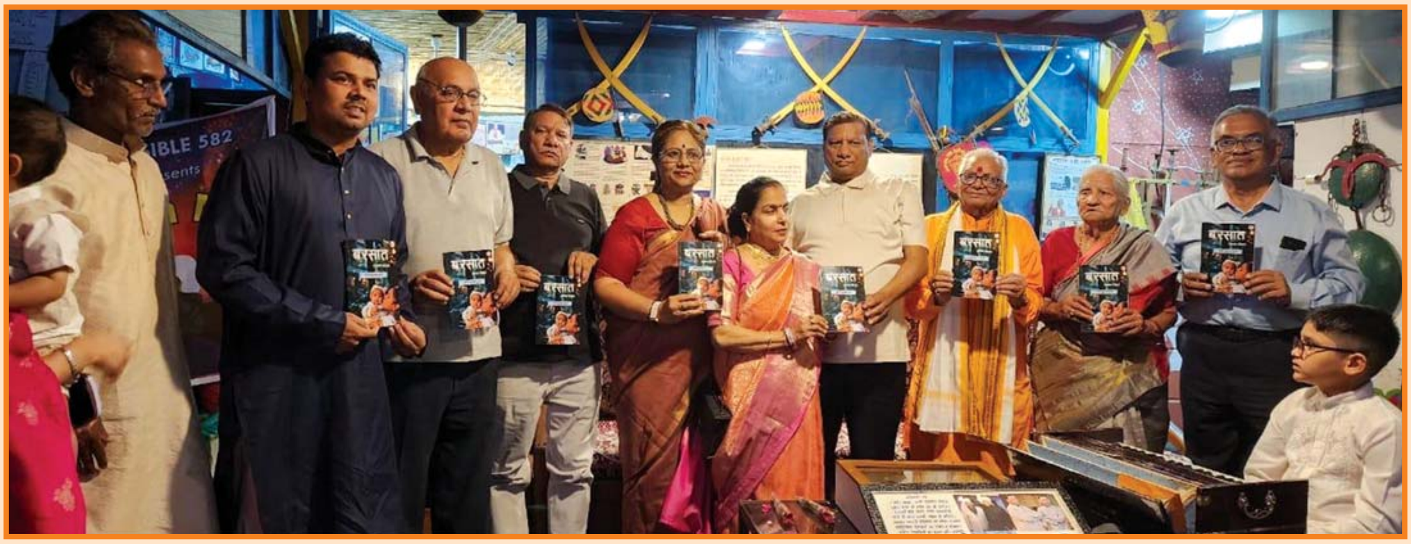

1 अप्रैल 2025 भोपाल। सेवानिवृत्त न्यायाधीश और कला-संवेदनशील साहित्यकार उमेश कुमार गुप्ता के पहले काव्य संग्रह ‘बरसात’ का प्रकाशन हाल ही में BFC पब्लिकेशन द्वारा किया गया। यह संग्रह 104 पृष्ठों में फैली संवेदनाओं की वह दुनिया है, जहाँ बचपन, प्रेम, रिश्ते, विसंगतियाँ, और जीवन के हल्के-गंभीर क्षण, कविताओं के माध्यम से जीवंत हो उठते हैं। गुप्ता जी की कविताओं में प्रेम की मासूमियत, नारी की दृढ़ता, पिता की स्मृति, माँ का स्नेह, और समाज की सच्चाइयाँ अपने विशिष्ट अंदाज़ में प्रस्तुत हुई हैं। उनकी शैली सरल है, पर संवेदनात्मक गहराई से भरपूर। ‘बरसात’ संग्रह अब ऑनलाइन और प्रमुख बुक स्टोर्स पर उपलब्ध है। यह उन पाठकों के लिए है जो जीवन के भीगे पलों को कविता की शक्ल में महसूस करना चाहते हैं।

- संपादक

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+08=28) पूर्णांक-134,

वर्ष-8, अंक-5, अप्रैल-मई 2025, मूल्य : ₹100/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❊ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❊

संरक्षक
विजयदत्त श्रीधर
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
श्यामसुंदर दुबे
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
महेश श्रीवास्तव

कानूनी सलाहकार
उमेश कुमार गुप्ता
(प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा.)

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

रेखाचित्र : मनोहर काजल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग
देवेन्द्र प्रकाश तिवारी

उप संपादक
राहुल श्रीवास
सुन्दरलाल प्रजापति

नरिन्दर कौर
प्रबंध संपादक

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य

अरुण तिवारी
समसामयिक

हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति

सदस्यता सहयोग राशि:

(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त) साधारण डाक

वार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)	साधारण डाक
द्वैवार्षिक	:	1200 (व्यक्तिगत)	1400 (संस्थागत)	साधारण डाक
चार वर्ष	:	2300 (व्यक्तिगत)	2700 (संस्थागत)	साधारण डाक
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)	साधारण डाक

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों, अतिथि संपादकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हो। पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे। सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक, अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

पं. रामनारायण उपाध्याय केन्द्रित विशेषांक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

डॉ. श्यामसुन्दर दुबे

डॉ. श्रीराम परिहार (डी. लिट)

डॉ. पूरन सहगल

प्रो. शहजाद कुरैशी

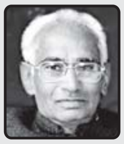
डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

डॉ . राजरानी शर्मा

अशोक मनवानी

डॉ. सुमन चौरे

लक्ष्मीनारायण पयोधि

वसंत निरगुणे

गोविंद गुंजन

डॉ. लता अग्रवाल 'तुलजा'

मधुभट्ट तैलंग

डॉ. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'

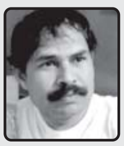
चेतन औदिच्य

डॉ. मीना साकल्ले

डॉ. ममता खेडे

डॉ. शोभा सिंह

पूर्णिमा चतुर्वेदी

कंचन सुरेश चंद्र नेगी

सदाशिव कौतुक

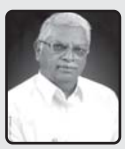
प्राचार्य डॉ विश्वास पाटील

प्रदीप नवीन

हरेराम वाजपेयी

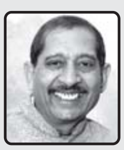
बलराम अग्रवाल

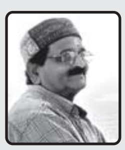
शिशिर उपाध्याय

हेमंत उपाध्याय

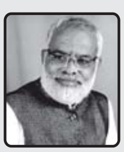
राकेश राणा

मणिमोहन चवरे

डॉ महेशचन्द्र शांडिल्य

इस प्रतिष्ठा विशेषांक के अतिथि संपादक

प्रो. डॉ. शैलेंद्रकुमार शर्मा
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी अध्ययनशाला तथा कुलानुशासक
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
मो. 9826047765

इस बार

- **अतिथि संपादक की कलम से**
  - पद्म श्री से विभूषित पं. रामनारायण उपाध्याय : कालमुखी तीर्थ के... 05
- **संपादकीय**
  - '' पद्म श्री सम्मान से विभूषित ''लोक के प्रेरणा पुरुष : पं. रामनारायण ... 10
- **संस्मरण**
  - जनपद-आन्दोलन के प्रकाशस्तंभ : पंडित / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 13
  - वार्धक्य की बाल सुलभ हँसी/ डॉ. श्यामसुन्दर दुबे 16
  - अनुभव की आँच और चैतन्य कर देने .../ डॉ. श्रीराम परिहार (डी. लिट) 18
  - लोक मनीषी रामनारायण जी/ डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित 19
  - अमृतजीवी लोक पुरुष रामा दादा/ डॉ. पूरन सहगल 20
  - लोक जीवन की पगडंडियों पर चलते सांस्कृतिक ... / गोविंद गुंजन 26
  - दादा से मिलने की प्रबल इच्छा पूरी हुई/ डॉ. मेजर एम.के. गुप्ता 29
  - एक ध्रुव तारा / वसंत निरगुणे 30
  - लोकऋषि पं. रामनारायण उपाध्याय/ डॉ. शोभा सिंह 32
  - दादा रामनारायण उपाध्याय एक संत थे / सदाशिव कौतुक 33
  - प्रेरणा का यज्ञोपवीत पहना गए दादा/ राकेश राणा 34
  - दादा रामनारायण जी उपाध्याय का .../ प्राचार्य डॉ विश्वास पाटील 35
  - निमाड़ी लोक साहित्य के महर्षि / डॉ महेशचन्द्र शांडिल्य 37
  - अजब-गजब थे अपने रामा दादा / राज शेखर व्यास 38
  - निमाड़ी लोक के पथ प्रदर्शक पद्मश्री विभूषित... / महेश जोशी 'अनल' 39
  - दादा का कालमुखी, कालमुखी के दादा/ प्रदीप नवीन 40
  - निमाड़ी संस्कृति के प्रतिनिधि रचनाकारः रामादादा/ डॉ. अखिलेश बाचे 41
  - राम में बसे नारायण/ हरेराम वाजपेयी 42
  - लोक के आलोक : दादा रामनारायण उपाध्याय/ सुरेश पटेल 43
  - उनका हर सान्निध्य एक संस्मरण है/ मणिमोहन चवरे 44
  - दादा रामनारायण उपाध्याय एक युग पुरुष/ सुरेंद्र गीते 44
  - पं. रामनारायण उपाध्याय की लघुकथाएँ / बलराम अग्रवाल 45
  - दादा रामनारायण उपाध्याय ऐसे ही थे/ प्रो. शहजाद कुरैशी 47
  - निमाड़ की महान साहित्यिक हस्ती पद्म श्री विभूषित .../ डॉ. मीना साकल्ले 49
  - लोकजीवन के ध्याता और अध्येता / डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 52
- **स्वजन -परिजन** **54-77**
- **अद्वैत विमर्श**
  - वाङ्मयावतार अद्वैताचार्य जगद्गुरु शंकराचार्य / डॉ . राजरानी शर्मा 78
- **जनजातीय संस्कृति**
  - पारंपरिक गोदना की मान्यताएँ और जनजातीय .../ लक्ष्मीनारायण पयोधि 82
- **कला-अक्ष**
  - ज़िन्दगी की लय लिए रविन्द्र दाहिमा के सेरिग्राफ/ चेतन औदिच्य 84
- **संगीत-चिंतन**
  - मध्य प्रदेश की विलक्षण ध्रुपद गायिका... / डॉ. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग' 86
- **आलेख**
  - बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर / अटल बिहारी वाजपेयी 88
- **कला समय : नवांकुर** **89**
- **पुण्य-स्मरण**
  - साहित्य को ओढ़ना-बिछौना बनाने वाले श्री मदनलाल.../ मधुभट्ट तैलंग 90
- **पुस्तक समीक्षा**
  - जिए हुए लम्हों की बारिश है : संग्रह बरसात/ डॉ. लता अग्रवाल 'तुलजा' 92
- **विविध**
  - आयोजन, समवेत 94-98

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888
मुख्य आवरण - शिशिर कुमार उपाध्याय/ हेमन्त उपाध्याय के सौजन्य से
छायाचित्र -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार, समाचार पत्र
सहयोग- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखाचित्र** : मनोहर काजल
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

पद्म श्री से विभूषित पं. रामनारायण उपाध्याय : कालमुखी तीर्थ के लोकोन्मुखी देवता

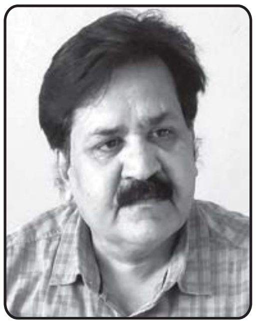

भारतीय लोक साहित्य एवं संस्कृति के अध्ययन, संचयन और अनुशीलन की समृद्ध परंपरा में लोक मनीषी और बहुविधाओं में रचनारत रहे साहित्यकार पद्मश्री पंडित रामनारायण उपाध्याय (20 मई 1918 – 20 जून 2001) का नाम अविस्मरणीय है। वे लोक मनीषी रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, विश्वनाथ काशीनाथ राजवड़े, श्रीधर व्यंकटेश केतकर, साने गुरुजी, डॉ सत्येंद्र, देवेंद्र सत्यार्थी, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ श्याम परमार आदि की परंपरा के समर्थ संवाहक थे, जिन्होंने भारतीय लोक दृष्टि के आलोक में विविध लोक विधाओं को लेकर कार्य किया। पं उपाध्याय सही मायने में पृथ्वी पुत्र थे, माता भूमि पुत्रोऽहंपुथिव्या: को साकार करने वाले। उनके लिए लोक साहित्य कामधेनु की तरह है, वहाँ जिस कामना के वशीभूत होकर जाएँ, वह सहज प्राप्त हो जाता है। उनके लिए लोक गीत मनोभावनाओं का कोमल इतिहास है। जैसे हर व्यक्ति का खास व्यक्तित्व होता है उसी तरह हर लोक गीत का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है और वह अपने लिए विशिष्ट स्थान चाहता है।

लोक भाषा, साहित्य, परम्परा एवं संस्कृति पर शोध – अनुशीलन के लिए प्रचुर सामग्री उन्होंने जुटाई थी, जो इस क्षेत्र में कार्य करने वाले अनुसंधान कर्ताओं के लिए आज भी उपादेय है। उनके द्वारा किया गया लोकभाषा से जुड़ा शब्द भंडार, लोकोक्ति – मुहावरे, पहेली संचयन, लोक गीत और कथा संग्रह, मेलों की सूची, हिंदी में प्रकाशित लोक साहित्य की सूची, निमाड़ के तीर्थ, सन्त परम्परा, सन्तों के जन्म स्थान और समाधियों की परिचयात्मक सूची – ये यह सब मिलकर शोध के लिए कई नवीन दिशाओं को खोलते हैं।

उन्होंने आजीवन निमाड़ का जीवन रस संचित किया। लोक विश्वास, लोक नाट्य, नृत्य, लोक अनुष्ठान, लोकाचार, क्या नहीं सहेजा उन्होंने। सहेज कर उनके मर्म को उद्घाटित भी किया। उनकी रचनाओं में निमाड़ भरे पूरेपन के साथ धड़कता है। निमाड़ की लोक संस्कृति पर विपुल लेखन के साथ उन्होंने निमाड़ लोक संस्कृति न्यास की स्थापना की और आजीवन लोक संस्कृति के प्रचार – प्रसार में सन्नद्ध रहे।

पं उपाध्याय ने हिंदी जगत् को निमाड़ी लोक साहित्य, संस्कृति और इतिहास से परिचित कराने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। लोक संस्कृति, साहित्य और भाषा पर केंद्रित उनकी पुस्तकों में लोक साहित्य पहचान, हम तो बाबुल तेरे बाग की चिड़िया (लोक साहित्य), निमाड़ी और उसका लोक साहित्य, निमाड़ी का लोक साहित्य और संस्कृति, निमाड़ी लोक गीत, निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, जब निमाड़ गाता है (निमाड़ी लोक गीतों का सांस्कृतिक संकलन), लोक साहित्य समग्र, निमाड़ी शब्द कोश, निमाड़ी की अक्षय शब्द सम्पदा, लोक जीवन में राम आदि उल्लेखनीय हैं।

> **"उपाध्याय जी भाषा की अमरता के उपासक हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा है कि एक – एक शब्द मार्कण्डेय की आयु लिए बैठा है। उपाध्याय जी उसे साक्षात् करते हैं। वे निमाड़ी का शब्द कोश तो बनाते ही हैं, वर्गीकृत रूप में शब्द भंडार भी सहेजते हैं। उनकी दृष्टि में जैसे हम लोग समूह में रहते हैं, वैसे ही शब्द भी समूह में रहते हैं, अंतर्क्रिया करते हैं। इस आधार पर उन्होंने शब्दों का वर्गीकरण कर निमाड़ी की अक्षय शब्द सम्पदा को इसी शीर्षक पुस्तक में सहेजा है। निमाड़ और निमाड़ी को केंद्र में रखते हुए उन्होंने सम्पूर्ण देश के लोक का प्रत्यक्षीकरण किया। उनकी दृष्टि में लोक साहित्य, लोक मन की सूक्ष्म अनुभूतियों का महाकाव्य है।"**

उनकी प्रमुख साहित्यिक कृतियों में व्यंग्य, ललित निबन्ध, रेखाचित्र, रूपक, रिपोर्ताज, लघु कथाएँ, संस्मरण आदि विधाओं में पचास से अधिक पुस्तकें शामिल हैं। उन्होंने व्यंग्य विधा में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया। उनके व्यंग्य मधुर और हल्के–फुल्के हैं। अज्ञेय ने उनके व्यंग्यों को जाड़ों की घाम जैसा स्निग्ध बताया है। उनके चर्चित व्यंग्य संकलनों में बक्शीशनामा, धुँधले काँच की दीवार, नाक का

सवाल, मुस्कराती फाइलें, गँवई मन और गाँव की याद, दूसरा सूरज, नया पंचतंत्र आदि उल्लेखनीय हैं। कथेतर गद्य साहित्य में कथाओं की अंतर्कथा, सन्त सिंगाजी : एक अध्ययन (समालोचना), जनम-जनम के फेरे (ललित निबन्ध), मृग के छौने (गद्य रूपक), जिनकी छाया भी सुखकर है तथा जिन्हें भूल न सका (संस्मरण), अनजाने जाने पहचाने (रेखाचित्र), चिट्ठी पत्री (पत्र) आदि प्रमुख हैं। 1974 में प्रकाशित उनके संग्रह नया पंचतंत्र में व्यंग्य के अलावा लघुकथाएँ मानी जाने वाली कई रचनाएँ संकलित हैं।

उन्होंने गांधी विचार से प्रभावित होकर पर्याप्त लेखन किया और स्वतंत्रता संग्राम के मार्मिक प्रसंगों पर भी लिखा। पं. उपाध्याय ने गांधी जी से वर्धा में भेंटकर उनके आश्रम में काम करने की इच्छा व्यक्त की थी। तब महात्मा गांधी ने उन्हें जवाबदारी देते हुए कहा था कि मेरे आश्रम में रहने के बजाए गांव में ही रहकर स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की मदद करो। अधिकांश भारत गांवों में ही बसा है। इसके बाद श्री उपाध्याय जी ने ग्राम कालमुखी में ही रहकर आसपास के क्षेत्र में काम किया और गांधी विचार और साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का सहयोग किया और उन्हें आश्रय दिया। अनेक वर्षों तक गांधी छात्रावास का संचालन किया और छात्रों को गांधी साहित्य उपलब्ध कराया।

स्वतंत्रता संग्राम और गांधी विचार पर केंद्रित उनकी प्रमुख पुस्तकों में स्वतंत्रता संग्राम के प्रेरक प्रसंग, निमाड़ के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, युग पुरुष गांधी, गांधी युग की विभूतियां, गांधी की राह पर, गांधी दर्शन भाग एक, भाग दो, भाग तीन एवं चार, यात्रा की पगडंडियां, बोलता हिंदुस्तान, अहिंसा की कहानी, गांधी जी की विचारधारा आदि उल्लेखनीय हैं। उनकी भाषा - शैली अत्यंत तरल, सहज और प्रभावशाली है, जिसके आकर्षण में सभी वय के लोग बंध जाते हैं। उनके जीवन और व्यक्तित्व पर केंद्रित पुस्तक मामूली आदमी 1987 में प्रकाशित हुई थी, जिसका सम्पादन डॉ शिवशंकर शर्मा ने किया था।

उपाध्याय जी को लोक पर कार्य करने की प्रेरणा लोक में प्रचलित एक गणगौर गीत की इन पंक्तियों से मिली थी :

शुक्र को तारो रे ईश्वर ऊँगी रह्यो
तेकी मखऽटीकी घड़ाओ।

अर्थात् शुक्र का तारा आसमान में चमक रहा है, उसकी मुझे बिंदी घड़वा दो।

विराट श्रृंगार की यह कल्पना उन्हें मुग्ध कर गई थी। फिर तो यह सिलसिला चल पड़ा। उन्होंने निमाड़ लोकांचल में बिखरे ऐसे ही अनेक मणि - माणिक्य जुटाए, जो आज भारतीय लोक विरासत पर गर्व का अवसर देते हैं। उन्होंने अपने एक लेख में इस गीत का उल्लेख किया था, तब प्रसिद्ध विद्वान वासुदेवशरण अग्रवाल ने एक पत्र लिखा था। अग्रवाल जी लिखते हैं, निमाड़ी लोक साहित्य पर आपका लेख पढ़कर बहुत ही प्रसन्नता हुई। निमाड़ी गणगौर का गीत शुक्र को तारो रे ईश्वर उगी रह्यो अकेला लाख गीतों के बराबर है। उसकी विराट कल्पना देखकर मैं स्तब्ध रह गया। आकाश, सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, शुक्र, मेघ, विद्युत - भारतीय आकाश के इन चिरन्तन उपकरणों से लोकगीत की भावात्मा का श्रृंगार हुआ है जो साहित्य में भी कहीं-कहीं देखने में आता है। सचमुच यह निमाड़ी गीत, गीतों का राजा है। कृपया इसके पूरे बोल लिखकर भेजिये। जनपद पत्र में प्रकाशित करूंगा। आपके कार्य की वृद्धि चाहता हूँ। श्री अग्रवाल का यह पत्र उपाध्याय जी की महत्वपूर्ण पुस्तक चिट्ठी पत्री में प्रकाशित हुआ है।

उपाध्याय जी भाषा की अमरता के उपासक हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा है कि एक - एक शब्द मार्कण्डेय की आयु लिए बैठा है। उपाध्याय जी उसे साक्षात् करते हैं। वे निमाड़ी का शब्द कोश तो बनाते ही हैं, वर्गीकृत रूप में शब्द भंडार भी सहेजते हैं। उनकी दृष्टि में जैसे हम लोग समूह में रहते हैं, वैसे ही शब्द भी समूह में रहते हैं, अंतर्क्रिया करते हैं। इस आधार पर उन्होंने शब्दों का वर्गीकरण कर निमाड़ी की अक्षय शब्द सम्पदा को इसी शीर्षक पुस्तक में सहेजा है। निमाड़ और निमाड़ी को केंद्र में रखते हुए उन्होंने सम्पूर्ण देश के लोक का प्रत्यक्षीकरण किया। उनकी दृष्टि में लोक साहित्य, लोक मन की सूक्ष्म अनुभूतियों का महाकाव्य है।

लोक संस्कृति के बदलते स्वरूप को लेकर भी उन्होंने महत्वपूर्ण विचार किया है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि लोक साहित्य में युग के अनुकूल अपने को ढालने और नए युग के मार्गदर्शन की क्षमता होती है। वे किसान से कहते हैं, तुम तो सजीव साहित्य के निर्माता हो। वे लोक की अजस्र शक्ति के विश्वासी थे, इसीलिए इन शक्ति स्रोतों की खोज में तल्लीन रहे, अपने लेखन के जरिये उसकी खोज का आह्वान करते रहे।

दादा रामनारायण उपाध्याय जी ने लोक संस्कृति के अंतरप्रांतीय अध्ययन की राह खोली। उन्होंने पूरे देश के विभिन्न अंचलों के लोक साहित्य का अध्ययन किया एवं स्पष्ट किया कि बेटी की बिदाई का दर्द सभी लोक भाषाओं में एक सा है। उनकी विवेचनाओं में निमाड़ और मालवा के साथ गुजरात, अवध, मिथिला, गढ़वाल- सब एक दूसरे से हिले मिले दिखाई देते हैं। मालवा के साथ निमाड़ का रिश्ता बनाते हुए उन्होंने बहुत सुंदर रूपक रचा है, मालवी को यदि हम बाग - बगीचों में पली शकुंतला कहें तो निमाड़ी अरण्य वनों में से अपनी राह बनाने वाली सीता की तरह है। इसीलिए निमाड़ी में श्रम और संघर्ष प्रधान गीतों का प्राधान्य है। निमाड़ी जन की संघर्षशीलता को उन्होंने भीषण गर्मी के बीच मुस्कुराते पलाश के फूलों से तौला है। इसी चेतना को वे सब जगह देखते हैं। शोषणकारी व्यवस्था के खिलाफ प्रहार करती एक लोक

लघुकथा को वे सुनाते थे, जिस पर जितनी टिप्पणी की जाए, कम ही होगी।

न्हार न बकरी खऽ पूछ्यो
क्यों री बकरी मांस खायगा?
बकरी न कहयो, म्हारोज बची जाय तो बहुत।

पंडित उपाध्याय की दृष्टि में, सूरज सी रेत ज्यादा तपज, या फिर तू आदमी छै की तैसिलदार, या फिर गरीब का छोरा खऽ सरग पर बिगार और फिर उधई का वावल्ला मऽ भुजंग आदि, ये सब कहावतें निमाड़ के आम जन का भोगा हुआ यथार्थ ही तो हैं। उन्हें गांधी जी से जुड़े निमाड़ी लोक गीतों में निमाड़ वासियों की आशा के स्वर सुनाई देते हैं :

ई खोटी पैसों नी खरी चांदी आयऽ।
ई हवा अन्धौळ नी गांधी आय।।

उपाध्याय जी ने निमाड अंचल की संत परम्परा पर भी महत्वपूर्ण कार्य किया। उनकी पुस्तक सन्त सिंगाजी : एक अध्ययन (1965) ने इस अध्ययन क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया। इस पुस्तक में उन्होंने निमाड़ के प्रमुख सन्त सिंगाजी की प्रामाणिक जीवन, पांडुलिपियों की

पं. रामनारायण उपाध्याय जन्म शताब्दी समारोह

मूल निमाड़ी प्रति के अध्ययन के साथ हिंदी अनुवाद पहली बार प्रस्तुत किया। निमाड़ की सन्त परम्परा के आद्य प्रवर्तक ब्रह्मगीर जी, मनरंगीर जी, दलुदास जी आदि के अवदान को भी हिंदी जगत के समक्ष प्रस्तुत करने का आरम्भिक प्रयास उन्होंने किया था। इस पुस्तक में सिंगाजी की परचरी, बाणावली को मूल रूप में प्रस्तुत करने के साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी उपाध्याय जी ने प्रस्तुत किया है। सिंगाजी के भजनों के साथ ब्रह्मगीर जी और दलुदास जी के भजनों की बानगी भी इस पुस्तक में प्रस्तुत की है। पं उपाध्याय जी ने उपलब्ध पोथियों के अलावा लोक मानस में जीवन्त सन्त परम्परा से जुड़े सूत्रों का भी समावेश किया है। सन्त ब्रह्मगीर के जीवन से जुड़ा एक प्रसंग इसी प्रकार का है। सिंगाजी एक गृहस्थ संत थे, जिनके गुरु संत मनरंगीर थे। निर्गुण मनरंगीर ने संत ब्रह्मगीर की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए अपने पदों में ब्रह्म से साक्षात्कार के लिए आत्मबोध पर बल दिया है। यद्यपि उनके भजन अल्प संख्या में मिलते हैं, किंतु वे पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनका एक लोरी गीत बहुत प्रसिद्ध है, जिसके संबंध में श्री रामनारायण उपाध्याय ने एक चमत्कारिक प्रसंग का उल्लेख इस पुस्तक में किया है। एक बार संत ब्रह्मगीर सुक्ता नदी के तट पर ध्यानस्थ बैठे थे, तभी उधर से एक बच्चे का शव बहता हुआ आया। उस शव को संत ने अपनी गोदी में उठा लिया और स्नेहपूर्ण भावों से लोरी सुनाने लगे। मनरंगीर इस लोरी में कहते हैं कि यह पिंजरा / शरीर सप्त धातु का बना है, जिसमें तीन सौ साठ पट्टे डले हैं। सिर्फ एक कड़ी का जड़ाव है, जिस पर यह सारा ठाठ रचा है। हे बच्चे ! तू न तो सोता है न जागता है। तू तो बिना ब्याही का पूत है, जिसके संग में सोहं पुरुष है। वह बाँझ का बच्चा भी झूल रहा है। अनहद नाद हो रहा है और अजपा जाप चल रहा है। तालाब में अष्टदल कमल खिल रहा है। ऐसे ही बच्चे के शरीर में नये प्राणों का संचार हो रहा है। एक लोकमान्यता के अनुसार इस लोरी को सुनते ही बच्चा जी उठा।

सोहं बाला हालरो नित निरमळो
निरमल धारी जोत सोहं बाळा हालरों।
नदी सुकता का घाट पर बाबा बैठ्या ध्यान लगाय
आवत देख्यो पिंजरो बाबा पिंजरो लियो गोद उठाय।
सप्त धातु को पिंजरो वाळा पिंजरो पाटी तीन सौ साठ
एक कड़ी हो जड़ाव की बाला जड़ाव की या पर रचीयो ठाठ।
आकाश झुलो बान्धीयो बाळा बांधियों लाग्या निरगुण डोर
जुगत से झुलो झुलायो बाळा हिच मनरंग डोर।
नहीं रे बाळा तु सोवतो नहीं जागतो बिन ब्याही को पूत
सदा हो सिव जाके संग में झुलऽ बाँझ को पूत।
अनहद घुंघरू बाजीया बाळा बाजीया अजपा को गेह
अस्ट कमल दल खिली रयो जैसा सरवर मेव।

पं उपाध्याय जी का रिश्ता लोक के साथ जितना प्रगाढ़ था, उतना ही शास्त्र के साथ गहरा और आत्मीयता से भरा हुआ था। इसीलिए वे सुदूर अतीत से चले आ रहे पुराख्यानों में भी समयानुरूप और लोकग्राह्य अर्थ तलाशते हैं। कथाओं की अन्तर्कथाएँ (1981) पुस्तक इसी प्रकार की है, जहां उन्होंने पुराख्यानों और लोक प्रवाह में प्रचलित अनेक कथाओं के मानवीय, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक अर्थों को खोजा – खोला है। साथ ही उन्हें रूढ़ अर्थों से मुक्त करने की कोशिश की है। इस पुस्तक में संचित कुछ निबन्धों में उन्होंने वैदिक साहित्य की पुनराख्या की है, इनमें निबन्धों में प्रकृति का महाकाव्य ऋग्वेद, ज्ञान–विज्ञान और आत्मज्ञान की त्रिवेणी उपनिषद्, ज्ञान का समुद्र उपनिषद्, जिज्ञासु बालक नचिकेता आदि प्रमुख हैं। एक निबन्ध में समुद्र मंथन के आख्यान को वे प्रथम समुद्र यात्रा की उपलब्धि के रूप में देखने का आह्वान करते हैं। रामायण और रामकथापरक विवेचनाओं में वाल्मीकि, तुलसी और लोक –साहित्य के राम, राम जो नहीं भूलते, भवभूति का

उत्तररामचरित, विदेह राजा जनक आदि तथा कृष्ण कथा और महाभारत पर केंद्रित उनके लेखों में गणतंत्र के संस्थापक श्रीकृष्ण, अपने कथानक के प्रमुख स्रष्टा और द्रष्टा व्यास, पहले लेखक तथा पहले लिपिक व्यास और गणेश, भारतीय साहित्य का अमूल्य रत्न : महाभारत, युधिष्ठिर का विराग आदि उल्लेखनीय हैं। कृष्ण – सुदामा की मैत्री कथा को केंद्र में रखते हुए वे संकेत देते हैं, मित्र वही है, जिससे पिता की तरह आश्वस्त हुआ जा सके। लोकसेवा के प्रवर्तक – कश्यप, राष्ट्र निर्माता महर्षि पाराशर, ज्ञानदीप साधिका भामती जैसे लेख बड़े रोचक ढंग से भारतीय ज्ञान परम्परा के आधार स्तम्भों के स्मरण के साथ जीवनोपयोगी सन्देश देते हैं।

इसी तरह उन्होंने महाप्रलय से पहले और बाद की दुनिया के महामानव के रूप में मनु की महिमा प्रस्तुत की है। एक कथा में वे ब्रह्मतेज और क्षात्रबल के उपासक के रूप में प्रसिद्ध वसिष्ठ और विश्वामित्र की चर्चा करते हैं। इसी कड़ी में उपाध्याय जी ने क्रांतिकारी ऋषि याज्ञवल्क्य, छत्री और पादत्राण के आविष्कर्तृता जमदग्नि, सत्याग्रही अत्रि और लोकसेवक भरद्वाज की कथा के मर्म को बड़ी सहजता से उद्घाटित किया है।

उन्होंने अनेक धार्मिक कथाओं के प्रतीकात्मक स्वरूप को लेकर महत्वपूर्ण कार्य किया। वे लिखते हैं, हमारे यहां धार्मिक कथाओं को सुंदर प्रतीकों के माध्यम से साहित्यिक शैली में संजोया गया है। लेकिन उन प्रतीकों का सही अर्थ नहीं मालूम होने से वे रूढ़ कथाएं बनती जा रही हैं। ऐसी रूढ़ कथाएं, जो चमत्कृत तो करती हैं, लेकिन जिनसे जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा नहीं पायी जा सकती। आज जैसे वैज्ञानिक युग में जब तक उनका मानवीय दृष्टि से, इतिहास के परिप्रेक्ष्य में – मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जाता, तब तक वे नई पीढ़ी को ग्राह्य नहीं होंगी। इसी आधार पर कथाओं की अंतर्कथाएँ पुस्तक में उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, अश्वत्थामा, भीष्म, अहल्या, वैतरणी आदि कुछ ऐसे ही चरित्रों को केंद्र में रखते हुए प्रतीकों के सहज ग्राह्य और रोचक तात्पर्य दिए हैं जो आज भी प्रासंगिक हैं।

जब विन्ध्याचल ने सिर उठाया कथा के मर्म को उद्घाटित करते हुए उपाध्याय जी ने सुमेरु पर्वत और विंध्याचल पर्वत की स्पर्धा के बहाने उत्तर और दक्षिण भारत के मध्य समन्वय स्थापित करने के लिए अगस्त्य मुनि की अविस्मरणीय भूमिका को रेखांकित किया है। इस अंतर्कथा में उपाध्याय जी संकेत करते हैं कि सुमेरु संस्कृति और विंध्यवासियों की संस्कृति के मध्य कलह की स्थिति की गंभीरता को अगस्त्य ऋषि ने सबसे पहले समझा था। अगस्त्य ने दोनों के मध्य संघर्ष से उत्पन्न खतरे को टालने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने का संकल्प मन ही मन करते हुए कहा, मैं तुम्हारी सेवाओं से खुश हूं और तुम्हारे उन्नत भविष्य की कामना करता हूं। लेकिन देखो, अभी तो मैं अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर जा रहा हूं, जब तक उधर से नहीं लौटूं तब तक इसी प्रकार विनम्र बने रहना। किसी यात्री को नहीं सताना और किसी का मार्ग अवरुद्ध नहीं करना। इसी में से तुम्हारे कल्याण का मार्ग गया है। इतना कहकर वे अपनी पत्नी के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर चले गये और उसके बाद फिर कभी लौटकर नहीं आये।

श्री उपाध्याय जी ऋषि अगस्त्य के इस त्याग पर अर्थपूर्ण टिप्पणी करते हैं, कहते हैं, तब से आज तक विंध्य के अंचल में बसने वाली आदिम जातियां अपने गुरु की याद में इतनी विनम्र बनी हुई हैं कि उत्तर से दक्षिण भारत की यात्रा पर जाने वाले यात्रियों के शोषण और उत्पीड़न को सहकर भी उन्हें अपने हृदय में से आने–जाने का मार्ग दिये हुए हैं और इस बात की प्रतीक्षा कर रही हैं कि कभी तो कोई अगस्त्य लौटकर आयेगा जो उन्हें सिर उठाकर जीने का उनका अधिकार प्रदान करेगा।

आदरणीय रामा दादा अपने प्रियजनों और पाठकों से पंद्रह पैसे वाले कार्ड या अंतर्देशीय पत्रों के माध्यम से नियमित रूप में जुड़े रहे। वे अपने प्रिय साहित्यकार बन्धुओं, पाठकों, परिचितों और नाते – रिश्तेदारों के पत्रों का त्वरित उत्तर देते थे। उन्हें दो ही वस्तुएँ प्रिय थीं, पुस्तकें और पत्र, लेकिन उनकी निगाह में पत्र की महिमा तो अलग ही थी। उन्होंने लिखा है, मुझे अपने जीवन में दो ही वस्तुओं के प्रति मोह रहा है– एक पुस्तक, दूसरे पत्र। पुस्तक तो कहीं से भी खरीद सकते हैं, लेकिन पत्र बिना अपनों के स्नेह के नहीं पा सकते। पत्र क्या है, मानो स्नेह के ऐसे पक्षी जो दूर दूर से अपनों का प्यार लेकर आते हैं, मेरे कमरे का चक्कर काटते और मन–प्राण पर छा जाते हैं। जिस दिन ये आते हैं, इनकी चंचलता देखते ही बनती है। कभी मेरी टेबल पर उधम मचाते, कभी सिरहाने छिपकर बैठ जाते तो कभी जेब के घोंसले से उचक – उचककर झांकते नजर आते हैं और मुझे तब तक चैन नहीं लेने देते, जब तक मैं उनका जबाव न दे दूँ। किसी के खत का जबाव नहीं देना मुझे ऐसा लगता है, जैसे कोई हमारे दरवाजे पर आकर पुकारे और हम घर में होकर भी न बोलें।

उपाध्याय जी की तरह पद्मभूषण पं सूर्यनारायण व्यास, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, कविवर श्री बालकवि बैरागी आदि किसी भी पत्र को निरुत्तर नहीं रहने देते थे। चिट्ठी पत्री की जगह अब ईमेल, व्हाट्सएप, मैसेंजर ने जरूर ले ली है लेकिन अब वह आत्मीयता भरी चिट्ठियां कहाँ, जो उस दौर के रचनाकारों द्वारा लिखी जाती थीं। पं उपाध्याय जी को विशेष स्नेह था हाथ से लिखी चिट्ठियों से, वे लिखते हैं कभी–कभी मेरी डाक में हाथ से लिखे पत्र, काम–काजी चिट्ठियां और छपी हुई विज्ञप्तियां एक साथ आ जाती हैं, लेकिन अपनी सरलता और सादगी के बावजूद हाथ से लिखे पत्र में जो स्नेह होता है, वह और किसी में नहीं। उसके रोम–रोम से मानो प्यार झरता रहता है, और उसका शब्द शब्द मानो यह

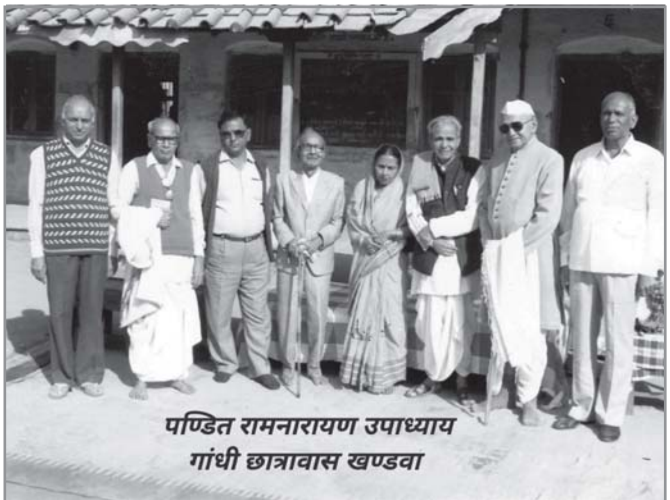

गांधी टोपी और काले चश्में में नगर सेठ पूनमचंद गुप्ता और कत्थई जैकेट में होशंगाबाद के निर्दलीय विधायक पंडित सुकुमार पगारे।

कहता प्रतीत होता है कि मैं सिर्फ तुम्हारे लिए हूँ।

चिट्ठी पत्री की तुलना वे भेंट मुलाकात और बातचीत से करते हैं लेकिन उन दोनों की तुलना में चिट्ठी उन्हें खास दिखाई देती है। वे कहते हैं, जब कोई मिल लेता है तो खुशी होती है, बात कर लेता है तो सुख होता है: लेकिन जब कोई स्नेह के दो शब्द लिख के देता है तो मैं जी जाने का– सा वरदान पा जाता हूँ। कारण, मिलकर तो आदमी मजबूर होता है दो बात करने के लिए, लेकिन बिना मिले भी जिनमें अपनों की याद जगे उस– याद के चरणों में श्रद्धा से नत हूं मैं।

लोक मनीषी पद्मश्री रामनारायण उपाध्याय के जन्म शताब्दी वर्ष के समापन समारोह के अवसर को उनकी परम्परा के समर्थ सार्थवाह सुधी लेखक श्री शिशिर उपाध्याय और परिवारजनों ने अविस्मरणीय बना दिया था। 20 मई 2018 को रामा दादा की जन्मस्थली कालमुखी, खंडवा में हुआ यादगार आयोजन आज भी चलचित्र की भाँति स्मृति पटल पर अंकित है, जिसमें देश के विभिन्न अंचलों के संस्कृतिकर्मी, साहित्यकार और ग्रामवासी और परिवारजन बड़ी संख्या में जुटे थे। भाई शिशिर उपाध्याय, हेमन्त उपाध्याय और परिवारजनों ने पं उपाध्याय जी की कर्मभूमि साहित्य कुटीर के सामने एक गली के मुहाने पर खुला मंच बनाया था, जिसके तीनों ओर आबाल वृद्ध शाम ढलते ही जुटने लगे थे और देर रात तक लोक हृदय सम्राट पं उपाध्याय जी की यादों में डूबते – उतरते रहे।

पण्डित उपाध्याय के जन्मशती वर्ष पर अनेक स्थानों पर महत्वपूर्ण समारोह और संगोष्ठियों का आयोजन हुआ था। वर्ष 2017 में 9 एवं 10 सितम्बर को लोक मनीषी पद्मश्री पं रामनारायण उपाध्याय की जन्मशताब्दी पर उनके अवदान को समर्पित रही था उज्जयिनी में आयोजित अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी जो संजा लोकोत्सव के अंतर्गत संपन्न हुई थी। लोक एवं जनजातीय साहित्य और संस्कृति: अध्ययन और अनुसंधान की नई दिशाएँ पर एकाग्र इस अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में पं उपाध्याय के जीवन, व्यक्तित्व और योगदान पर समन्वयक प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा और पं उपाध्याय जी के भतीजे साहित्यकार श्री शिशिर उपाध्याय एवं बहू श्रीमती जयश्री उपाध्याय ने महत्वपूर्ण वक्तव्य दिए थे।

दादा की कर्म और तपस्थली ग्राम कालमुखी में पद्मश्री विभूषित पं रामनारायण उपाध्याय शताब्दी समारोह की पूर्णाहुति हुई थी। इस अवसर पर डॉ सुमन मनोहर चौरे ने रामा दादा की स्मृतियों में गोता लगाकर अनेक संस्मरण सुनाए थे। डॉ पूरन सहगल, प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा, डॉ सुरेश कुशवाह, श्री शिशिर उपाध्याय ने दीप दीपन किया और दादा के संस्मरणों, व्यक्तित्व और कृतित्व के पृष्ठों को पलटा। अनेक लोक सर्जकों के संवाद और सम्मान का यह मौका अनूठा बन गया था। सभी लोग उस दिन दादा की कर्मस्थली कालमुखी को लोक तीर्थ के रूप में पा रहे थे, जिसका लोकोन्मुखी देवता आसमान में बिखरी चाँदनी के बीच मुस्करा रहा था।

रामा दादा एवं डॉ सुमन जी जैसे अनेक महत्वपूर्ण साहित्यकारों ने विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के हिंदी अध्ययनशाला के वाचनालय को अपना सद्साहित्य, प्राचीन ग्रंथ और अखबार देकर समृद्ध किया था। पं रामनारायण उपाध्याय जी उज्जैन के अनेक साहित्यिक समारोहों में आते थे। उनके साथ अंतरंग संवाद का अवसर मुझे गुरुवर आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी के माध्यम से मिला था, जो आज भी स्मृति पटल पर कौंध जाता है।

देश की प्रतिष्ठित पत्रिका कला समय के इस महत्वपूर्ण विशेषांक के लिए पत्रिका के संस्थापक – संपादक श्री भंवरलाल श्रीवास ने कुछ माह पहले सद्संकल्प लिया और मुझे इसके अतिथि सम्पादन का दायित्व सौंपा था, जिसकी पूर्ति इस विशेषांक में श्री उपाध्याय जी के बहुविध अवदान पर केंद्रित महत्वपूर्ण सामग्री के साथ हो रही है। इस विशेषांक के लिए उपाध्याय जी के भतीजे श्री शिशिर उपाध्याय, श्री हेमन्त उपाध्याय सहित परिवार जनों का आत्मीय और अविस्मरणीय सहयोग मिला है। देश के अनेक सुधी लेखकों ने उपाध्याय जी के साहित्य के पुनर्पाठ के साथ उस पर नए सिरे से विचार और परिश्रमपूर्वक लिखा है, उन सभी के प्रति हम कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। वस्तुत: जहाँ कहीं लोक का मन हास और अश्रु के साथ स्पंदित होगा, रामा दादा वहीं मौजूद रहेंगे।

प्रो. शैलेंद्रकुमार शर्मा
विभागाध्यक्ष, हिंदी अध्ययनशाला कुलानुशासक
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन मध्यप्रदेश

'' पद्म श्री सम्मान से विभूषित ''
लोक के प्रेरणा पुरुष : पं. रामनारायण उपाध्याय

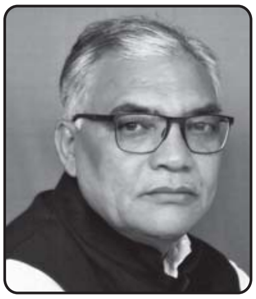

❛ दादा रामनारायण उपाध्याय जी कहते हैं कि ''लेखक और साहित्यकार में फर्क है। लिखने को तो सभी लिखते हैं। आदमी जब विद्यार्थी अवस्था में रहता है तब कुछ न कुछ कवितायें करता ही है जब उसकी शादी हो जाती है, तब वह कहानियाँ लिखने लगता है। उससे भी आगे बढ़ने पर जब वह बाल बच्चेदार हो जाता है तो समीक्षा करने लगता है लेकिन आदमी के सामने जब कठिनाइयाँ या प्रलोभन रास्ता रोक कर खडे हो तब भी जिसका लिखना न छूटे वही साहित्यकार है। ❜

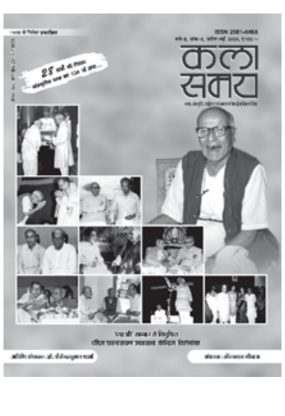

''यदि तुमनें आँसुओं के साथ रोटी नहीं खाई,
पेबंद लगे कोट की व्यथा नहीं सही,
फटे जूते का दर्द नहीं भोगा,
बाँह का सिरहाना लेकर नंगी धरती पर रात नहीं काटी,
तो तुम जिंदगी का स्वाद नहीं जानते।''

- पं रामनारायण उपाध्याय

लोक अनन्त भी है और आँगन भी। वह अनन्त को आँगन में उतार लेता है और घर के आँगन से ही अनन्त की यात्रा करता है। लोक में ही यह शक्ति है कि वह आवाहन न जानते हुए भी सारे देवताओं को एक छोटा-सा चौक पूरकर उसमें प्रतिष्ठित कर सकता है। लोक को जो मिला वह उसी में गुजारा करता है। उसे माटी मिली, उससे अपने बर्तन बना लेता है, चूल्हा और घर बना लेता है। लोक देवता तो कच्ची मिट्टी के ही होते हैं। जिन्हें वह कभी अकेला नहीं छोड़ता। रोज उनके माटी के चबूतरे पर एक दिया जला आता है। उन्हें कोई छोटी सी गाथा सुना आता है। सुमिरन की कड़ियों को बार-बार दुहराता है। लोक जीवन और मृत्यु दोनों को पालता है। लोक ही ममता से भरी हुई हिरणी है और लोक ही शिकारी है। लोक में ही साहस है कि वह देवता को प्रतिष्ठित करके उसे चाहे जब नदी में सिरा दे और विसर्जित करते हुए यह आश्वासन भी दे सके कि अगले वर्ष फिर बुलायेंगे। ऊपर-ऊपर से देखने पर लगता है कि लोक मोहग्रस्त है, हमेशा अपने दुखड़े रोता रहता है। पर वह निष्ठुर भी है। वह समय की नदी में अपने देवताओं और उनसे जुड़े हुए दुखों को रोज बहाया करता है। अगर बहाता नहीं तो लोक कब का मर चुका होता। - ध्रुव शुक्ल के यह विचार आज के समकालीन सहित्यिक परिदृश्य में जबकि विधाएं एक दूसरे से अलग-थलक पड़ गई हैं, उनके आपसी संवाद सूत्र टूट गए हैं और एक दूसरे के ऊपर आश्रित रहने वाले अनुशासनों ने एक-दूसरे से मुँह मोड़ लिया है तब पं. रामनारायण उपाध्याय जी के बहुआयामी सृजन की बड़ी याद आना स्वाभाविक है। उनका एक बेजोड़ रूपक है-

तुम्हें देखा तो
आकाश
पिता की तरह छायादार लगने लगा।
धरती,
माँ की तरह ममतामयी हो उठी
वृक्ष भाइयों की तरह भुजायें बनकर उठ खड़े हुए।
और लतायें
बहनों की तरह आशीर्वाद मयी हो उठीं
कौन हो तुम?

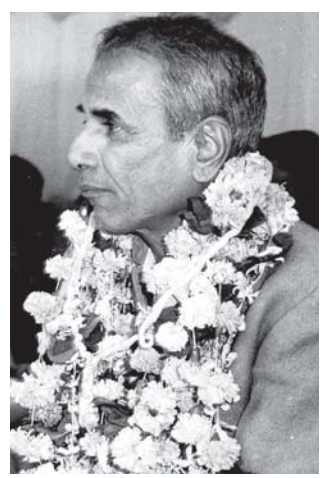

जन्मः 20 मई 1918
निधनः 20 जून 2001

इसी तरह एक और मंर्म स्पर्शी रूपंक अभिव्यक्ति है-

अगर कहीं पर्वत है
तो निश्चित मानिये
आसपास कहीं नदीं भी होगी
बिना हृदय में गहरा दर्द सँजोये
कोई इतना ऊँचा उठ नहीं सकता।

दादा पं. रामनारायण उपाध्याय जी लोक का प्रतिनिधित्व ही नहीं करते थे, बल्कि लोक की आवाज के रूप में

गूँजते थे। उन्होंने निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास लिखा निमाड़ की धरती के बिखरे हुए गीत समेटे कहावतें, मुहावरें उक्तियाँ और सन्तों की जीवनियों को संकलित किया और निमाड़ की अस्मिता को भारत के फलक पर रेखांकित कर दिया। आप महात्मा गाँधी से प्रभावित थे, उनकी प्रेरणा से लेखन कार्य प्रारंभ किया आपकी भाव शैली सहज, सरल प्रभावी रही है। लोक साहित्य आपकी पहचान बन चुका है। वे कहते हैं कि मैं लोक साहित्य के कार्य को लोक का समग्र अध्ययन मानता हूँ। दादा कहते हैं 'जितनी प्राचीन पृथ्वी है, उतना ही पुराना लोक हैं। लोक की गंगा युग-युग से प्रवहमान है लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है उसमें भूत-भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहे है। लोक साहित्य की महत्तता मौखिक से लिखित तक निरंतर प्रवहमान रही है पहले गीत ही प्रार्थना थी बिजली कड़कना, पानी बरसना झरनों की आवाज ने उन लोकगीतों को संगीत दिया। वे कहते हैं गाँव का आदमी निरक्षर भले ही हो पर सुसंस्कृत रहा है। मुझे लगता है कि दादा यदि लोग के होते, लोक के नहीं तो फिर निमाड़ की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहचान नहीं बन पाती। जो व्यक्तित्व लोग का प्रतिनिधित्व करते है, वे अपनी पहचान तो बनाते हैं, लेकिन अपने आसपास के लोक और अपनी धरती की पहचान नहीं बना पाते हैं। दादा ने अपनी पहचान खोकर अपनी धरती की पहचान बनाने के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया।

उनके जाने के बाद स्मृतियों के अगणित बादल इकट्ठे होकर बरस रहे हैं मैं इस बरसात को सहेजूँ कैसे? यह समझ पाना मुश्किल हो गया है। वे नि: संदेह एक सच्चे लेखक थे। पूरी तरह पारदर्शी और केवल लिखने और पढ़ने को ही समर्पित। उनकी पुस्तक निमाड़ी लोक गीत की बहुत ही सुन्दर रचना-

''शुक्र को तारो रे ईश्वर उंगी रह्यो।
तेकी मखऽ टीकी घड़ाव।।
ध्रुव की बादळई रे ईश्वर तुली रही।
तेकी मखऽ तहबोळ रंगाव।।
सरग की बिजळई रे ईश्वर कड़की रही।
तेकी मखऽ मगजी लगाव।
नव लख तारा रे ईश्वर चमकी रह्या।
तेकी मखऽ अंगिया सिलाव।।
चाँद सूरज रे ईश्वर उगी रह्या।
तेकी मखऽ टीकी लगाव।
वासुधी नाग रे ईश्वर देखई रह्यो।
तेकी मखऽ एणी गुथाव।।
बड़ी हठ वाळई रे, गौरल- गोरड़ी।।

भाव-अर्थात - एक दिन रनु अपने पति से हठ पकड़ जाती है और कहती है कि- है पतिदेव! वह जो आकाश में सबसे तेजस्वी शुक्र का तारा चमक रहा है न? उसकी मुझे बिन्दी गढ़वा दो। और यह जो ध्रुव की ओर (उत्तर में) बरसने योग्य बदली छायी हुई है उसकी चूनर रंगवा दो। और सुनो, स्वर्ग में कड़कने वाली बिजली की उसमें मगजी लगवा दो। साथ ही आकाश में चमकने वाले लाखों ताराओं की मुझे कंचुकी सिलवा दो, जिसके अग्र- भाग में चन्द्र और सूर्य जड़े हुए हो। इस तरह बादल और बिजली से लगा, ग्रह - नक्षत्र और चन्द्र-सूर्य से युक्त अपनी चुनर और कांचली बनवाने का आग्रह करने के पश्चात वह एक और चीज माँगती है और वह है अपने केशों में गूँथने के लिए चोटी। लम्बे चिकने काले केश, स्वी के सौन्दर्य के साथ सौभाग्य के लक्षण भी होते हैं। इसलिए वह कहती है- हे पतिदेव! देखो वह जो इठलाता और बलखाता हुआ काले वर्ण का वासुकी नाग दिख रहा न, उसकी मुझे वेणी गुँथवा दो। और इस पर मुस्कराते हुए उसके पति कहते है कि - हे गोरेवर्ण रनु। तु बड़ी हठ वाली है।'' प्रस्तुत लोकगीत में विराट श्रृँगार की कैसी अदभुत कल्पना दादा ने प्रस्तुत गीत के माध्यम से की है ऐसे सैंकड़ों अनुष्ठान गीतों में दादा ने जो भाव पूर्ण चित्रण अपने गीतों में प्रस्तुत किया है उनगीतों को पढ़ते हुए मन बार-बार भाउक कर देने वाला करूणा और वियोग, श्रृंगार रसों से परिपूर्ण गीत सदा-सदा के लिए निमाड़ ही नहीं लोक की इस धरती पर अमर रहेंगे। वे अभावों में जीते थे, बल्कि यों कहें कि अभावों में जी लेने का उन्होंने अपना चरित्र बना लिखा था। नर्मदाप्रसाद उपाध्याय जी कहते हैं- विश्वास रखो 'सुख और दुख के इस समन्दर में से ही हमारे अभावों की किश्ती के पार होने का मार्ग गया है।'' सुख और दु:ख उसके लिए निरर्थक थे। दोनों की लहरें उनके जीवन में आती रही और उन्होंने कभी इन लहरों के साथ भेद नहीं पाला। उनकी एक पुस्तक का नाम ही है'' गंवई मन और गाँव की याद'' में उन्होंने लिखा है। सोचता हूँ आज भी गाँव में सूरज की पहली किरण खुरदुरी दीवारों से अपनी देह खुजलाते हुए बड़ी नजाकत से चौकपुरे आँगन में उतरती होगी। आज भी गाँव में हवा दुध मुँहे बालक की तरह सोधी फसलों की गन्ध लेकर, बिना दखाजे की झोपड़ियों के आस-पास से गुजरती होगी आज भी गाँव की चौपाल पर हरा चना भूनकर खाने का सामूहिक आयोजन चलता होगा और छिलकों की तरह याद की परतें उतारते हुए आदमी अपने सुनहरे अतीत में खो जाता होगा। आज भी गाँव की नदी पर ग्राम-वंधुएँ वस्त्रों के साथ बातों को उलटते-पलटते हुए, अपने मन के मैंल को धो डालती होगी और किसी बाँके नौजवान के नदी में कूद कर तैरते हुए दूर तक चले जाने पर उसके पीछे पानी पर बनने और मिटने वाली लहरों के साथ उनका मन भी अपना घर परिवार और गाँव की याद में तैरता-उतरता होगा। उन्होंने केवल साहित्य ही नहीं लिखा बल्कि साहित्यकारों के बारे में लिखा, उस मिट्टी के बारे में ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में लिखा, जिस मिटी ने उन्हें लोकवार्ताकार बनाया अन्यथा होता यह है कि एक लेखक केवल एक लेखक भर बना रह जाता है और उसकी पहचान केवल उस विधा से हो पाती है, जिसविधा में वह लिखता है, लेकिन दादा पं.रामनारायण उपाध्याय जी के साथ ऐसा नहीं था वे विधा के कारण नहीं बल्कि अपने सर्जक व्यक्तित्व के कारण जाने जाते रहेंगे। वे अपने जीने के ढ़ंग के कारण जाने जाते रहेंगे। वे अपने सहज व्यवहार के कारण हमारी स्मृतियों में चिर स्थाई रहेंगे। दादा के चले जाने से

कुछ बदलना नहीं है, लेकिन यह तथ्य भी उतना ही सही है कि यदि उनके जैसे समर्पित व्यक्ति के अवदान को दर किनार करने की कोशिशे इसी तरह जारी रहीं तो फिर बहुत कुछ अपने आप आने वाली सृजन धर्मिता बदल देगी। इस अवसर पर मुझे कुँवर नारायण जी की यह कविता याद आती है–

बचाना है
नदियों को नाला हो जाने से
हवा को धुँआ हो जाने से
खाने को जहर हो जाने से
बचाना है – जंगल को मरूथल हो जाने से
बचाना है – मनुष्य को जंगल हो जाने से

दादा रामनारायण उपाध्याय जी कहते हैं कि ''लेखक और साहित्यकार में फर्क है। लिखने को तो सभी लिखते हैं। आदमी जब विद्यार्थी अवस्था में रहता है तब कुछ न कुछ कवितायें करता ही है जब उसकी शादी हो जाती है, तब वह कहानियाँ लिखने लगता है। उससे भी आगे बढ़ने पर जब वह बाल बच्चेदार हो जाता है तो समीक्षा करने लगता है लेकिन आदमी के सामने जब कठिनाइयाँ या प्रलोभन रास्ता रोक कर खडे हो तब भी जिसका लिखना न छूटे वही साहित्यकार है। भाषा को सीखना उसके साहित्य को जानना है और साहित्य को जानना मानव–एकता की स्वानुभूति है। साहित्य सृजन केवल रूचि इच्छा या विवश्ता का परिणाम नहीं है क्योंकि इसके लिए एक विशेष प्रतिभा और उसे संभव करने वाले मानसिक गठन की आवश्यकता होती है। वह बहुमुखी दायित्व देने वाला ऐसा रागात्मक कर्म है जिसके कारण साहित्यकार की स्थिति को एक कोण से देखना कठिन हो जाता है। साहित्य का उद्देश्य समाज के अनुशासन के बाहर स्वच्छन्द मानव–स्वभाव में उसकी मुक्ति अक्षुण्ण रखते हुए समाज के लिए अनुकुलता उत्पन्न करना है। यह ऐसा दान है जिसे देखकर भी हम पाते हैं। यह ऐसा स्वार्थ है जिसे पास रखकर भी हम देते हैं। शिकागो की सर्वधर्म सम्मेलन में सब धर्मो की प्रार्थनाओं और में जिसे विशेष महत्वपूर्व माना गया था वह प्रार्थना ब्रह्मवादिनी मैत्रयी जी की है–

''असतो मा सद गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृर्त्योमा अमृत गमय।''

जिन पूर्वजों से हमें धर्म, दर्शन, साहित्य, नीति आदि के रूप में महत्वपूर्ण दायभाग प्राप्त हुआ है उनके प्राकृतिक परिवेश के भी हम उत्तराधिकारी हैं। उनके पर्वत, वन, मरू, समूद्र, ऋतुयें आदि प्राकृतिक नियम से परिवर्तन अवश्य हो गये हैं परन्तु वस्तुत: उनकी रक्षा करना उनसे हमारे रागात्मक संबंध स्थापित करना व्यक्तिगत और सामुहिक कर्तव्य भी है। मानव–जीवन की एकता में आस्थावान जाति के पास मानों सम्पूर्ण आकाश रहता है। उसी प्रकार जैसे– ज्वाला धरती की गहराई में कोयले को हीरा..... बनाने की क्रिया में संलग्न रहती है और सीप जल की अतल गहनता में स्वाति की बूँद से मोती बनाने की साधना करती है। न हीरक धरती की ज्वाला को साथ लाता है, न मुक्ता जल की गहराई को परन्तु वे समान रूप से मूल्यवान रहेंगे।

अतीत में हमारे देश ने अनेक अन्धकार के आयाम पार किये है, परन्तु इसके चिन्तकों, साधकों तथा साहित्य सृष्टाओं की दृष्टि के आलोक ने ही पथ की सीमाओं को उज्जवल रखकर उसे उन्धकार में खोने से बचाया है। साहित्य भाषा ही इस आलोक के लिए संचारिणीं दीपिशिखा रही है। मैं कामना करता हूँ कि मानव हृदय को उदात्त बनाये। उसे पशुत्व से उठाकर देवता की ओर अग्रसर करे। उसे सारे विश्व के साथ एकत्व की अनुभूति होती रहे। एकोऽहम बहुस्याम मैं एक हूँ अनेक हो जाऊँगा ब्रह्म के लिए कहा गया वाक्य मनुष्यों के लिए भी सत्य है। यह इच्छा मनुष्य के सीमित व्यक्तित्व की समष्टिगत असीमता है। अन्त में पूरण सहगलजी के इस वाक्य से अपनी आदरांजलि दादा के श्री चरणों में समर्पित करता हूँ– वस्तुत:वे एक मालगुजार किसान के बेटे थे। निमाड़ी भोले मन वाले किसान के प्रतिनिधि थे। लोक ही उनका देवता था। उसी की सत्ता वे स्वीकारते और सत्कारते थे। उन्होंने स्वयं को जीवन पर्यंतलोकोपासक ही बनाए रखा। लोकोत्तर होने का मोह और भ्रम उन्हें कभी भी नहीं रहा। गाँव का गंवाई रामादादा सबका अपना रामादादा बना रहा। उनका कायागत बौना व्यक्तित्व तब आकाश से भी ऊँचा हो जाता था, जब कोई आकाश उनके चरण छूने के लिए उनके चरणों में झुक जाता था। ऐसे लोक के विराट प्रेरणा पुरूष को 'कला समय' परिवार की ओर से विनम्र आदरांजलि के साथ यह छोटा सा परन्तु विशेष अंक उनके श्री चरणों में समर्पित है।

'कला समय' का यह पद्मश्री अलंकृत लोक के प्रेरणा पुरूष पं. रामनारायण उपाध्याय केन्द्रित विशेषांक के अतिथि संपादक सम्माननीय प्रो. डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा जी, आचार्य एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी अध्ययन शाला तथा कुलानुशासक विक्रम विश्व विद्यालय उज्जैन के जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर सभी लेखकों से जीवन्त संबंधों के माध्यम से एक–एक पुष्प इकट्ठा करके यह गुलदस्ता तैयार करने में कला समय को आपना सहयोग दिया हम उनके प्रति कृतज्ञ है हम आभारी हैं। उन सन लेखकों, जिनमें दादा के परिवार के बेटे–बेटियां भी शामिल है उन्होंने इस विशोषांक हेतु मन से अपनी लेखनी को दादा की यादों को संजोने का भरपूर प्रयास किया मैं उन सभी की भावनाओं को इस छोटे से अंक में समाहित करने का यह छोटा सा प्रयास किया है। आशा है मेरी गलतियों को क्षमा करते हुए इसे स्वीकार करेंगे। 'कला समय' के माध्यम से मैं दादा की यादों का निमित बना यह मेरा सौभाग्य है।

हमें दादा रामनारायण उपाध्याय जी के इस विशोषांक हेतु अपेक्षा से बहुत अधिक संस्मरण–प्राप्त हुए हैं परन्तु पत्रिका की अपनी पृष्ठ संख्या के कारण हम चाहकर भी इस अंक में उनके संस्मरण सम्मिलित नहीं कर पा रहे हैं आगे के अंक में हम ससम्मान प्रकाशित करेंगे।

शुभमस्तु।

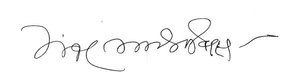

– भँवरलाल श्रीवास

संस्मरण

जनपद-आन्दोलन के प्रकाशस्तंभ : पंडित रामनारायण उपाध्याय

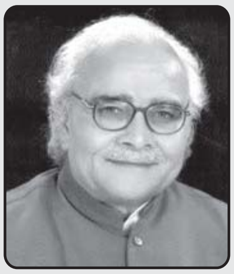

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

आज जनपद-आन्दोलन को लोग भूल गये हैं । पुराने साहित्य-मनीषियों के मन के किसी कोने में भाषा-साहित्य-संस्कृति के लोकतंत्र की वह टेर अवश्य गूँज रही होगी, जिसे जनपद-आंदोलन के रूप में जाना-समझा गया था ! वह क्या कारण था कि हिन्दीसाहित्य के नये अध्येता और स्नातकों ने रोमांटिसिज्म, रियलिज्म, सिंबौलिज्म, नेचुरलिज्म जैसे शत-शत शब्दों और वादों से परिचय पा लिया लेकिन उन्होंने जनपद-आन्दोलन का नाम शायद ही सुना होगा ! हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम-निर्माताओं के मन-मस्तिष्क में कौन से विचार थे, जिनके कारण मार्क्सवाद, फ्रायडवाद और न जाने कौन-कौन से वाद पाठ्यक्रम में आ गये किन्तु जिस जनपद-आन्दोलन का संबंध देश के लोकतन्त्र से था, लोकजीवन से था, लोकभाषा और लोकसंस्कृति से था, वह पाठ्यक्रम से दूर खड़ा रहा ?

पाठ्यक्रम में शास्त्रीयता को आरोपित किया गया और बाद में राजनैतिक-मतवाद को ही साहित्य का प्रयोजन मान लिया गया। उसका परिणाम यह हुआ कि पंडित रामनारायण उपाध्याय की धारा के साहित्यकार पृष्ठभूमि में चले गये और मतवाद का जोर बढ़ गया, मतवाद की परिणति अन्तत: जाति-बिरादरी में हो गयी।

आजादी के आन्दोलन के समय की हिन्दी - पत्र-पत्रिकाओं में जनपद-आन्दोलन गूंज रहा था। यह उस समय का महत्वपूर्ण सोच था, जिसने साहित्य-मनीषियों को झकझोर दिया था। जनपद और वहां की बोलियों को लेकर उस जमाने के साहित्य-मनीषियों में लंबी बहस छिड गयी थी। राजर्षि टंडन, सुनीतिकुमार चटर्जी, राहुल सांकृत्यायन, संपूर्णानंदजी, किशोरीदास वाजपेयी, अमरनाथ झा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, देवेंद्र सत्यार्थी, वृंदावनलाल वर्मा, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, माखनलाल चतुर्वेदी, रामकुमार वर्मा, भवानीदयाल संन्यासी, धीरेंद्र वर्मा, रामविलास शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी और आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल कितने ही लोग थे, जिन्होंने टेर लगायी थी कि साहित्य का अमृतसंदेश उस अन्तिम व्यक्ति तक पंहुचे ,जो सुदूर जनपदों में खेत-खलिहान में काम कर रहा है । यह टेर इतनी व्यापक थी कि प्रगतिशील-आन्दोलन का ध्यान गया और शिवदानसिंहचौहान की अध्यक्षता में एक साहित्यमनीषियों की टीम बनी, जिसकी रिपोर्ट उनकी पुस्तक प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड के परिशिष्ट के रूप में सम्मिलित है ।

पं. बनारसी दास चतुर्वेदी विशाल भारत के संपादक थे,रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी के साथ रहने का सौभाग्य पाया था। रामानंद चट्टोपाध्याय के विश्वस्त थे। साहित्य में जनतंत्र का स्वर। जनता के बीच साहित्य और साहित्य में जनता। फरवरी 1940 के विशाल भारत में अग्रलेख लिखा साहित्य का विकेन्द्रीकरण। राहुलजी ने हिंदी के जनपदों की पहचान पर लेख लिखा मातृभाषाओं का प्रश्न और, बोलियों का सवाल उठाया। जनपदीय-जन की प्रतिष्ठा के लिये वासुदेवशरण जी ने स्वस्तिवाचन किया। लेख लिखा जनपदीय-साहित्य। इन तीन लेखों पर व्यापक प्रतिक्रिया हुई। जनपद-आंदोलन का विचार था जो टूंडेखंगार खेत में काम कर रहा है, उसी की बोली में सहित्य का अमृत-संदेश उस तक पंहुच सके। राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री ने कहा, वह उसकी बोली में पंहुचे।

आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने जनपदीय-जन से साहित्य को जोड़ने की प्रेरणा सम्राट अशोक के शिलालेखों में खोजी थी, उन्होंने बतलाया कि अशोक ने शिलालेखों पर अंकित कराया जानपदसा च जनसा दसने धमनुसंथि च धमनि पलिपुछा च। अर्थात जनपदों में जाकर जन से जीवन के प्रयोजन और कर्तव्य संबंधी पूछताछ तथा सिखावन। जनता से गहन संपर्क की सोच। आश्चर्य है कि लोग किताब पढ कर इतने विशाल देश, इतने विराट समाज में क्रांति के टोटके ढूंढते हैं। बुद्ध राजमहल छोड कर जनता के बीच आगये,महावीर भारत भरमें घूमे, पदयात्राएं की शंकराचार्य घूमते ही रहे। गोरख, कबीर, नानक, रामानुज, चैतन्य आदि की पदयात्राओं तथा ऐसे शास्त्रार्थों के विवरण मिलते हैं, जिनमें जनता प्रत्यक्ष रूप से भाग लेती थी। गांधी जी का विचार उनके भारत भर में घूम कर जनता के जीवन से प्रगाढ संपर्क और मंथन का परिणाम है । क्या हम भाषा-साहित्य, धर्मनिरपेक्षता, संस्कृति जैसे जनता से जुडे सवालों पर जनता से प्रत्यक्ष विमर्श जरूरी मानते हैं या हम स्वयं को ही दक्ष और जनता का नियामक मान लेते हैं? जनपदीय-जन के पास जाना, उसके पास उठना-बैठना, उससे उसी की बोली में उसकी सुनना और अपनी कहना, उसकी वाचिक परंपरा और उसके परिवेश से तादात्म्य स्थापित करना किसी भी विश्वविद्यालय की महिमा से बडा है ।

लोकभाषाओं में एक तेज आया था और उद्वेलन हुआ था । लक्ष्य था सामान्यजन तक साहित्य का अमृतसंदेश पंहुचे। राजस्थान में बहुत काम हुआ । विजय दानदेथा, कोमल कोठारी , देवीलाल सामर, नारायन सिंह भाटी ,महेन्द्र भानावत कितने नाम याद आरहे हैं। बहुत सी पत्रिकाएं निकलती थीं मरुवाणी , मरुभारती , रंगायन, राजस्थान- भारती आदि ! संस्थाओं में लोकक लामंडल , रूपायन संस्थान मरुभूमि शोध संस्थान आदि का समाचार मिलता रहता था । देवीलालसामर ने तो कठपुतली को विश्वमंच पर प्रतिष्ठित किया । बिज्जी ने लोकवाद्य संग्रहालय बनाया था। पंजाबी में सोहिन्दर सिंह बेदी ने काम किया । कौरवी में कुरुलोक संस्थान बना और श्रीकृष्णचन्द्र शर्मा ने मयराष्ट्र मानस नाम का सुन्दर ग्रन्थ निकाला । भोजपुरी में बहुत लोग थे राहुलजी जैसा नेतृत्व था । भिखारी ठाकुर जैसा कवि भोजपुरी के पास था। भोजपुरी एकैडमी बनी। लोरिकायन का प्रकाशन हुआ । मारीशस में भोजपुरी

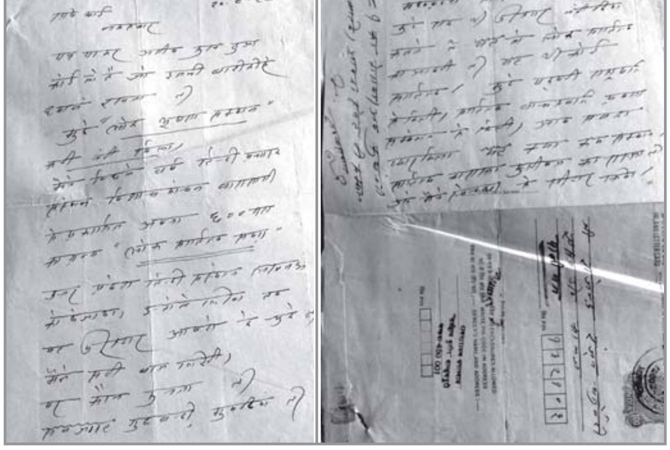

के सम्मेलन हुए । अंजोर और भोजपुरीलोक पत्रिकाएं निकलीं । आचार्य महेन्द्र थे । चंपारन में गणेश चौबे थे । कृष्णदेव उपाध्याय तो एक संस्था ही थे। उनका कार्य बहित विस्तृत था। भोजपुरी में फिल्म भी बनी । मानवशास्त्र पर भी इस क्षेत्र में बडा काम हुआ । जनपदों में इतनी बडी संख्या में इतने प्राणवान लोग जनपद-आन्दोलन के ध्वजवाहक बन गये । ब्रज में डा.सत्येन्द्र , भोजपुरी में डा.कृष्णदेव उपाध्याय, गणेशचौबे, कुलदीप नारायणराय मिथिला में राम इकबालसिंह राकेश , बुन्देलखंड में कृष्णानन्दगुप्त, हरियाणवी में देवीशंकरप्रभाकर जयनारायण कौशिक, शंकरलाल यादव, मालवा में श्याम परमार, निमाड में रामनारायण उपाध्याय , छत्तीसगढ में श्यामाचरण दुबे , किन्नरी में वंशीराम शर्मा ,कुमाऊं में त्रिलोचन पांडेय , मोहन उप्रैति कांगडा में गौतम शर्मा, गढवाल में शिवानन्द नौटियाल, कौरवी में कृष्णचन्द्र शर्मा, हरद्वारीलाल शर्मा ,राजस्थानी में देवीलाल सामर आदि। निमाडी में रामनारायन उपाध्याय बडे ही समर्पित महापुरुष थे। मालवा में श्याम परमार ने, चिन्तामणि उपाध्याय ने काम किया था। बघेली में भगवती प्रसाद शुक्ल का काम था। बुन्देली में नर्मदा प्रसादगुप्त ने अकादमी बनायी और मामुलिया पत्रिका निकाली। कृष्णानन्दगुप्त तो लोकवार्ता नाम से पत्रिका निकालते थे। गौरीशंकर द्विवेदी, रामचरण हयारन मित्र श्रीचन्द्रजैन आदि बहुत से नाम याद आ रहे हैं। सागर विश्वविद्यालय में बुन्देली विभाग बन गया । कुल्लूघाटी मे पदमचन्द कश्यप का काम था। छत्तीसगढ में प्रारंभिक काम करने वाले तो स्वयं श्यामाचरण दुबे थे। दयाशंकर शुक्ल ने भी काम किया। आजकल यहां कालीचरण जी मड़ई नाम से पत्रिका निकाल रहे हैं। थार के लोकगीतों पर शंभूशरण शुक्ल ने काम किया । कांगडा में गौतमशर्मा, किन्नरी में वंशीरामशर्मा का महत्वपूर्ण काम है। डोगरी में ओंकारसिंह गुलेरी ने काम किया। हरियाणा में देवीशंकर प्रभाकर, जयनारायन कौशिक और शंकरलाल यादव का काम महत्वपूर्ण है संथाली में डोमन साहू समीर का काम है। अंगिका बज्जिका क्षेत्रों से अंगभारती और बज्जिभारती पत्रिका निकलती थी। बज्जि का- परिषद का समाचार भी मिल जाता था। कुमाऊं में मोहन उप्रैति थे। कल्लुई, गढवाली चंबियाली में तारादत्त गैरोला, गोविन्द चातक, त्रिलोचन पांडेय, गिरिजादत्त, शिवनारायन विष्ट, प्रयागदत्त जोशी, शिवानन्द नौटियाल ने अलख जगाया । मगही में मगही-मंडल बना था। बिहान नाम की पत्रिका निकलती थी । श्रीकान्त ,संपत्ति आर्याणी आदि के नाम प्रसिद्ध हुए । मैथिली में सबसे पहला नाम राम इकबाल सिंह राकेश का याद आरहा है। तेजनारायण लाल ने भी काम किया । मैलाआंचल तो इतना महत्वपूर्ण है ।

मधुकर [अगस्त1944] का जनपद-अंक गवाह है। उस जमाने के साहित्य मनीषियों के मन में आजादी का मतलब केवल राजनैतिक- सत्ता के हस्तान्तरण तक सीमित नहीं था। न बापू ऐसा मानते थे। राष्ट्रीय जीवन की समस्त गतिविधियां जनोन्मुख हों, बोली और भाषा का जनतन्त्र, संस्कृतियों का जनतन्त्र। विशेष से साधारण की ओर गतिशील बने। पं.बनारसीदास चतुर्वेदी ने इसे पहले विकेन्द्रीकरण नाम दिया, किन्तु आचार्य वासुदेवजी ने जब जनपदीय- भारतवर्ष का स्वरूप विवेचन किया, तब इस आन्दोलन को जनपद-आन्दोलन नाम दिया गया। इस जनपद-अंक में सुनीति कुमार चटर्जी से लेकर सत्येन्द्रजी तक शताधिक लेखक सम्मिलित हुए। भाषा-साहित्य-संस्कृति का लोकतंत्र राष्ट्रीयजीवन की समस्त गतिविधियां जनोन्मुख हों, बोली और भाषा का जनतन्त्र,संस्कृतियों का जनतन्त्र। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने स्पष्ट किया कि जनपद-आन्दोलन सांस्कृतिक-स्वराज्य की अवधारणा है। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल कहते थे कि भारत और भारत के शतकोटिजन का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने के लिये जनपदीय-दृष्टि अनिवार्य है। नान्य पन्था विद्यतेह्ययनाय । राहुलजी ने बोलियों के आधार पर जनपदों का रेखांकन किया था। भोजपुरी, मैथिली, अंगिका, बज्जिका, बुंदेली, गढवाली, ब्रज आदि। मधुकर[अगस्त1944]का जनपद-अंक गवाह है.उस जमाने के साहित्यमनीषियों के मन में आजादी का मतलब केवल राजनैतिक- सत्ता के हस्तान्तरण तक सीमित नहीं था। न बापू ऐसा मानते थे। साहित्य में जनता बसे और जनता के जीवन में साहित्य का संदेश पंहुचे !

पंडित रामनारायण उपाध्याय जनपद-आन्दोलन से तन्मय होकर जुड़े, जिसके कारण पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनको आदर्श जनपदीय-चेतना का साहित्यकार माना था।

हिन्दी जनपदीय-परिषद् की स्थापना सन् 1952 में, ब्रज-साहित्य मंडल के हाथरस -अधिवेशन में हुई थी, जिसमें राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद से लेकर, लोक साहित्य पर कार्य करने अनेकानेक विद्वान् एकत्र हुए थे। एक ओर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, पं. रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्रसत्यार्थी, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी और श्री नवीन जी जैसे हिन्दी के विद्वान् उपस्थित थे, तो दूसरी ओर अवधी, ब्रज, बुन्देलखंडी, मालवी , निमाड़ी, राजस्थानी, बघेलखण्डी, बैसवाड़ी एवं संथाल आदि क्षेत्रों के विद्वान् डाक्टर सत्येन्द्र, श्री शिवसहाय चतुर्वेदी, श्री कृष्णानन्द गुप्त, श्री श्याम परमार, श्री रामनारायण उपाध्याय, श्री देवी लाल सामर, श्री वंशीधर शुक्ल, श्री रामाज्ञा द्विवेदी समीर, श्री बृजनन्दन गुप्त और श्री ठाकुर प्रसाद सिंह जैसे लोकसाहित्य के अनेकों मूक-साधक भी उपस्थित थे। पंडित रामनारायण उपाध्याय जी के शब्दों में इस संस्था की स्थापना से देश में लोकसाहित्य की ऐसी आंधी आई जिससे लोक भाषा के विविध अंगों पर कार्य हुआ था।

जब ब्रज साहित्य मंडल के माध्यम से दिनांक 14-15 और 16 अप्रैल 68 को बाबू वृन्दावनदास जी ने आगरा में सत्यनारायण कविरत्न की अर्द्धशताब्दी का आयोजन किया तब फिर से हिन्दी जनपदीय-परिषद का अधिवेशन बुला लिया गया । श्री रामनारायण उपाध्याय उसमें भी सम्मिलित

हुए थे। हालाँकि उस समय उनसे मेरी जानपहचान नहीं हो सकी थी। मेरी जान-पहचान तब हुई, जब 1970-71 में मैंने सासनी क्षेत्र के सत्तर गाँवों का सर्वेक्षण किया । जब वह प्रकाशित हुआ, तब पंडित रामनारायण उपाध्याय ने उसकी प्रशंसा करके मुझे प्रोत्साहित किया था । उसके बाद लोकशास्त्र-अंक निकाला तब भी उपाध्यायजी ने उस पर अपनी सम्मतो भेजी थी। तभी से पत्राचार प्रारंभ हुआ, वह चलता रहा।

स्वतंत्रता-आन्दोलन के समय साहित्य और साहित्यकार का लोकजीवन से गहन संबंध था, उनके चिन्तन के मूल में था कि साहित्य का प्रयोजन लोकजीवन है। उन दिनों पं बनारसीदास चतुर्वेदी विशाल भारत के संपादक थे, हिंदी साहित्य-जगत में पार्टी-लाइन का जोर बढ रहा था। पार्टी-लाइन, जो अंतत नेतृत्व के विचार को साहित्य-सृजन का प्रयोजन मानती थी। दादाजी ने प्रश्न डाल दिया -कस्मै देवाय हविषा विधेम? कस्मै देवाय? उस जमाने के लगभग सभी साहित्यिक इस सवाल से प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से जुड गये। यह सवाल आज भी प्रासंगिक है। कस्मै देवाय ? इसमें साहित्य के सरोकार का सवाल था ! किसके लिये लिख रहे हैं ? किसके प्रति उत्तरदायी हैं ? क्या किसी नेता या दल के प्रति ? कौनसा सिद्धान्त ? उस सिद्धान्त की कसौटी क्या है ? हिन्दी साहित्य जगत को इस संपादकीय ने झंझोड दिया था और उसकी प्रतिक्रिया में आन्दोलन ही उठ खडा हुआ। अपनी -अपनी बात सभी ने लिखी, बहसें हुईं ! उस समय श्री रामनारायण उपाध्याय ने लिखा था -जो शरीर से कृश है, जो पसीने से तर है, जिसके वस्त्र माटी से मलिन हैं, सिर के बाल रूखे हैं, जिसकी आंखों में वेदना भी है और प्यार भी छलक रहा है, तुम उसी के लिये लिखों ।

धुँधले काँच की दीवार उनकी उल्लेखनीय कृति है, उसमें एक निर्धन व्यक्ति है, जो फूटे कप में चाय पीता है, फटी चादर बिछा कर सोता है और एक पुराना काँच ; जो धुँधला हो चुका है ,उसमें अपना प्रतिविंब देखता है, लेकिन जब कोई जाता है तब वह इन सब को छुपा देता है। जैसे-तैसे वह अपनी निर्धनता को ढँकने का प्रयास करता है ! पंडित रामनारायण उपाध्याय उससे कहते हैं कि- मित्र, जैसे तुम हो वैसा ही मैं हूँ, जैसा चाय का कप तुम्हारा फूटा हुआ है, वैसा ही मेरा भी है, मेरे घर की चादर तुम्हारे घर की चादर से ज्यादा फटी हुई है,और मेरे पास भी तुम्हारे धुँधले काँच की तरह एक धुँधला काँच है , जिसे मैं भी किसी अतिथि के आने पर छुपाने की कोशिश करता हूँ । क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम दोनों वैसे ही एक-दूसरे के सामने रहें जैसे कि हम वास्तव में हैं और बजाय राजनीति और साहित्य की बातें करने के हम एक-दूसरे के सुख-दुख की बातें करें ? विश्वास रखो, सुख-दुख के इस समंदर में से ही हमारे अभावों की कश्ती पार होने का मार्ग गया है ।

उस दिन तो मैं चकित रह गया था, जब ऐत्मादपुर के डा.सत्येन्द्र-अभिनन्दन समारोह में वे पधारे थे, पत्र व्यवहार तो मेरा उनसे पहले से ही था किन्तु उनसे साक्षात्कार नहीं हो सका था। मैंने उनको पहचाना नहीं, उनके साथ थे >> डा.विद्यानिवास मिश्र जी । डा.विद्यानिवास मिश्र जी बोले पहचाना कि नहीं ? श्री रामनारायण उपाध्याय ! हिन्दी के अन्य अनेक लोकसाहित्य-मनीषियों की तरह उनकी सेवा में एक पत्र ही तो भेजा था, किन्तु श्री रामनारायण उपाध्याय इतनी दूर से चले आये और एक इतनी छोटी सी जगह पर ! हालाँकि वरेण्य साहित्यकार श्री अज्ञेय जी भी पधारे थे किन्तु उनका आना तो पहले से तय था। श्री रामनारायण उपाध्याय जी की तो आशा थी ही नहीं, क्योंकि अन्य साहित्य मनीषियों का कहना था कि यह आयोजन तो तुम्हें किसी केन्द्रीय-स्थल पर करना था। किन्तु श्री रामनारायण उपाध्याय तो श्री रामनारायण उपाध्याय ही थे, सामान्य जन के साहित्य- मनीषी ! डा.विद्यानिवास मिश्र जी ने श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय से कहा था कि -मैं गाँव का आदमी होकर भी शहर का होकर रह गया किन्तु श्री रामनारायण उपाध्याय तो गाँव को ही जी रहे हैं। गंवई मन और गाँव की याद !

उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान : लोकभूषण-सम्मान का प्रावधान लोकवार्ता साहित्य की साधना के लिये ही नियत किया गया था और उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष डा.शरणबिहारी गोस्वामी स्वयं साहित्य मनीषी थे, वे चाहते थे कि किसी साधक का ही सम्मान हो ! मैंने उन्हें श्री रामनारायण उपाध्याय का नाम सुझाया। वे बोले कि उन्हें पहले तो यह सम्मान नहीं मिल गया, पता कर लो। मैंने चिट्ठी लिखी और गोस्वामीजी को बतला दिया कि यह सम्मान उन्हें नहीं मिला। गोस्वामीजी ने मन बना लिया, वे इस दिशा में आगे बढ़ गये, किन्तु उस समय के संस्थान के पदेन अध्यक्ष मिनिस्टर थे, या विधानसभाध्यक्ष थे, वे किसी अपने आदमी को यह सम्मान देने के लिये अड़ गये । बात तो राजनेता की ही चलनी थी, सो चली किन्तु गोस्वामीजी ने खिन्न मन हो कर मुझे वे बातें कहीं !

पंडित रामनारायण उपाध्याय की कृति जिन्हें मैं भूल न सका को वर्ष 1989 में उत्तरप्रदेश हिन्दी-संस्थान का महावीर प्रसाद द्विवेदी नामित पुरस्कार मिला , उसी वर्ष मुझे श्रीधर पाठक नामित पुरस्कार मिला था । 14 सितंबर 1989 से तीन दिन तक एक बहुत भव्य होटल में ठहरने का इन्तजाम किया गया था । ऐत्मादपुर के बाद लखनऊ में उनसे यह दूसरी भेंट थी । पहले दिन तो सम्मान समारोह था ही , उसमें व्यस्त रहे , दूसरे दिन उन्होंने कहा कि उत्तरप्रदेश पत्रिका के संपादक श्रीकल्याणकुमार से मिलने चलेंगे ? मैंने कहा -जरूर । उत्तरप्रदेश में मेरी रचनाएं भी छपती रही थीं । संस्थान की ओर से एक गाड़ी मिल गयी थी , मैंने देखा कि वे धोती तो पहने हुए थे , जो कुर्ती सी थी, उसे उन्होने कंधे पर ही रख छोड़ा था । दूसरे साहित्यकार सब सजधज कर चलरहे थे । यह देख कर मुझे थोड़ा असमंजस जैसा लगा था , तब तक इतनी घनिष्टता नहीं थी, जब गाड़ी से उतर तब उन्होने वह कुर्ती पहन ली । जब कल्याणकुमार जी के कमरे में पँहुचे तब वे उनके सम्मन में खड़े हो गये और उन्होने उपस्थित लोगों को बतलाया कि यह तो तपस्वी साहित्यकार है।

इनके पत्र मुझे भी मिलते ही थे और ब्रजभारती के तत्कालीन संपादक बाबू वृन्दावनदास जी को भी मिलते थे । बाबूजी से पंडित रामनारायण उपाध्याय के संबंध में प्राय ही चर्चा होती रहती थी । उपाध्यायजी ने मुझे अपनी कई पुस्तकें भेंट की थीं , फिर उन्होंने बतलाया कि ये पुस्तकें मैं अपने ही प्रकाशन से छाप रहा हूँ । तब मैंने अपने कालेज के लिए उपलब्ध पुस्तकें मंगवाली थीं ।

रामनारायण उपाध्याय का पत्राचार वासुदेव शरण अग्रवाल से भी था, वे उनको निमाड़ी गीतों से परिचित कराते थे उनके गीत को तो वासुदेवजी ने गीतों का राजा कहा था ।

सम्पर्क : 1828 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 13-12, पानीपत-132203 (हरियाणा) मोबा.
9996007186

■

संस्मरण

वार्धक्य की बाल सुलभ हँसी

डॉ. श्यामसुन्दर दुबे

पढ़-सुनकर किसी व्यक्ति-व्यक्तित्व काल्पनिक प्रारूपण जैसे हमारे मनस्तिपक की भूमि पर एक प्ररोही वनस्पति की तरह अपने कर्म-जाली तंतुओं के रूप में फैलता रहता है। हम उसे जानते हैं। कुछ-कुछ यह पहचानते भी हैं, किंतु हमने उसे प्रत्यक्ष नहीं देखा-अलबत्ता उसे गाहे-बगाहे अनुभव किया जाता रहा है - इस अनुभव के सहारे उसके नाक-नक्श और उसके स्वभाव की संक्षिप्त सी कौंध हमारे भीतर जागती रही है। ऐसा अक्सर हम पढ़ने-लिखने वालों के परिसर में घटित होता है। हम कल्पना शील लोग हैं जो अंदेखे को भी अपने रैटीना पर उतार लेते हैं ऐसा कोई कैमरा संभवत: अभी तक सामने नहीं आया है जो सैकड़ों कोस या मील या किलोमीटर दूर बैठे अपने प्रिय का चित्र खींच सके। अब थोड़ा-थोड़ा संभव हो रहा है कि दूरियों को ध्वस्त करते हुए हमारा मोबाइल पलक झपकते हमारे और हमारे प्रिय से न केवल दृश्य संयोजना करा रहा है, बल्कि बतरस के चासनी-तारों से भी हमारे औंठों और कानों में अनकही सी मिठास भर रहा है, लेकिन मैं तो उस इक तरफा इश्क की बात कर रहा हूँ जहाँ दूसरे छोर पर मुँह दिखरावनी की कोई गुंजायश नहीं थी। कुछ ऐसा ही घटित हो रहा था, उन दिनों जब मैं शब्दों की दुनिया के अजूबों में व्यक्तित्वों की तलाश का नशा सा पाल रहा था। अब समीक्षक लाख कहता रहे कि जिसे आप पड़ रहे हैं। उसे उतना ही जाने जितना वह अपने अक्षरों में समाया है। उसके आगे उसकी कद-काठी की मापतौल करना आपको सदमे में डाल सकती है क्यों कि छवि जो आप गढ़ रहे उन महाशय की वह बेहद विरूपित भी हो सकती है। इस समीक्षकीय चेतावनी के बाद भी हम रचना से रचनाकार तक पहुँचने की धुसपैठिया गिरी तो करते ही रहते है।

इतने भारी भरकम प्राक्कथन के बाद अब आईये आँख की उस पुतली पर जो दुनिया जहान की छवियों को निषेचित करके एक प्रिय बिम्व को अपनी तिलभर जगह में समेट लेती है तो खंडवा इस तिलभर के क्षेत्रफल में कब नमूदार हुआ नहीं कह सकता बस इतना याद है कि यह नाम बचपन में मैं ने अपनी मौसी के मुख से सुना था। दादा धूनीवालों की वे शिष्या थी, और वर्षो उनके आश्रम में रही थी। वे उनके अजीब-अजीब करिशमें हम बच्चों को सुनाती थी। दादा धूनीवालों के हम मुरीद हो गये थे। खंडवा हमारे लिए अनजाना जरूर था, लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है अब तो वह हमारे भीतर दादा धूनीवाले बरकर उतर गया था। फिर हाईस्कूल में पहुँचते-पहुँचते खंडवा की एक अलग आकृति हमारी चेतना पर जागने लगी। कैदी और कोकिल कविता हमारे शिक्षक हमें पढ़ाते और बताते कि यह कविता माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखी है और वे खंडवा में रहते हैं। कविता इतनी प्रभावशाली थी कि अलग तरह की धूनी हमारे भीतर जलने लगी थी इस धूनी की लौ-लपट से हमारी किशोर बाहुऐं फड़क उठी थीं। अब खंडवा स्वतंत्रता की रण-भेरी में तब्दील हो गया था।

कैसे कोई स्थान अपनी पहचान की परतें बढ़ती उम्र की चेतना पर निर्मित करता है यह तो अब पता चल रहा है, जब खंडवा की आवाजाही बढ़ी और उसकी स्थिर सी स्मृति का खासा ग्राफ हमारी अनुभूति के एटलस पर उभर आया। एक घरघुसी पत्रिका हुआ करती थी जिसे 'धर्मयुग' नाम से जाना जाता था। घर में घुसकर न जाने कितनी-कितनी बातें वह हमसे करती थी ऐसे ही बतियाने के सिलसिले में हमारे पास तक एक नाम आया रामनारायण उपाध्याय। अचरज यह है कि हमने इस नाम के व्यक्ति के द्वारा रचे गए कुछ चुटकुले धर्मयुग के पृष्ठों पर पढ़े। यह कोई आतिशयोक्ति नहीं है कि ये चुटकुले जरूर थे, लेकिन इनका असर किसी बड़ी रचना से कम नहीं था। कुछ पाठक को धर्मयुग के उसी पृष्ठ से धर्मयुग का पारायण प्रारंभ करते थे, जिस पृष्ठ पर ऐसे चुटकुले छपते थे। रामनारायण उपाध्याय का चित्र भी उनके चुटकुलों के साथ प्रकाशित होता था। हँसता हुआ सुदर्शन चेहरा बस रामनारायण उपाध्याय की जो इसके पूर्व मैं ने रचनाऐं पढ़ी थी उसका फ्रेस ही नहीं बाल्कि उसके रूप रंग के विनियोजन को इस प्रत्यक्ष चित्र ने तहस-नहस कर दिया था और नयी उजास में अब मैं रामनारायण जी को अपने भीतर नुमाया होते देख रहा था एक प्रसन्न खिलंदड और जीवना शक्तियों की फुलझड़ियों को खिलाने वाले लेखक की तरह जान रहा था। तो जो एक काल्पनिक छायाचित्र हमारे मन के एक

अपना-सा प्यार-प्यारा लगने वाला व्यक्तित्व हम पर हावी होता गया था।

उपाध्याय जी के अधरों पर जो रंग-बिरंगे फूल खिल रहे थे इन फूलों की रंगीनी का उत्स क्या था? वह रस जो इन्हें पराग सिंचित और उदात्त उजाास दे रहा था। आखिर कहाँ से आ रहा था! एक गाँव है 'कालमुखी' उसकी मिट्टी में जो लोक रस है वही तो रामनारायण जी को रस से लबालब किये था। वे निमाड़ के लोक गीतों की नस नस में घँसे और उनमें प्रवाहित हो रहे अब तक के अलक्षित जीवन-बिम्बों के रेशे-रेशे टटोल रहे थे। संत सिंगा जी की अंतर्नाभि से उठी ध्वनि तरंगों में निहित निमाड़ की संत-परंपरा की शब्द-साधना के अंर्तर्म को वे तलाश रहे थे वे लोक की धूलि के कण-कण को माथे का चंदन बना रहे थे। चिंतामणि उपाध्याय, डॉ. श्याम परमार, डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त जिस तरह से मध्यप्रदेश के लोक के आँचलिक वैभव को विश्लेषित कर मध्यप्रदेश के मन की खोज कर रहे थे उसी कड़ी में रामनारायण उपाध्याय अपनी लोक- यात्रा में रत थे।

उपाध्याय जी लोक के शब्दों के उत्खनक भी थे और अपनी सर्जनात्मक शक्तियों के बल पर वे भाषा के सौन्दर्य के उद्घाटक भी थे। उन्होंने अपनी रम्य रचनाओं में शब्द पर्व के महोत्सव को अनवरत उल्लास में तब्दील कर दिया है।

मेरा एक लेख 'सापेक्ष' पात्रिका में प्रकाशित हुआ 'सापेक्ष' का यह लोक संस्कृति पर केन्द्रित विशेषक था। मेरा लेख 'लोक' के मूल्य परक विवेचन पर आधारित था। एक दिन डॉकिया ने एक पत्र अपने बैग से निकाला और मुझे थमा कर आगे बढ़ गया। पत्र की हस्तलिपि जानी-पहचानी नहीं थी, जाहिर है कि यह पत्र किसी अपरिचित ने ही लिखा था। पोस्टकार्ड था इसलिए पत्र के शीर्ष पर नहीं पत्र की अंतिम पायदानी पर भेजने वाले का नाम था। लिखा था, आपका शुभेच्छु रामनारायण उपाध्याय। नाम पढ़कर मैं विस्यम-विमुग्ध था उपाध्याय जी का नाम उस समय तक प्रथम पांक्तेय कृति व्यक्तित्वों में शामिल हो चुका था। पत्र मैं ने एक बार नहीं अनेक बार पढ़ा। उसमें इस तथ्य का विशेष रूप से उल्लेख था कि लोक को नये विचारों के आलोक में समझने का अवसर यह लेख देता है। उपाध्याय जी अपनी अत्मीय प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे और मेरी पीठ ठोक रहे थे। महात्वपूर्ण यह नहीं था कि वे एक औपचारिक पत्र लिख रहे थे-महत्वपूर्ण यह था कि वे अनाम से एक अकिंचन लेखक की रचना का नोटिस ले रहे थे।

जब हमारा समय अपनी ही अहम्मन्यता में डूबे साहित्यकारों की गिरफ्त में आता जा रहा था और दूसरे के लेखन को अपनी थोथी फूँक से कूड़े-कचरे जैसे उड़ाया जा रहा था। तब उपाध्याय जी उपनी ममताभरी छाँव का छाता एक डगमगाते से डग भरते लेखक के सिर पर तान रहे थे। हो सकता है-उन्होंने अन्य उदीयमान से नक्षत्रों को उपने हृदय का विस्मृत आकाश मंडल प्रदान किया हो किंतु मेरे सामने तो यह प्रत्यक्ष था कि वे मुझे परख रहे थे और उन्मुक्त होकर उनका वात्सल्य उनके पोस्टकार्ड से छलक रहा था।

हटा से एक स्थानीय साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता था। उसके संपादक साहित्यिक रूचि के थे। वे इस पत्र में प्रकाशित रचनाओं में कविता के कॉलम को विशेष महत्व देते थे वे दिग्गजजनों को पत्र लिखते रहते थे कि उनके छोटे से अखबार में अपनी बड़ी रचना भेजने की कृपा करें! संपादक के निवेदन पर कभी किसी दिग्गज ने इस डर से अपनी पूँछ तक नहीं हिलायी कि इस क्रिया से कहीं उनकी पीठ पर रखी पृथ्वी हिलडुल न जाए और भूकंप की त्रासदी न उठ खड़ी हो! डरते-डरते संपादक ने रामनारायण उपाध्याय जी को पत्र लिख दिया। उपाध्याय जी ने अपनी दो कविताए भेज दी। कस्बे के इस संपादक को उपाध्याय जी ने जिस अपार खुशी से भर दिया उसे शब्द देना कठिन है बिहारी की तर्ज पर कहा जा सकता है-अति अगाध अति औथरो नंदी कूप सर वाय। सो ताको सागर -तहाँ जहाँ जाकी प्यास बुझाय। उपाध्याय जी के कृतित्व का समुद्र लोक के अंतिम छोर तक हिलुरता था। ब्रह्मपुरी खंडवा के एक मकान के सामने हम थे हमारे साथ थे डॉ. श्री राम परिहार! मकान अत्याधुनिक नहीं था। परंपरागत स्थापत्य वाले इस मंकान में एक दालाननुमा पोर्च जैसा था इसे घर में प्रवेश करने के पूर्व का खुला विश्राम कक्ष कहा जा सकता था। इसी में रामनारायण उपाध्याय कुर्सी पर बैठे दिखे। मैं इस प्रथम दर्शन से अभिभूत था वे धोती और बंडी पहने थे। खिले-खिले से कपोल और धवल दत पाक्ति की शुभ्र झलक उन्हें उस वार्धक्य में भी शिशु सुलभ कल्लोल से आपूरित किये हुए थी। वे उठे। हमने उनके चरण स्पर्श किये। उन्होंने आशीर्वाद दिया। डाक्टर परिहार ने उन्हें मेरा परिचय दिया। नाम सुनते ही वे कुछ देर तक स्मृति के अगाध कुएे में जैसे डुबकी लगाने लगे थे। जल कांप रहा था और स्मृतियों के हिल्लोल में से एक हिलोर ने जैसे मुझे स्नात कर दिया। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर उपनी बाजू वाली कुर्सी पर बैठा लिया। वे अपने चश्मे को गले में लटकाये थे।

वार्तालाप में लोक ही केद्रीय विषय रहा किन्तु उनकी चिन्तायें उस समय उस तलहरी वाली खदबदाहट से प्रभावित थी-जिस सामाजिक विवर्त से साहित्य जन्म लेता है वे उस घटित से प्रसन्न नहीं थे जो तत्कालीन राजनीति के भीतर मूल्यहीनता की दरारे उत्पन्न कर रहा था। वे निश्छलतापूर्वक मुखर थे और बढ़ती अराजकता के दौर की चीख चिल्लाहत के विरोध में वे अपना हस्तक्षेप कर रहे थे। मुझे लगा वे लोकविद् गद्यकार और सहज कवि जरूर है किन्तु वे कोरमकार साहित्यकार भर नहीं है- बल्कि वे अपने समय के प्रति सचेत भी है। यह पहली मुलाकात का पहला एक्सपोजर था जिसमें उपाध्याय जी का फोटो डेवलप करने वाला डार्करूम मेरे सामने खुल रहा था और मैं उन्हें उनकी संपूर्ण उपस्थिति के रूप में उस समय अनुभव कर रहा था। फिर बाद की मुलाकाते इस एक्सपोजर में ही विलीन होती गयी।

सम्पर्क : श्री चंडी जी वार्ड, हटा (दमोह) मप्र
मोबा. 9977421629

■

संस्मरण- ललित स्मरण

अनुभव की आँच और चैतन्य कर देने वाली हँसी

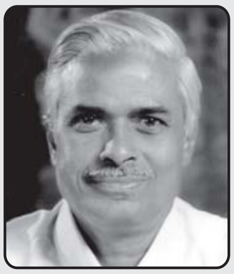

डॉ. श्रीराम परिहार
(डी. लिट)

एक जोरदार ठहाका और बातों का अनवरत सिलसिला। पूरे कमरे को चैतन्य कर देने वाली हँसी और अनुभवों की आँच में तपी जमाने की खरी-खरी बातें। बूढे शरीर में बच्चों सा सरल मन। गेहुएँ रंग वाले मझोले कद पर धोती और कुरते में लिपटी सांस्कृतिक कविता। आदमी को भीतर तक भिगों देने की क्षमता वाली सिनगध दृष्टि। सर्जन को आराधना मानते हुए साहित्य देवता की पूजा। जीवन के आखिरी पड़ाव तक निरंतर लेखन। साहित्य और संस्कृति की परंपरा को जिन्दा रखने और समृद्ध करने की मन में ईमानदार ललक। भारत की माटी की पहचान को पूरी सिद्दत के साथ कायम करने की पुरजोर कोशिश।

लोक साहित्य और लोक संस्कृति की जमीन पर अंकुरित पं. रामानारायण जी उपाध्याय का व्यक्तित्व और लेखन साहित्य का बरगद बन गया है। उन्होंने अनुभव और लेखन की संघर्षपूर्ण लंबी यात्रा तय की है। उन्होंने जिन्दगी को बहुत पास से देखा है। लोक जीवन के प्रति आत्मीय रुख और संवेदनशीलता ने उन्हें माटी पुत्र बनाया है। अन्याय और दु:ख, गाँव की समस्याओं के लिए वे सबसे पहले खड़े हुए हैं। इससे उनमें सच का पक्ष लेने का उत्साह प्रबल हुआ और निर्भीकता तथा आत्मविश्वास पैदा हुआ है। इस देश की प्रकृति के अनुसार जीवन की आचार संहिता उन्होंने तय की है। जो अपना है. अपने आसपास का है, जिससे हम बने हैं, जिससे हमारी पहचान और अस्तित्व है, उसका सम्मान और सुरक्षा जरूरी है। उनका सोच है कि हम पहले गंगा-नर्मदा की बात करें, अपनी जमीन आकाश की प्रकृति के अनुसार जिएँ। जो चीजें हमारे जीने के ढंए को सुनिश्चित करती हैं, उन्हें मरने न दें, उनका पुनर्स्मरण करें।

इन बातों ने पं रामनारायण उपाध्याय को लोक संस्कृति का पुरोधा बना दिया। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं पर आधिकारिक रूप से लेखनी चलाते हुए उन्होंने साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। निमाडी साहित्य और संस्कृति का इतिहास उनकी हिन्दी साहित्य को दी गयी अनुपम भेंट है। उन्होंने जिस विधा पर लेखनी चलायी, उसे लोक, पुराण, इतिहास और कला का स्पर्श देते हुए अनूठी बनक दी। लोक की गहरी और व्यापक समझ उनके पास है। निमाडी लोक साहित्य और संस्कृति पर उन्होंने सर्वथा नवीन, प्रथम और प्रामाणिक कार्य किया है। उन्होंने निमाड़ी लोक और बोली को संपूर्ण भारतीय लोक और बोलियों की बिरादरी पर लाकर बैठा दिया है। वे इस गुरुतर कार्य को करते है, जिससे व्यक्ति का विस्तार क्षितिज तक होता है और यह धरती माता बन जाती है तथा मनुष्य उसका पुत्र।

दुनिया को सुन्दर और स्वस्थ बनाये रखने के लिए आदमी का आदमी होना जरूरी है। साहित्कार जीवन के सामान्तर एक नये जीवन की सृष्टि रचना साहित्य में करता है। जीवन को एक मानक इकाई के रूप में स्थापित करता है। रचना का प्रभाव और रचनाकार का व्यवहार दूर तक अपने युग पर प्रभाव डालता है। अत: साहित्यकार का आदमी होना जरूरी है। रामनारायण उपाध्याय जी आदमी से आदमी बनकर जुड़ते हैं। साहित्यकार की पोटली को सिर पर लादे नहीं घूमते। उनकी सहजता एवं निरभिमानता ने उन्हें जन से जोड़े रखा। वे मूल्यों की तलाश साहित्य और व्यक्ति दोनों में करते हैं। मूल्यों के प्रति आस्थाओं, जीवन की विसंगतियों एवं संधर्ष भरी यात्राओं के अनुभव उनकी कलम से व्यंग्य, ललित निबंध, कविता, कहानी, लघुकथा, संस्मरण, जीवनी आदि की आकृति में निकले हैं। इन सब में वे भारत की जमीन और उसके लोगों की बात करते हैं।

उन्हें जो भारतीय परंपरा से हटकर लगता है। इस देश की अस्मिता पर चोट करता है। उसके प्रति उनके मन में बड़ा रोष है। वे आयातीत आचार-विचार को कतई स्वीकार नहीं करते। उनका विश्वास है कि जीवन के प्रगतिशील मूल्य और जीवन का परम सत्य भारतीय विचार और दर्शन

के पास है। जीवन का चरम स्वरूप भारतीय लोक के राम के पास है। सृष्टि का तत्य-चिन्तन ऋषि के पास कारुणिक रूप लोकगीतकार की सीता के पास है और माँ का स्वरूप धरती के पास है। इस मायने में वे भारतीयता के बहुत आसपास घूमते दिखाई देते हैं।

पं. रामनारायण उपाध्याय मूलतः निबन्धकार है। उनके निबन्ध संवेदनाओं की उन पर्तो को खोलते हैं, जिनसे मानवीय रिश्ते और सामाजिकता उजागर होती है। एक तरह का पनीलापन निबन्धों में व्याप्त है। उनके निबन्ध मन-बादल की तरह हैं, जिनमें व्यक्ति की सामाजिक होती अनुभूतियों का पानी लबालब भरा हुआ है। कहीं कोई विचार अपने थोड़े विस्तार में लघु निबंध बन गया है। कहीं कोई भाव बादल की जनिहार में लघु आलेख बन जाता है। इनमें जीवन का जो उदात्त और अनुकरणीय है, वह बार-बार बिजुरी-सा कौंध जाता है। ये निबंध पाठक को ठंडक तो देते ही हैं, आर्द्र भी करते हैं। परिवार और जीवन के एकान्तिक क्षणों में जब-जब स्मृतियों के बादल बरसते हैं, संवेदना की जमीन पूरी तरह भींग जाती है। पारिवारिकता के बीच में जीवन को संपूर्णता में देखना और उसकी निजता को खण्डित न होने देने की गहरी समझ उनके व्यक्तित्व में और निबंधों में हैं। लेखक अपने प्रौढ अनुभवों को निष्कर्ष रूप में रखता है। वे विषयों और वस्तुओं के प्रति अपने दृष्टिकोण में एकदम स्पष्ट हैं। उनके लिए जीवन और संसार सिर्फ हाहाकार नहीं है। उनमें केवल खराब ही खराब है, ऐसा नहीं है। ये जीवन और जगत को समग्रता में देखते हैं। भले ही वर्णन वे स्थित्ति विशेष का कर रहे हों, लेकिन उनका संकेत जीवन जगत के उन पहलुओं की ओर रहता है. जिनसे उन्हें विपरीतताओं में संबल मिलता है।

अपने निबंधों में लेखक ने निजी अनुभूतियों को व्यापकता देते हुए उनका सामान्यीकरण ही नहीं, बल्कि सार्वजनिकीकरण कर दिया है। साहित्य का प्रेय भी यही है। निबंधों में निहित ललित प्रसंग लेखक के हो सकते हैं, लेकिन वे साहित्य के मंच पर आते ही सबके हो जाते हैं। इसके लिए लेखकीय समझ चाहिए। केवल भावुकता और उद्दीपन अर्थ में घुल जाएँ और वे अपने निजीपन के रंग को सबके सुख-दुःख में मिलाकर अभिव्यक्त हों, तब ही साहित्य के आस्वाद की सही स्थित्ति आती है।

वैचारिक स्तर पर पं. रामनारायण उपाध्याय के निबंध मनुष्य को सबसे ऊपर निरूपित करते हैं। वे साहित्य के माध्यम से व्यक्ति को आदमी बनाने की तड़पन लिये हुए हैं। सारे वाद मानवतावाद से कमतर हैं. बशर्ते कि वह मानवतावाद छद्म न हो। वे जीवन को विकासमान और सहज बनाने के सूत्र बताते हैं। ये सूत्र मंत्र नहीं, बल्कि दैनिक जीवन की वे सहज क्रियाएँ हैं, जो जीवन की जड़ों में सिचन का कार्य करती है। उनकी रचनात्मकता को नमन। उनकी अमर स्मृति को प्रणाम । इति शुभम्।

संपर्क : आजाद नगर, खण्डवा मोबा 94253 42748

लोक मनीषी रामनारायण जी

डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित

पं. रामनारायण उपाध्याय लोकसंस्कति ने मान्य अध्येता और प्रवक्ता तो थे ही, निमाड़ी जीवनप्रद्धति और वाचिक परम्परा के भी दादा अन्वेषक थे। पिछली शताब्दी के अंतिम चरण में एक साहित्यिक गोष्ठी में उनके दर्शन-श्रवण के समय वहाँ वि.श्री. वाकणकर की भी उपस्थिति थी। वहाँ की मीठी नोक झोक के बीच उपाध्याय जी का व्याख्यान हुआ था। मालवी-निमाड़ी को सगी बहनें कहा था। निमाड़ का खंडवा का पहले माखनलाल चतुर्वेदी और फिर रामनारायण उपाध्याय ने साहित्यिक प्रभामंडल बनाया। उपाध्याय जी ने निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास का बोध-लोकजगत् को करवाया। श्रीकृष्ण लाल हंस की पुस्तक निमाड़ी और उसका साहित्य और उपाध्याय जी का पूर्वोम्य सांस्कृतिक अध्ययन को मिलाकर निमाड़ और निमाड़ी को बहुत कुछ जाना जा सकता है। 1918 से 2001 तक का 83 वर्ष की आयु में उपाध्याय जी ने जो निमाड़ी सहित्य और बोली की सेवा की वह उनकी गहन और सरस मनोगति की परिचायक है। शोध और सृजन का सन्तुलन उनकी रचनाओं में पाया जाता है। उनकी 40 पुस्तकों तथा विभिन्न लेखों या फुटकर लेखन द्वारा उनकी रूचि अध्ययन तथा परिश्रम की लगन को जाना जा सकता है। निमाड़ी शब्दकोश उनके निमाड़ी बोध का साकार रूप है। वे निमाड़ी के पहचान बन गये। उन्होंने लोक पुस्तकालय की स्थापना ही नहीं की अनेक लोक साहित्यकारों और लोक कलाकारों को प्रोत्साहित भी किया। रामनारायण उपाध्याय की कतिपय पुस्तकों के नाम निमाड़ी लोक गीत 1949, जब निमाड़ गाता है 1958, चतुर चिड़िया 1962 (बाल लोक कथा), निमाड़ी लोक कहावतें 1969, निमाड़ी और उसका लोकसाहित्य 1964, सन्त सिंगाजी एक अध्ययन 1965, चन्दन और पलाश (लोक कथा) 1972 (संयुक्त), निमाड़ी लोक साहित्य और संस्कृति 1973, हम तो बाबुल तेरे बाग की चिड़िया 1978, इन पुस्तकों के नामों से ही उनकी विषयवस्तु की गहन और सरसता का बोध हो जाता है। उनमें लोकदृष्टि, लोक संग्रह, लोक अनुसन्धान के साथ ही लोकसृजन की दिशाएँ भी ज्ञात होती हैं।

उनके द्वारा निर्मित पथ पर चलते हुए निमाड़ की लोक धारा के विभिन्न मार्गो के मनस्वी अब निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं और लोक अध्ययन की गाड़ी को गति दे रहे हैं। उनका पथ सदा प्रशस्त होता रहे और रामनारायण जी की परम्परा निरन्तर जीवन पाती रहे।

सम्पर्क : 12. बिल्लोटीपुरा, उज्जैन म.प्र.

संस्मरण

अमृतजीवी लोक पुरुष रामा दादा

डॉ. पूरन सहगल

लोक में लोकपुरुष, लोक भाषा और लोक साहित्य की त्रिवेणी पुण्य सलिला गंगा की भाँति सदा कल-कल प्रवाहित होती हुए अपना एक पावन प्रयाग तीर्थ स्थापित कर देती है। जिसने भी उस पावन तीर्थ में डूबकी लगाई उसके भीतर गंगा-यमुना और सरस्वती की सौंधी सुगंध तन को पुल्लकित मन को उमंगित और आत्मा को सुगंधित कर देती है।

लोक पुरुष मरता नहीं वह तो युग युगांतर तक हमारे मन में, मस्तिष्क में और आत्मा में सजीव बना रहता है। वह एक सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह करता है। वही हमें सदा प्रेरित करता रहता है लोक में एक बार डूब कर तो देखो, उसे खंगाल कर तो देखो। उस लोक सागर में अनेक अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। अधिक नहीं तो एक मुट्ठी भर ही निकाल लाओ। उन रत्नों को तराशो, चमकाओ और मूल्यवान से अमूल्य बना कर पुन: लोक को सौंप दो। यह सिलसिला रुकने न पाये। थमने न पाये।

एक दिन तुम्हारे पास रत्नों का एक अखूट भंडार होगा जो तुमने लोक को समर्पित कर दिया है। जो देता है वह दाता और देवता कहलाता है। जो लेता है जो छीनता है। जो झपटता है वह दानव कहलाता है। तुम सदा दाता बने रहो। ख्याति के लिए नहीं सुभाती के लिए। वृक्ष की तरह विष पीकर जगत को अमृत बाँटो। विषधर बनो और विषपायी भी बनो। अमृत्व तुम्हारे लिए प्रतीक्षा करेगा। तुम होकर भी रहोगे और नहीं होकर भी रहोगे।

सन् 1984 और 1985 दो वर्ष मैंने क्राँतिकारी वीर डूँगरसिंह शेखावत पर शोध किया तब कई बार लोक गायकों के मुँह से टण्ट्या भील का नाम भी मैंने सुना। डूँगरसिंह शेखावत की गाथा को लोकनायकों ने ''डूँगजी-जवारजी'' के नाम से गाया है। काका-भतीजा की इस जोड़ी ने सन् 1834 ई. में अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध जनक्राँति की थी। अंग्रेजों और देसी राजाओं ने उसे ''बारोठिया'' कहा। डाकू और लूटेरा कहा। बारोठिया का अर्थ होता है 'राजद्रोही'। डूँगजी राजद्रोही नहीं था। क्राँतिकारी था।

टण्टया का तो मैंने केवल नाम सुना था। मेरे पास कोई जानकारी नहीं थी। मन में इस किंवदंती पुरुष पर काम करने की प्रबल इच्छा थी। मेरी 'डूँगजी-जवारजी' पुस्तक का विमोचन 1986 के अप्रेल में तब के संसद अध्यक्ष महामहिम राज्यपाल म. प्र. ने मंदसौर जिले के मालिया डिगाँव में किया। यह पुस्तक मैंने मई 1986 में दादा रामनारायण जी के लिए 'डूँगजी-जवारजी' की दो प्रतियाँ भेजीं। दादा ने पूरी पुस्तक पढ़ी और 25-5-86 को मुझे एक अन्तर्देशीय पत्र लिखा।

प्रिय पूरन/स्नेह,

मैंने ''डूँगजी-जवारजी'' पूरी पढ़ ली। गाथा गजब की है। आपने श्रम भी खूब किया है। आप निमाड़ के क्राँतिकारी ''टण्ट्या'' पर भी पुस्तक अवश्य लिखिए। पुस्तक गद्य में संस्मरणात्मक इतिहास पर हो तो आम आदमी में लोकप्रिय होगी। यदि आपने यह कार्य कर दिया तो स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास पर वह एक मूल्यवान धरोहर होगी। टण्ट्या भील विद्रोही था। शोषण के खिलाफ डटकर लड़ा था। उसे इसी रूप में आना चाहिए। मेरा सहयोग मिलता रहेगा।''

एक ऋषि का निर्देश था यह। मैं भलीभाँति जानता था कि टण्ट्या पर काम करने के लिए दादा के पास एक बहुत ही सक्षम टीम है। वे किसी भी निमाड़ के साहित्यकार से यह काम करवा सकते थे। डॉ. श्रीराम परिहार और भाई श्री वसंत निरगुणे दो नाम तो मैं तब भी जानता था। ये दोनों मुझसे भी ज्यादा अच्छी तरह टण्ट्या पर काम कर सकते थे। मैं आज भी यही मानता हूँ कि, यदि वे लोग टण्ट्या पर काम करते तो और भी बेहतर होता। दादा का आशीर्वाद मुझे मिला। मैं इसे माँ सरस्वती की अनुकम्पा ही मानता हूँ। लेकिन मैं टण्ट्या पर काम प्रारंभ नहीं कर सका। पूरे पाँच साल बीतने को हुए। 1998 में मैंने टण्ट्या पर काम शुरू किया। 28 मार्च 1999 में मैं खण्डवा गया। श्री डॉ. प्र. च. जोशी के मालवी शब्दकोश का विमोचन था। तब तक मैं टण्ट्या पर पर्याप्त लोक साहित्य एकत्र कर चुका था। दादा के सामने मैं सुर्खरूह होकर जाने की उमंग में था। तब तक भी मैंने दादा को नहीं देखा था।

28 मार्च 1999 की प्रभात। मेरी पत्नी कृष्णा मेरे साथ थी। मन में कई विचार उठ रहे थे। कैसे होंगे दादा। बहुत बड़ा नाम। मिलने में प्रतीक्षा करना पड़ेगी। क्या-क्या प्रश्न करेंगे? यह सब सोचते-सोचते दादा का मोहल्ला और फिर घर आ गया। भीतर सूचना भिजवाई। दादा तो बैठक में ही बैठे थे। नाम जानते ही बाहर आ गए। वामन अवतार। धोती बंडी पहने दादा सामने खड़े थे। मुस्कराते हुए। हम दोनों ने चरण स्पर्श किए। दादा ने मुझे कंथों से पकड़कर उठाया। एक क्षण भाव विभोर मुझे निहारते रहे। फिर बोले ''पूरन जी आप लोक के बीच काम करते हैं। इसलिए लोकपुरुष हैं। इसलिए आप मेरे चरण नहीं मेरे गले लगो।। ऐसा कह कर उन्होंने मुझे

गले लगा लिया उनका भाल मेरे सीने पर था। मेरे भीतर की धक-धक बढ़ रही थी। उस धक्क-धक्क की भाषा दादा पढ़ रहे थे। बहुत देर तक वे उसी मुद्रा में बने रहे। दादा मुझे भीतर से जान लेना चाहते थे। जब वे मुझसे अलग हुए तब हम दोनों की आँखें सजल थीं। मेरे सामने बावन अंगुल का एक ऋषि खड़ा था। एक वशिष्ठ, एक विश्वामित्र, एक सांदीपनि। बौने तन का विराट पुरुष था मेरे सामने। मैंने पुराणों में पढ़ा था वामन

(1) अवतार के बारे में। उस दिन देख भी लिया। मुझे पहली बार लगा कि, एक विराट पुरुष को निहारना कितना रोमांचक होता है। अर्जुन ने किए थे विराट के दर्शन। मैंने भी किए। मुझे सारा लोक उस विराट के भीतर जान पड़ा। कुछ मिनिट तक न मैं कुछ बोल पाया और न दादा। दोनों ने यदि कुछ कहना चाहा तो शब्द शक्तियाँ रूठती लगीं। कृष्णा हतभ्रत। एक मूर्ति की भाँति खड़ी सब देखती रही।

अंत में दादा ने नीरवता भंग की। तुम आ गए। मेरा दमा ठीक हो गया। अब उनका ध्यान कृष्णा की ओर गया। ''बहुत भाग्यशाली हो तुम! एक लोक पुरुष की पत्नी हो। राजरानी होने से लोक रानी होना श्रेष्ठ है। राज्य की और राजा की तो सीमा होती है। उसके पास ऐश्वर्य होता है तो दारिद्रय भी होता है। राज चला जाए तो राजा नल की तरह वन-वन भटक कर चिड़ियाँ मारता फिरता है। उसके चाकर होते हैं तो शत्रु भी खूब होते हैं। लोक पुरुष का राज्य असीमित होता है। लोक, राज्य से बड़ा होता है। बहुत बड़ा। लोक पुरुष पूरी कायनात में स्वच्छंद विचरण करता है। वह अजातशत्रु होता है। तुम्हें इस बात का गर्व होना चाहिए।

कृष्णा क्या बोलती? उसने एक बार फिर दादा के चरण स्पर्श किए। दादा ने बैठने को कहा। चाय पी। मैंने सकुचाते-सकुचाते अपनी प्रगति रिपोर्ट उनके सामने रख दी। टण्ट्या पर नीमाड़ी, राजस्थानी, मालवी, बंजारी की पाण्डुलिपि उनके सामने थीं। सारी गेय गाथाओं को उन्होंने देखा। कुछ पढ़ा। एक बार फिर भाव विभोर हो उठे। मेरी पीठ थपथपाकर बोले- ''आपने जो यह काम किया है वह अद्‌भुत है। किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि, टण्ट्या पर इतना लोक साहित्य उपलब्ध हो सकता है। मुझे भी नहीं थी। आप टण्ट्या पर हजार पृष्ठ भी लिख दें तो भी आप से अधिक वह टण्ट्या को नहीं बखान सकता। तुम लोक साहित्य को आधार बना कर शीघ्र अपना काम पूरा कर लो। उन्होंने और अधिक भाव विव्हल होते हुए कहा ''तुमने नीमाड़ी लोक साहित्य पर काम किया है। नीमाड़ी के क्रॉंतिकारी सपूत पर काम किया है। न्यास तुमको ''गणगौर सम्मान'' देगा। मैंने कहा ''दादा ! मैंने तो आपके निर्देश का पालन किया है। आप संतुष्ट हुए तो मेरा श्रम सफल हुआ। मैंने गणगौर सम्मान का तो नाम भी नहीं सुना। हो सकता है वह बहुत बड़ा सम्मान हो किन्तु आपने आज मुझे ''पंडित रामनारायण उपाध्याय'' सम्मान प्रदान कर दिया है। जो भारत के किसी भी सम्मान की तुलना में श्रेष्ठतम् सम्मान है। मैं धन्य हो गया। शीघ्र ही मैं अपना काम पूरा करके आपके सामने लौटूँगा। तब मेरी वाणी गद्‌गद् हो उठी थी और नैत्र सजल।

आज रामा दादा नहीं है। भले ही उस दिन सम्मान की बात हम दोनों के बीच एक भावनात्मक उद्‌गार थी। आज मैं अनुभव करता हूँ कि, मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी को ''पंडित रामनारायण उपाध्याय'' पुरस्कार स्थापित करना चाहिए। अकादमी यदि ऐसा निर्णय लेती है तो ऐसा माना जाएगा भारतीय संस्कृति आज भी जीवंत है। वह मनीषियों को आदर करना भूली नहीं है।

इसी बीच ललित जी वहाँ आ गए। हम लोग दादा से अनुमति लेकर वहाँ से ललित जी के 'ईशकृपा सदन' आ गए। वहीं हमारे ठहरने की पारिवारिक व्यवस्था थी। उसी रात डॉ. प्र. च. जोशी के ग्रंथ का विमोचन था। दादा मंच पर थे। जैसा घर में देखा था ठीक वैसा सहज व्यक्तित्व। तनिक भी दंभ नहीं। कोई वेशभूषायी दिखावा नहीं। जब उनके स्वागत में उन्हें पुष्पमाला पहनाई जाने लगी तब उन्होंने मुझे पुकारा। मैं उनके निकट ही मंच पर था। ''नीमाड़, नर्मदा, अहिल्या और सिंगाजी'' के नाम से जाना जाता है। यह बात आप सदा याद रखना। आपके लेखन में यह बात बनी रहे। अब नीमाड़ टण्ट्या के नाम से भी जाना जाए। तुम्हारा यह प्रदेय हो। आपके लिए बैरागी जी ने लिखा है। ''पूरन जन्म से पंजाबी, धर्म से शिक्षक एवं कर्म से मालवी है। यह संत साहित्य और मालवी लोक साहित्य पर खूब काम कर रहा है। तुम्हारा आशीर्वाद और सानिध्य पाकर अब यह नीमाड़ी लोक साहित्य एवं लोक नायक पर भी काम करेगा।'' तुम बैरागी जी के कथन में सफल हुए हो। आगे भी होओगे। मैं इस मंच पर तिलक लगाकर और पुष्पमाला देकर आपका अभिनंदन करता हूँ।'' दादा यह बात अत्यंत सहज और आत्मीय भाव से कह गए। मैं क्या बोलता? शब्द ही नहीं थे मेरे पास। वैसे भी ऋषिजनों की वाणी सुनी जाती है। स्वीकारी जाती है। आत्मसात की जाती है। उसका उत्तर नहीं दिया जाता। उनके वे शब्द आज भी कानों में रस घोलते हैं। प्रेरणा देते हैं। नीमाड़ी लोक साहित्य का प्रज्ञा पुरुष आज भी मेरे अच्छे काम करने पर मुझे पीठ थपथपाता हुआ अनुभव होता है। आज भी उन्हीं के शब्दों में कुछ जोड़कर यों कहना चाहता हूँ कि, नीमाड़, नर्मदा, अहिल्या, सिंगाजी और रामादादा के नाम से जाना जाता है। ऐसा कहकर मैं किसी साहित्यकार की अवज्ञा नहीं कर रहा। बात लोक और लोक

पुरुष की है। दादा को मैंने पहली बार मंच पर बोलते हुए सुना था। लगता ही नहीं था वे कोई व्याख्यान दे रहे हैं या प्रवचन कर रहे हैं। जैसे वे घर में बतियाते दिखे वैसे ही मंच पर।

ऐसा लगता था कोई ऋषि ऋचाओं का पाठ कर रहा है। बोलने में एक अनिर्वचनीय उत्साह, अद्‌भुत जीवंतता। अनुपम आत्मीयता। दादा शब्दों के जंजाल जाल में तनिक भी नहीं उलझ रहे थे। न उलझा रहे थे। ओंकारनाद की तरह सारा हाल गूँज रहा था। दादा बतियाते रहे थे। व्याख्यान नहीं दे रहे थे। भाषा उनके समक्ष हाथ जोड़े, सावचेत खड़ी दिख रही थी। लोक पुरुष और लोक भाषा के धनी का दातार होना शायद उसी को कहते हैं। बड़ा होना और बड़प्पन होना दोनों का अन्तर उस दिन मैंने अनुमाना। समूचा हाल दादा के ब्रह्मनाद में इस प्रकार मुग्ध और ध्यानास्थित हो गया था कि किसी को भी अपनी उपस्थिति का भान तक नहीं रहा। दादा अपनी बात कह कर बैठ चुके थे। पारंपरिक करतल ध्वनि करने तक का किसी को भान नहीं रहा। लगभग

(2) 3-4 मिनिट तक नीरवता बनी रही। ललित जी ने जब मंच के संचालक माइक से नीरवता भंग की तब सब चेतमान हुए। दादा का ठहाका भी अद्‌भुत होता था। पूरी जिंदादिली से सराबोर। सारे आकाश को गुंजायमान करता हुआ। समूची शुन्यता की प्राणवान करता हुआ एक असीम गहराई तक चला जाता था। आकाश में ही क्यों हृदय के भीतर के तंत्रीनाद को झंकृत कर देने का जादू था उनके अट्टहास में। उनकी सादगी उनका चरित्र थी। जैसे भीतर वैसे बाहर भी। न भीतर का आडंबर न बाहर का दिखावा। गाँव में उन्होंने अभावों को देखा भी भोगा भी। अभाव उनके लिए स्वभाव थे। उन्हीं के भाव-विभाव में सदा मस्त रहे। उन्होंने अभावों को बड़े लाड़-दुलार से साधा सहेजा था। वे अभाव दादा की जीवन शैली के पहरुए और संगाती थे। उनकी एक कविता बहुत चर्चित है।

''यदि तुमने आँसुओं के साथ रोटी नहीं खाई,
पेबंद लगे कोट की व्यथा नहीं सही,
फटे जूते का दर्द नहीं भोगा,
बाँह का सिरहाना लेकर नंगी धरती पर रात नहीं काटी,
तो तुम जिंदगी का स्वाद नहीं जानते।''

दादा के जीवन का सारा सत्व इन पंक्तियों में दर्ज है। यदि कोई दादा की जीवनी लिखे और उसे सार रूप में कहना चाहे तो ये पंक्तियाँ दोहरा सकेगा।

यह सच है कि, मैंने दादा का संग बहुत कम किया कुछ घंटे मात्र। लेकिन मैंने उन्हें समझने की पूरी कोशिश की है। दादा की उपरोक्त पंक्तियों को मैंने जस का तस भोगा है। लगता है ये पंक्तियाँ मेरे ही लिए लिखी गई हैं। दादा ने मुझे अपनी आत्मा में बैठाया था। इसलिए मैं उनका आत्मज हूँ। मैंने उन्हें अपने चरित्र में समाहित किया है। अपनी जीवन शैली में अपनाया है। इसलिए वे मेरे अग्रज, प्रेरक एवं पितृपुरुष हैं। मैं उनका अनुगामी अनुचर हूँ। लोक ऋषि का गोत्रज हूँ।

इसी संदर्भ में बात शिशिर उपाध्याय की भी है। उन्होंने दादा के ''स्मृति ग्रंथ'' का नाम ''एक छाँव नीम की'' रखा। मैं नहीं जानता यह शीर्षक उन्होंने किस उद्देश्य को सामने रखकर तय किया किन्तु मैंने जितना दादा को जाना है। उस आधार पर यह शीर्षक पं. रामनारायण स्मृति ग्रंथ के लिए एक दम सटीक है। मैंने संत साहित्य पर शोध कार्य किया। संत पीपा की कृतियों का संकलन-संपादन मेरे शोध का विषय था। उसके पश्चात मैंने श्री काँवेरी शोध संस्थान उज्जैन के निर्देशक डॉ. श्याम सुंदर निगम जी के सानिध्य में मैंने दशपुर जनपद के 35 वाणीदाता संतों की वाणी का संकलन-संपादन किया है। इसी प्रकार लोक देवता रामदेवजी, तेजाजी, गोगाजी, पाबूजी और देवनारायण की गाथाओं पर भी काम किया है। किसी भी संत अथवा लोक देवता ने नीम को प्रतीक बना कर अपना पद अथवा साखी नहीं रची। लोक देवता देवनारायण जी ने नीम को 'विषधर' होने का वरदान दिया। उन पर नीम की पाती का शृंगार होता है। तभी से अन्य देवरों पर भी नीम की डाली का झाड़ना होता है।

संत पीपाजी मेरी जानकारी में ऐसे संत हैं जिन्होंने अपनी वाणी में नीम को प्रतीक बनाया है। उनके द्वारा रचित मेरे पास उपलब्ध वाणी में आठ साखियाँ ऐसी हैं जिनमें नीम को प्रतीक बनाया गया है। एक साखी में उन्होंने नीम को 'ब्रह्म' के प्रतीक रूप में बखाना है। इस साखी में उन्होंने सगुण-निर्गुण पर अपना मत प्रकट किया है।

''सरगुन मीठो खाँड सो, निरगुण करुओ नीम।
पीपा सतगुरु परस दे, निरभ्रम हो अर जीम।।''

इस साखी में जब उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को कड़वा नीम कह दिया तब संभवत: उन्हें लगा हो कि, इस साखी से कुछ भ्रम हो सकता है। ब्रह्म (निर्गुण) को कड़वा नीम क्यों कहा तब उन्होंने नीम के महत्त्व पर अगली छह साखियों में प्रकाश डाला।

''पीपा सतगुरु लीमड़ी, मेटे रगत विकार।
पेलाँ तो करुओ लगे, पाछे इमरत धार।।
नीम निंबोरी, फूलड़ा, छाँव हीव की ठार।
पीपा सतगुरु लीमड़ी, मेटे सगल विकार।।

इन दोनों साखियों में पीपाजी ने नीम को सतगुरु के रूप में निरूपित किया है। एक अन्य साखी में उन्होंने सतगुरु और ब्रह्म में अभेद बताया है। इस प्रकार नीम कड़वी होने पर भी विषहर है। समस्त विकारों को दूर करने वाली है। नीम की छाया (छाँव) दुर्लभ है। उसके प्रभाव से हृदय में 'ठार' आ जाता है। मन त्रिताप से मुक्त हो जाता है। तन और मन दोनों में सहजता, शांति, संतोष, शील और सारल्य भाव प्राप्त हो जाता है। इस दृष्टि से दादा जी ''नीम की छाँव'' ही थे। उनके निकट जो भी गया निर्द्वन्द्व हुआ। सहजता प्राप्त की। तनाव और कुंठा से मुक्त होकर नई उमंग और उत्साह लेकर लौटा। नीम को कड़वा इसीलिए किया लोक देवता देवनारायण जी ने। ''कड़वी भेषज बिन पियाँ मिटे न तन को ताप'' कहकर पीपा जी ने नीम की कड़वाहट को अमृत बना दिया। सारा विष

नीम की छाया हर लेती है। नीम तो महादेव ही हुआ। शिवशँकर इसीलिए उन्हें कहा गया। शुभ और कल्याण करने वाले देवता। रामा दादा भी तो विषधर शिव-शँकर ही थे।

(3) आज वह विषहर, वह शिव-शँकर, वह नीम की गहरी छाँव हमारे पास नहीं है। जो लोग गाँव में रहे हैं वे नीम के फूलों की भीनी-भीनी गंध से वाकिफ हैं। ऐसी सुवासित गंध किसी भी फूल में नहीं होती। मानसिक तनाव और दैहिक तनाव को कुछ ही क्षणों में दूर कर लेने की क्षमता होती है। नीम के नन्हें-नन्हें फलों में। फूलों और निंबोली के औषधीय गुणों का बखान आयुर्वेद ने खूब किया है। नीम के फूलों की सुगंध का महत्त्व तो इस बात से भी पक्का हो जाता है कि, डॉ. नामवर सिंह जी ने अपने नवगीत 'संग्रह' का नाम ही ''नीम के फूल'' रखा। भले ही यह कृति 1950 में छपी थी। खंडवा की उस नीम की छाँव तले जो भी गया सहज होकर लौटा।

कालगति को कोई नहीं जान सकता। 20 मई 2001 के दिन लोक पुरुष, लोक में समा गया। उस विषहरणी नीम के फूलों की सुगंध आज भी वायुमंडल में सुवासित है। विराट पुरुष निज स्वरूप में विलीन हो गया। उसकी 'जोत' से आज भी लोक ज्योतिर्मान हो रहा है। उनके आत्मीय मित्र 'दमे' ने अपने दिलदार और दमदार संगाती को हमसे दूर कर दिया। हम आज भी रामादादा के सहज स्नेह को भलीभाँति अनुमान सकते हैं। वे सदा हमारे बीच हैं। ठहाके लगाते हुए। मुस्कराते हुए।

मैंने अपने लेख में एक बार लिखा था कि, दादा रामनारायण जी तो कालपुरुष हैं। जो काल से भी ऊपर होता है। जिसे काल भी प्रभावित नहीं कर सकता। काल का अर्थ समय भी तो होता है। जो समय का साधक होता है वही तो काल पुरुष होता है।

यही बात रामा दादा के लिए शतप्रतिशत लागू होती है। वे कैसे मर सकते हैं? आज भी वे हमारे मन में जीवित हैं। 20 मई 2018 उनकी जन्म शती था। उनका गाँव कालमुखी है। भाई शिशिर उपाध्याय ने अपने परिवार के सहयोग से जन्मशती महोत्सव कालमुखी में आयोजित किया।

डॉ. शैलेन्द्र कुमार जी शर्मा भी हमारे साथ थे। वस्तुत: मैं उनके साथ कालमुखी गया था। कार्यक्रम ठीक उनके घर के पास वाली गली में था जहाँ वे खेले बड़े हुए और अपने कई संस्मरण छोड़े।

गली में दूर-दूर तक ठसमठस गाँव के लोग। लगता था पूरा गाँव उमढ़ पड़ा है। सबके पास दादा के कई संस्मरण कंठस्थ। वे कैसे हँसते थे। कैसे चलते थे। कैसे डाँटते थे। कैसे पुचकारते थे। कैसे मिलते थे। अद्‌भुत था वहाँ का दादा के प्रति प्रेम ! शब्दातीत ! अवर्णनीय ! इसलिए तो मैं उन्हें कालपुरुष कहता हूँ। मुझे याद है डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा का वह भावपूर्ण विद्वतापूर्ण और अपनत्वपूर्ण व्याख्यान। लोग तन्मय होकर सुन रहे थे।

कालमुखी के उस आयोजन से एक बात और यह भी सिद्ध कर दी कि, उनका बहुत बड़ा विस्तीर्ण परिवार आज भी उन्हें याद करता है। वे आज भी अपने विशाल परिवार के दिलोदिमाग में जीवित और जीवंत हैं।

मैं उस ठहाकेदार और सलकेदार रामादादा को कभी नहीं भूल पाया। ऐसे ही ठहाकेदार और सलीकेदार थे दादा बालकवि बैरागी। वे रामादादा और मेरे बीच एक सेतुबंध थे। ऐसे दिव्य और भव्य व्यक्तित्व, ऐसे लोक पुरुष और साहित्य साधक तो सच में पूजा योग्य ही होते हैं। वे तो अमृतकलश की तरह हमें ऊर्जा और जीवंतता प्रदान करते रहते हैं। होते हुए भी और नहीं होते हुए भी।

मैं जब भी किसी पूजा-अनुष्ठान में कलश पूजा करता हूँ तब सहज ही लगने लगता है कि, कलश पूजा के पश्चात और किसी भगवान अथवा देवी-देवता की पूजा करना आवश्यक नहीं रह जाता। सभी तो कलश में समाहित हैं।

''ऊँ कलशस्ये मुखे विष्णु, कण्ठे रुद्र समाश्रितः।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा, मध्य मातृकाः स्मृता।।
कुक्षौ तु सागराः सर्वे, सप्तदीपा वसुंधरा।
ऋग्गोदोऽथः, यजुर्वेद, सामवेदो ह्यथवर्णाः।।
अंगे च सहिताः सर्वे, कलशन्तु समाश्रिता।''

जिस कलश में विष्णु, रूद्र, ब्रह्मा, मातृगण, समस्त सातों सागर द्वीप, चारों वेद एवं समस्त संहिताएँ समाश्रित हों। उस कलश की पूजा कर लेने के पश्चात कौनसे भगवान की पूजा शेष रह जाती है।

दादा स्व. पं. रामनारायण जी उपाध्याय ने लोकमाता नीमाड़ी के समक्ष ''शब्द'' और ''सबद'' के जितने मंगलकलश और मंगलगीत सुप्रतिष्ठित किये थे। वे सब एकमेव होकर एक लोकमंगलदायी कलश का स्वरूप लेकर समग्र लोक साहित्य के प्रतिनिधि के रूप में हमारे समक्ष गौरव-पाट पर स्थापित है। हमें इस मंगलकलश की केवल पूजा ही नहीं करना है। इसमें समाहित ऊर्जा को स्वयं में समाहित करना होगा। यह मंगल कलश एक दधीची की तपस्या का प्रतिफल है। जिस प्रकार महऋषि दधीची ने देवताओं के समस्त दिव्य आयुधों की शक्तियाँ स्वयं में स्थापित कर ली थीं। ठीक उसी तरह दादा स्व. पं. रामनारायण उपाध्याय ने लोक साहित्य की दिव्यता को अपने भीतर समाहित कर लिया था। ऐसी मंगलदायी स्थिति कोई दधीची अथवा कबीर ही पा सकता है। दधीची, कबीर अथवा पं. रामादादा एक दूसरे के पर्याय हैं। कबीरायी स्थिति अथवा दधीचायी स्थिति पाने के लिए सारा जीवन हवन करना पड़ता है। अंश-वंश स्वाहा: होना पड़ता है। रामादादा ने ऐसा करके ही यह मंगलदायी दिव्यता प्राप्त की।

''तन को जोगी सब करै, मन को बिरला कोई।
सब सिद्धि सहजे पाइये, जे मन जोगी होई।।''

(4) मन का जोगी हो पाना बहुत कठिन होता है। तक को जोगी कर लेना तो बहुत सहज है। जब मन जोगी हो जाता है तब भीतर जो 'ज्ञान जोत' जगमगा उठती है। उससे सारा अज्ञान अँधकार नष्ट हो जाता है। एक अद्‌भुत दिव्यता प्राप्त हो जाती है। भीतर 'सरीर' में 'सबद' की तंतरी बज

उठती है। एक 'सबद तंतरी' जिसकी अनुगूँज बाहर-भीतर सुनाई पड़े। 'सुने सोई निहाल''बोले सो निहाल'। यह तंतरी नाद, शब्द ब्रह्म की सतत साधना के पश्चात ही मुखर होता है। मनोयोग जगत में साँईं को बसाना पड़ता है। जब साँईं मन में माणक पाट पर बस जाय तो मीरा, कबीर, सूर, तुलसी और चंद्रसखी की स्थिति बन जाती है। सारी ''गरज' समाप्त हो जाती है।''साँईं और स्वयं'' का फर्क मिट जाता है।

''कबीर मन निरमल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे-पीछे हरि फिरैं, कहत कबीर-कबीर।।''

स्व. पं. रामनारायण उपाध्याय ने यह बेगरज-बेपरवाह स्थिति प्राप्त कर ली थी। पारस सोना तो बन सकता है किन्तु अपना अद्‌भुत स्पर्श देकर पारस नहीं बना सकता। रामादादा ने इस वास्तविकता को नकार दिया। उन्होंने जिसको छू दिया सच्चा-खरा पारस बना दिया। पारस से श्रेष्ठ शालिग्राम होता है। शालिग्राम से भी श्रेष्ठ होता है, तुलसी बिरवा। तुलसी बिरवे से पावन होता है श्रद्धा और आस्था का आँचल जो तुलसी बिरवे के नीचे धरे दीपक को हवा आँधी और कुदृष्टि से बचाकर प्रज्वलित बनाए रखता है। पं. रामनारायण उपाध्याय वही ममता वाला आँचल थे। उस आँचल के नीचे अनेक दीपक सुरक्षित रह कर प्रज्वलित होते रहे। आज भी नीमाड़ी लोक साहित्य के आँगन में जगर-मगर प्रकाश फैला रहे हैं।

पं. राममूर्ति त्रिपाठी ने दादा के लिए कहा है- ''यह लोकोपासक, श्रद्धामय भारतीय पुरुष, जिस पर श्रद्धा रखता है, वह, वही हो जाता है। लोक की उपासना करते-करते यह लोकोपासक, ''जगंम लोक'' ही बन गया है।'' यही कारण है कि मैंने दादा को लोक साहित्य का मंगल कलश कहा है। लोक माता के अनुष्ठानों में दादा के द्वारा स्थापित कलश अपनी प्रतिष्ठा और पावनता सहित दादा के भीतर समा गये हैं। इसीलिए मैं दादा को मंगल कलश कहता हूँ। समस्त द्वीपों की सांस्कृतियाँ और समस्त सागरों की गहनता दादा में अनुभव करने के पश्चात ही मैंने उन्हें मंगल कलश कहा है। गणपति और त्रिदवों का मंगलमय स्वरूप देखने के पश्चात उन्हें मंगल कलश कहना ही होगा।

दादा पं. रामनारायण उपाध्याय अब देह से ऊपर उठकर ''शब्द शक्ति'' बन गये हैं। शब्द जो सृष्टि की सार्थकता का बोधक है। साधारण मनुष्य से शब्द और शब्द से ''सबद'' तक यात्रा ही दादा का जीवन चरित्र है। एक वामन पुरुष की यह यात्रा बड़ी रोचक, रोमांचक और प्रेरणादायी है। एक संत पुरुष ने कहा है- ''सबद की मार करारी लागे।'' सबद की यह करारी मार ही सुरति को जगा देती है। सुरती के जागने पर ही तो त्रिवेणी का प्रवाहमान स्रोत एक रूप हो जाता है। त्रिवेणी का यह भीतरी संयोग ही त्रिवेणी संगम कहलाता है। सत्य-स्नेह और सृजन का यह त्रिवेणी संगम जब भीतर प्रवाहित उठता है, तब गीता की ''स्थिति प्रज्ञता'' पैदा होती है। मोक्ष के पड़ाव को पार कर बहुत आगे, आत्माभिव्यक्ति से भी ऊपर, समस्त रूढ़ आचारों-विचारों से परे, ''साँईं साहिब एक हैं या में भिन्न न भिन्न'' की स्थिति बन जाती है।

रामा दादा ने लोक साहित्य में यही किया है। आयु के तिरयासी पड़ाव पार कर चौरासिवें पड़ाव पर डेरा लगाने से पूर्व न तो वे पिछले पड़ावों के बारे में। सृजनधर्मी रामा दादा को इतनी फुर्सत ही कहाँ थी कि, वे अपने पिछले वर्षों के सृजन का लेखा जोखा देखें या हिसाब लगाएँ? किसान के बेटे थे रामा दादा। किसान हिसाब नहीं लगाता। हल चलाता है। बाग लगाता है। फसल उगाता है। सृजन करता है। धरती में बोये गए बीजों को गिनता नहीं। माँ, भगवान और किसान में कोई अंतर नहीं होता। माँ का ममत्व, किसान का सृजन और भगवान का सत्य एकमेव होते हैं। तब साहित्यकार जन्म लेता है। रामा दादा ऐसे ही सहज, सृजनहारा और सर्वहारा साहित्यकार थे। वाल्मीकि की पीड़ा उनके हृदय में सदा जीवित बनी रही। ठीक उसी तरह जैसे शिव शँकर के कंठ में लोक सागर का विष। न तो शिव ने अपने कंठ के विष को जगत में बाँटा और न रामा दादा ने हृदय के दर्द को। शिव ने यदि बाँटा तो अपना शिव-शँकर प्रसाद। अपना मंगलकारी आशीर्वाद। उसी प्रकार रामा दादा ने यदि कुछ बाँटा तो वह थी ठहाकों से भरी जीवन-शक्ति। सृजन की संजीवनी।

लोक साहित्य के विषय में दादा ने कहा था कि, ''इसका प्रवाह मौखिक से लिखित है। इसलिए इसे श्रुति कहा गया है। आदिमानव की सामूहिक अभिव्यक्ति में से लोक साहित्य का जन्म हुआ है। वस्तु के स्वरूप, हावभाव, ध्वनि में से शब्दों का जन्म हुआ है। मानव ने, गंगा की कल-कल, बिजली की कड़क, सूर्य और अग्नि की उपासना और बरसते मेघ में, उन्मुक्त होकर जो गीत गाए होंगे वही गीत, उपासनाएँ हैं। वेदव्यास ने उन्हीं उपासनाओं को परिष्कृत करके वेदों में सम्मिलित किया है। इस प्रकार उन गीतों और वेदों ने अभिन्न संस्कृति को बुना। गीतों की यही लोक प्राथनाएँ वेदों की ऋचाएँ कहलाईं। ऋषियों ने जिस अनंत अक्षर तत्व का वेदों में गान किया है। उसी का छन्दित और उल्लासपूर्ण स्वरूप मानवीय कंठों से लोकगीतों में गूँजता आया है। लोक ! हजार आँख, हजार सिर, हजार बाहू और हजार पांवों वाला नहीं है। वह तो अनंत आँख, अनंत शीश, अनंत भुजाओं और अनंत पांवों से पृथ्वी के कोने-कोने में व्याप्त है।'' लोक साहित्य सदा सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् की स्तुति करता है। वह सदा-सर्वदा सबके लिए मंगल की ही कामना करता है। वह अनुष्ठान में प्रतिष्ठित ''मंगल-कलश'' की तरह सब का कल्याण करता है। अनुष्ठान को सफलता प्रदान करता है।

(5) ऐसी ही मंगल कामना रामा दादा ने अपने समग्र सृजन में की है। यही कारण है कि, वे अग्रपूज्य गणपति का स्थान प्राप्त कर सके। यही कारण है कि वे लोक साहित्य का मंगल कलश बन सके। लोक साहित्य के वे पुरोधा थे। नीमाड़ी बोली को अभिव्यक्ति की क्षमता दी। उसे बोली से भाषा का स्वरूप प्रदान किया। दादा ने लोक साहित्य सभी अंगों पर गवेषणात्मक कार्य किया है। लोकगीत, लोक कथाएँ लोक कहावतें (लोकोक्तियाँ) लोक पहेलियाँ और लोक कलाएँ। सभी विधाएँ दादा की कसौटी पर से होकर फिर लोकजीवन को प्राप्त हुई है। ''लोक साहित्य

समग्र'' में दादा ने ठीक वैसा ही काम कर दिखाया है जैसा कि मत्स्य अंश अवतार में भगवान विष्णु ने किया था। यह ग्रंथ रामा दादा की समग्र सजृन, सम्पादन और संकलन शैली का जींवत उदाहरण है। लोक साहित्य के शोधार्थियों के लिए यह ''समाधान ग्रंथ'' है। विशेषकर नीमाड़ी लोक साहित्य के लिए समीक्षात्मक और समाधानात्मक वर्णन व विवरण अन्यत्र मिल पाना कठिन ही नहीं असंभव भी है। अपनी तरालीस वर्ष की सृजनशीलता को कुल चालीस पुस्तकों में दादा ने व्यक्त किया है।''लोक साहित्य समग्र'' में उन्होंने अपना समग्र चिंतन भिन्न-भिन्न विधाओं के माध्यम से उंडेला है।

पद्मश्री व अन्य पुरस्कार एवं अलंकरण उन्हें जब प्रदान किये गए होंगे तब खूब शुभे होंगे। किन्तु अब वे सभी अलंकरण रामा दादा के कारण सुशोभित हुए से लगते हैं। अब तो एक अलंकरण ''पं. रामनारायण उपाध्याय'' के नाम से घोषित होना चाहिए। जो नीमाड़ी-मालवी लोक सृजकों को प्रेरणा दे सके। रामा दादा को जो भी अलंकरण मिला, उसे उन्होंने सस्नेह और ससम्मान ''माथे तो'' चढ़ाया लेकिन उसे ''माथे पर'' कभी नहीं चढ़ाया। वे अलंकरण उनके लिए घड़ी दो घड़ी का विश्राम तो बने। पड़ाव नहीं बन सके। दादा की सृजन यात्रा अपनी गति से चलती ही रही। बिना रुके। बिना थके।

रामा दादा दमे के मरीज थे। कहते हैं ''दमा दम तक।'' वे दमे को अपना अभिन्न मित्र मानते थे। सब साथ छोड़ जायें लेकिन दमा साथ निभायेगा। उन्होंने एक पत्र में पंडित रामचन्द्र जी शुक्ल को लिखा- ''कहा न दमा दमदार को होता है। रोज दो रोटी खाता हूँ। दो कपड़े पहनता हूँ। दो गोली खाता हूँ। और दो बातें करता हूँ। इस आयु में भी जो दिन सामने आता है उसे पूरी ताकत से जीता हूँ। ऐसा दोस्त कहाँ मिलेगा जो जीवन भर साथ निभाए।'' पं. रामचन्द्र शुक्ल ने दादा की जीवंतता पर टिप्पणी की कि, ''ऐसा तो एक अवधूत ही कह सकता है। एक ऐसा अवधूत जिसने जीवन की सच्चाई को आत्मसात कर लिया हो। साधुवाद!''

स्नेह, समझ और प्रेरणा का मंगल कलश हम सबके लिए सदा मंगलमय ही बना रहा। लोक साहित्य असुंदर और अमंगल को कहीं स्थान नहीं है। लोक साहित्य के उस मंगल कलश ने जब 20 मई 2001 को आयु के तिरासी वर्ष चौरासिवें वर्ष में प्रवेश किया, तब तक भी उनकी सजृनशीलता सतत थी। उनका चिंतन, चैतन्य और आस्था अटूट थी। लोक की उपासना और लोक साहित्य से सरोकार पंडित जी की दैनिक पूजा थी। लोक साहित्य में वैश्वीकरण की सुंगध का बोध रामा दादा ने सबसे पहले पाया। फिर उसे लोक में विस्तारित किया। 20 जून 2001 को उनकी जीवन यात्रा थम गई। लोक साहित्य का सूर्य अस्त हो गया। लोक मानुस लोक में समा गया। रामा दादा किंवदंती पुरुष बन गए। लोक साहित्य का पर्याय बन गए।

रामा दादा ने समरसता भाव से सदा नींव से शिखर तक एक भाव बनाए रखा। न तो दीनता और न ही कायरता। गीता का यह संदेश उन्होंने गीता से नहीं लोक मानस से सीखा। दादा के लिए पं. राममूर्ति त्रिपाठी ने बहुत ही सहज टिप्पणी की है- ''एक बुद्धि वह होती है जो पोथियों के सहारे अपना परिष्कार करती है। दूसरी वह होती है जो सहज आलोक से आलोकित होती हुई व्यवहार निष्पादन करती है। उपाध्याय जी इसी श्रेणी में आते हैं।'' इसीलिए तो मैंने रामा दादा को कबीर कहा है। वे बहुपठित नहीं थे। बहुश्रुत थे। लोक को उन्होंने जीवन में उतार लिया था। उन्होंने आलोक, लोक से लिया। पोथियों से नहीं। वे पंडित तो केवल वंश से ही थे। खण्डवा की ब्राह्मणपुरी उनकी तपस्या स्थली थी। भले ही निवास से वे खण्डवा, नीमाड़ के थे किन्तु वे थे समग्र मालवा के बल्कि पूरा भारत उनका घर था। ''वासुदैव कुटुम्बकम्'' उनका चरित्र था। आदि शंकराचार्य जी ने अन्नपूर्णा स्त्रोत में कहा है- ''बांधवा शिवभक्तश्च स्वदेशो भवनम् त्रयम्'' ऐसा ही भव्य स्वभाव हमारे रामा दादा का था। वे हम सबके ''सांझे'' थे।

वस्तुत: वे एक मालगुजार के किसान बेटे थे। नीमाड़ी मन वाले किसान के प्रतिनिधि थे। लोक ही उनका देवता था। उसी की पूजा वे स्वीकारते और सत्कारते थे। उन्होंने स्वयं को जीवन पर्यंत लोकोपासक ही बनाए रखा। लोकोत्तर होने का मोह और भ्रम उन्हें कभी भी नहीं रहा।

गाँव का गंवई रामादादा सबका अपना रामादादा बना रहा। उनका कायागत बौना व्यक्तित्व तब आकाश से भी ऊँचा हो जाता था जब कोई आकाश उनके चरण छूने के लिए उनके चरणों में झुक जाता था।

गाँधी विचारधारा से सराबोर रामा दादा का ''गाँधी दर्शन'' पढ़कर बार-बार उनसे भेंट करने का मन उत्कंठित हो उठता था। उनके भीतर मनोजगत में बैठा ''गाँधी भाव'' उन्हें और भी महान सिद्ध कर देता है। वस्तुत: गाँधी तो लोक में ही बसता है। रामा दादा ने ''गाँधी भाव'' को लोक में से खोजा। गाँधी साहित्य में से नहीं। उनके लिए श्री बालकवि बैरागी ने खूब कहा है- ''रामा दादा बौने तन के तथा विशाल मन के आकाशधर्मी लोक पुरुष थे। वे वामन की भाँति औढर दानी थे। विष्णु जैसे अनेक अवतारी पुरुष उनके दरवाजे पर ''दरवेश बन कर आते थे।''

नीमाड़ का वह गाँधी, नीमाड़ी का वह गंवई बेटा, लोक साहित्य का वह मर्मज्ञ मनीषी रामादादा आज भी

(6) 'वामन' की तरह लोक के साहित्याकाश को अपने वामन पगों से नापता हुआ कहीं दिख जाए तो हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। वे तो शिवलोक की यात्रा पर गये हैं। लोक देवता शिवलोक ही तो जाएगा। 13 जनवरी 2013 को कृति द्वारा आयोजित मेरे अमृत महोत्सव में बैरागी जी ने कहा था ''लोक साहित्यकार कभी मरता नहीं। वह अमर हो जाता है।'' दादा अमर हैं। वे सदा हमारा मार्ग प्रशस्त करते दिखेंगे। उन्हें प्रणाम!

सम्पर्क : निदेशक मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान, मनासा,
जिला नीमच म.प्र. म.प्र. मो. 9424041310

■

संस्मरण

लोक जीवन की पगडंडियों पर चलते सांस्कृतिक शिखर के यात्री पं. रामनारायण उपाध्याय

गोविंद गुंजन

पंडित राम नारायण उपाध्याय के प्रथम दर्शन की मेरी स्मृति वर्ष 1973 की है, तब मैं सनावद के मयाचंद जैन हायर सेकेंडरी स्कूल का विद्यार्थी था । तब हमारे स्कूल का वार्षिक उत्सव था, और उसमें मुख्य अतिथि के रूप में पंडित रामनारायण उपाध्याय का आगमन हुआ था। उस दिन उनके भाषण ने ऐसा समा बाँधा था कि उसे आज भी मैं भूला नहीं हूँ । उस दिन उन्होंने जो कहा था उसकी एक बात मुझे आज भी याद है । उन्होंने गंगा अवतरण की कथा के माध्यम से हमारे सिस्टम की कमजोरी पर व्यंग्य में एक एक गहरा रूपक रचते हुए कहा था कि 'जब पृथ्वी पर गंगा का अवतरण होना था, तब उसके वेग को झेल सके ऐसा कोई पृथ्वी पर नहीं था। गंगा को भी अपनी शक्ति और वेग का बड़ा गर्व था कि वह यदि आकाश से पृथ्वी पर सीधे उतर आयेगी तो पूरी धरती डोल जायेगी, इसलिए भगवान् शिव ने उसे पहले अपनी जटाओं में झेला और बाद में उसे अपनी जटाओं में कैद कर लिया। गंगा पूरी शक्ति लगा कर भी उनकी जटाओं से बाहर न निकल सकी । इस प्रकार गंगा के गर्व का भंजन करके शिव ने अपनी जटा के कुछ बाल खोल कर उसे मार्ग दिया, और वहाँ से वह एक पतली धार के रूप में बाहर निकल सकी। दादा ने उस दिन कहा था कि --तब से आज तक यही चल रहा है । दिल्ली से विकास की गंगा निकलती है तो वह हमारे भ्रष्ट सिस्टम की जटाओं में गुम हो जाती है। भारत के गाँवों तक तो वह आज भी नहीं पहुँच पायी है । दिल्ली से विकास का एक रुपया चलता है तो मुश्किल से हम तक चवन्नी पहुँचती है । आश्चर्य की बात यह है कि इस बयान के सत्रह साल बाद वर्ष 1990 में भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री राजीव गांधी ने भी ठीक यही बात कही कि विकास के नाम पर यदि दिल्ली से एक रुपया चलता है, तो जनता तक मुश्किल से चवन्नी पहुँचती है। इसे पंडित राम नारायण उपाध्याय की दूरदृष्टि का एक उदाहरण माना जा सकता है।

उस रात सनावद में वह उनके परम मित्र , पत्रकार एवं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्व. जगदीश विद्यार्थी जी के मेहमान थे । उस रात उनका दूसरा रूप मैनें देखा। उन्हें सब दादा कह कर संबोधित करते थे। उनसे मिलने उस दिन सनावद नग़र के प्रबुद्ध जनों की भीड़ विद्यार्थी जी के निवास पर पहुँची थी। नगर के वरिष्ठ साहित्यकार स्व. कन्हैया लाल एरन, स्व. बाल कवि बिहारी लाल वैद्य, स्व. गोविंद राव जी कानूनगो, उर्दू के वरिष्ठ कवि एवं अधिवक्ता एच. ए. हिलाल, संगीतकार मित्र विजय भटोरे सहित नगर के गण मान्य जनों के बीच जमी महफ़िल महफ़िल के केंद्र में थे दादा पंडित रामनारायण उपाध्याय, जिनके ठहाकों से गूंजती महफ़िल की रौनक का वर्णन करना अब मुश्किल है, किन्तु उस दिन हँसी ठहाकों के बीच खिलखिलाती महफ़िल को भूलना आज भी मुश्किल है। बाद में जाना कि यही जोरदार हँसी के ठहाकें उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग थे । उनके व्यंग्यों की बौछार से सब भीग रहे थे, उन्होंने विद्यार्थी जी से कहा -' अरे यार तुम्हारी इतनी उम्र हो गयी फिर भी तुम अभी तक विद्यार्थी ही हो ! इस बात पर भी जोरदार ठहाका महफ़िल में छा गया था,और विद्यार्थी जी मुस्कुरा कर रह गये थे ।

उनसे अगली भेंट भी उस दिन के बाद तुरंत ही दूसरे दिन हुई थी । दादा के सम्मान में नगर की सुमन साहित्य समिति ने एक कार्यक्रम रख लिया था। नगर के प्रिंस यशवंत शारदा भवन वाचनालय के शानदार दो मंजिला सभागार में उस दिन भारी भीड़ उमड़ी थी। वाचनालय के तत्कालीन अध्यक्ष समाजसेवी डॉ.गजानन वर्मा के उत्साह से संपन्न सुमन साहित्य समिति के उस कार्यक्रम में मैनें उस दिन दादा का फिर एक नया रूप देखा। उस दिन के भाषण में एक करारा व्यंग्य भी था और लोक संस्कृति का रंग भी। उनके शब्दों में हमारे समय की सच्चाईयां भी मुखर थी। लोग मंत्र मुग्ध दादा को सुन रहे थे । उस दिन प्रसंग वश सुनाया गया उनका एक व्यंग्य भी आज तक मुझे याद है। उन्होंने कहा कि एक जंगल में एक लकड़हारन लकड़ी काटने गयी । अचानक एक भालू आ गया। लकड़हारन जान बचाने एक पेड़ के पीछे छिप गयी। भालू भी पेड़ के पास पहुँच गया और अपने दो पैरों को पेड़ से टिका कर खडा हो गया। डर कर लकड़हारन ने उसके अगले दोनों पैर कस कर पकड़ लिए। अब पेड़ के इर्दगिर्द दोनों घुमते रहे। लकड़हारन चीखी कि उसे कोई बचाए, तभी एक आदमी वहाँ आ गया। लकड़हारन ने आदमी से कहा कि वह उसकी कुल्हाड़ी उठा कर भालू को मार दे, पर आदमी डर के मारे भालू को मारने को तैयार नहीं हुआ। इस पर उस स्त्री ने कहा यदि उसे तुम नहीं मार सकते तो फिर इसके पैर तुम पकड़ लो, मै उसे मार दूंगी। आदमी ने यह बात मान कर भालू के पैर पकड़ लिए, और वह स्त्री मुक्त हो कर बिना भालू को मारे जाने लगी । आदमी ने चिल्ला कर कहा -अरे, कहाँ जा रही हो , इस भालू को कुल्हाड़ी से मारो, नहीं तो मैं कैसे बचूंगा ? इस पर उस स्त्री ने कहा -नहीं, मैं इस भालू को नहीं मारूंगी, क्योंकि इस जंगल में मैं इस भालू से तो बच गयी पर यहाँ मुझे तुमसे कौन बचाएगा ?

दादा के इस व्यंग्य पर वह दो मंजिला सभागार हँसी के ठहाकों से

गूँज उठा था। उस दिन उन्होंने समुद्र मंथन पर भी एक रूपक सुनाया था, जिसमें उन्होंने कहा कि –' समुद्र मंथन से जब अमृत निकला तो देवों और दानवों के बीच अमृत को पाने के लिए युद्ध छिड़ गया था। तब एक ऋषि ने समझौता कराने की शर्त रखी जिसके अनुसार सबके हाथों में कोहनी तक एक एक लकड़ी बाँध दी गयी और कहा कि अब बिना हाथ को मोड़े जो अमृत पी सके वह पी ले। दानव बिना हाथ मोड़े अमृत ना पी सके,तो फिर ऋषि ने देवताओं से कहा अब तुम पी कर दिखाओ तो दो दो देवता आमने सामने बैठ गये। कोहनी तक उनके भी हाथों में लकड़ी बंधी थी पर उन्होंने घट में सीधे हाथ को डूबोया और एक दूसरे के मुंह में अमृत डाल दिया । इस तरह देवों को अमृत मिल गया क्योंकि वह एक दूसरे को खिलाना जानते थे । हम भी जब स्वयं ही सब खाना चाहते हैं तो हमारा स्वार्थ हमें दानव बना देता है, और हम अमृत खो देते हैं । जब हम दूसरों को अमृत पिलाते हैं तो हमें भी अमृत मिल जाता है।

दादा की यह वाग्मिता उनको विशिष्ट बनाती थी। उनसे इसके बाद मेरी कई बार भेंट हुई और हर बार उनकी कोई न कोई प्रेरक बात मन को छू

जाती। वह लोगों के लिए प्रेरणास्रोत थे। दादा का एक ना भूलने वाला और रूप मुझे लगभग वर्ष 1983 में तब मिला जब खंडवा में महादेवी वर्मा का आगमन हुआ था, और उनका विराट नागरिक अभिनंदन आयोजित हुआ था। वह समारोह मैं कभी नहीं भूल सकता क्योंकि उस दिन पहली बार मुझे महादेवी जी के दर्शन और उन्हें सुनने का योग मिला था । उस दिन का समारोह भी बहुत दिव्य था । महादेवी जी को सुनने और उनके दर्शन के दूर दूर से लोग आये थे और मैं भी खंडवा पहुंचा था । उस कार्यक्रम से जुडी और भी बहुत सी यादे हैं, किन्तु यहाँ जिस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ वह दादा रामनारायण उपाध्याय से जुडी हुई है।

उस दिन मंच पर महादेवी जी विराजमान थी और उनके एक तरफ थे पंडित रामनारायण उपाध्याय और दूसरी तरफ थे चिंतक, कवि,पंडित माखन लाल चतुर्वेदी की ग्रन्थावली के संपादक श्री युत श्रीकांत जोशी। महादेवी जी पर स्वागत में नगरवासियों ने गुलाब के फूलों की पंखुड़ियों की उन पर ऐसी वर्षा की थी कि उनके बालों में और उनकी साड़ी पर फूलों की पंखुडियां ही पंखुडियां लदी हुई थी। मंच पर उनके निकट बैठे दादा और श्रीकांत जी धीरे धीरे महादेवी जी के बालों से और साड़ी से वह फूल हटा रहे थे, और उनसे बहुत दूर दर्शकों के बीच मै बैठा हुआ किंचित ईर्षा महसूस कर रहा था कि जिनके चरण स्पर्श की कामना से भरा मैं यहाँ तक यात्रा करके आया था, जिनके दर्शन के लिए मैं सुबह से ले कर शाम तक प्रतीक्षा कर रहा था उस महादेवी जी का इतना स्नेह और इतनी निकटता उन्हें प्राप्त थी। उस दिन महादेवी जी का परिचय कराते हुए दादा ने कहा था कि आज महादेवी जी ऐसी लग रही हैं जैसे साक्षात सरस्वती जी खादी की साड़ी पहन कर मंच पर बैठी हो। उस दिन महादेवी जी को सुनना भी मेरे जीवन की अविस्मरणीय घटना थी ।

मैं वर्ष 1992 में स्थानांतरित हो कर स्थाई रूप से खंडवा ही आ गया था । खंडवा आना और यहाँ बस जाना मेरे जीवन का एक टर्निंग पाइंट था। यहाँ आ कर मुझे दादा को और निकट से जानने का अवसर मिला। खंडवा की ब्राह्मणपुरी में उनके निवास का नाम था साहित्य कुटि। वहीं उनके द्वारा स्थापित था निमाड़ लोक संस्कृति न्यास जो खंडवा की साहित्यिक गतिविधियों का केंद्र था। उस न्यास में एक विराट पुस्तकालय था जिसका साहित्य सबको सुलभ था और उसके सभागार में सभी साहित्यिक संस्थाओं की गोष्ठियां, विमर्श आदि चलते रहते थे। खंडवा को साहित्य की तीर्थ नगरी क्यों कहा जाता था, इसका राज भी यहीं आकर खुला। खंडवा में तब भी अनेक साहित्यिक संस्थाएं थी, अलग अलग मतावलंबी साहित्यिक गुट थे किन्तु तब यहाँ दो बड़े निर्गुट साहित्यिक केंद्र भी हुआ करते थे, पहला दादा रामनारायण उपाध्याय का निमाड़ लोक संस्कृति न्यास और दूसरा स्व. श्री कांत जोशी जी का आवास। यहाँ सभी को आश्रय मिलता था, जहाँ कोई गुटबंदी नहीं थी। दादा रामनारायण उपाध्याय मूल रूप से लोक संस्कृति और गाँधी दर्शन के अध्येता थे, जिनका स्नेह सब को सुलभ था। यहाँ जो निरंतर ज्ञानयज्ञ चलता था वह सबको बिना भेद भाव के समृद्ध करता था। ऐसे ही श्रीकांत जोशी जी का निवास भी साहित्यिक विमर्श का बड़ा केंद्र था। यहाँ नगर के सारे साहित्यिक ही नहीं, दूर दूर से भी लोग आते और ज्ञान यज्ञकी ज्योति अपने–अपने मानस नयन में भर कर तृप्त हो कर जाते थे। अब तो हम शहरों और राजधानियों की बातें छोड़े, छोटे–छोटे गाँवों तक में हमारी साहित्यिक मंडलियां भी अनेक मतवादों और गुटबंदियों में बुरी तरह गूथंफाद हैं। लोग एक एक ईंट की मस्जिदें बना कर अपनी–अपनी अलग–अलग नमाज़ें पढ़ रहे हैं । अहंकार सर्वत्र इतना घना है कि किसी को अपने सामने कोई दूसरा दिखाई नहीं देता। किन्तु जब तक राम नारायण उपाध्याय जैसे विराट चेतना वाले मनीषी लोग यहाँ थे तब ऐसा कुछ दिखाई ही नहीं देता था। सब साहित्यिक साथी अपने बंधु लगते थे, कभी लगता ही नहीं था कि भीतर इतना भेद भी होगा जिसे भेदना मुश्किल हो। अब वह नहीं हैं तो यह तलछट उभर कर सामने साफ़ साफ़ दिखता है। सच है सूरज के ढल जाने के बाद ही तो पता चलता है कि अंधकार कितना घना है।

रामनारायण उपाध्याय जिस पीढ़ी के प्रतिनिधि थे जिनके लिए साहित्य सेवा एक तपस्या थी। उस पीढ़ी को माखनलाल चतुर्वेदी जैसी तेजोमय विभूतियों ने गढ़ा था। वह उसपीढ़ी के प्रतिनिधि थे जिनके चरणों में सत्ताएं झुक कर प्रणाम करती थी। अब सत्ता और राजनीति के चरणों में

झुकी हुई पीढ़ी को यदि वह आदर नहीं मिलता तो उसका कारण समझा जा सकता है। पंडित रामनारायण उपाध्याय सच्चे अर्थों में जन, जमीन और माटी के पुत्र थे । उनके साहित्य का उद्देश्य जन जन की पीड़ा को स्वर देना और उन पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठाना था। अपनी भूली हुई लोक संस्कृति की महिमा के वे उद्गाता थे और वह उस संस्कृति को जीवंत रखने में सारी उम्र लगे रहे, जो मनुष्य के भीतर मनुष्यता का पोषण करती है।

पं.रामनारायण उपाध्याय के भीतर अखंडित उल्लास से भरा हुआ एक ऐसा हृदय था,जिसकी संजीवन शक्ति का रहस्य जानने और समझने जैसा है। श्री अजात शत्रु ने कभी इसका संकेत करते हुए लिखा था – ''इन पुराने खेमें के लेखकों से कुछ सीख सको तो यह सीखो कि उन्मुक्त हास्य, प्रेमभरा आलिंगन, बेतकल्लुफ आतिथ्य सत्कार ,अनंत बाल जिज्ञासा ,और पुरुष में मां की ममता क्या होती है? आज मुझे हैरानी होती है कि जीवन के उतार को छूता यह बूढा लेखक तरोताज़ा और जवान कैसे है? इसमें कुंठाओं के बावजूद अछूता आल्हाद कैसे हैं? इसने कौन सा स्वर्ण कवच पहन रखा है भीतर कि इसकी आंच और, शीतलता कम नहीं हो पाती? नहीं नहीं, मैं जानता हूँ इसका राज यह दाढ़ी बढाने और मार्क्स को पढने से नहीं आई है।'

यह वही जीवन्तता है जो समूचे जीवन को जड चेतन सहित बेइंतिहा प्यार करते रहने से आती है। इन पंक्तियों में पं .रामनारायण उपाध्याय के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दर्शन किया जा सकता है। सचमुच वह जीवन की समग्रता को प्यार करने वाले मनीषी थे, इसीलिये उन्होंने लोकगंगा के जीवन जल से अपने प्राणों का निरंतर अभिषेक किया। वह आजीवन इसी लोक गंगा के अवगाही रहे, इसीलिये तो वह इतने पवित्र, इतने उल्लासित, और इतने प्रेमपूर्ण थे कि समूचा अंचल उन्हें दादा कह कर ही संबोधित करता था। कोई उन्हें रामा दादा भी कहता पर अधिकतर के लिए वह सिर्फ दादा थे, जो वयोवृद्ध ही नहीं ज्ञान वृद्ध भी थे, और उनके प्रेम की छाया में जो अपनापन था ,वह अब एक दुर्लभ सौभाग्य है ,जो कहीं सुलभ नहीं।

25/07/1966 को सुप्रसिद्ध ललित निबंधकार कुबेरनाथ राय ने दादा को एक पत्र लिखा था जिसमें उनकी संपूर्ण लेखकीय अस्मिता का सार आ गया है । श्री राय ने लिखा था –'आपके द्वारा प्रेषित ' धुंधले कांच की दीवार ' को रसपूर्वक पढ़ गया। भाई तारीफ़ नहीं कर रहा हूँ –सच्चाई कह रहा हूँ कि सहज गद्य का ऐसा नमूना प्राय: देखने को नहीं मिलता। सिद्ध लेखनी प्राप्त है आपको। आपकी कृतियाँ उस परंपरा से आती है जिसमें तुलसी, कबीर, रहीम, प्रेमचंद और मैथिलीशरण गुप्त आते हैं। विदग्धता नहीं, सहजता और सप्राणता इन्हीं पूर्व महाजनों की भांति आपकी लेखनी का भी धर्म है। मैं विदग्धता का विरोधी नहीं। पूर्ण जीवन में विदग्धता (यानी 'सूरसागर' और कामायनी)की उतनी ही जरुरत है जितनी सहजता की। पर आज के युग में जब सहजता का लोप हो रहा है, जब सहजता के नाम पर दूसरों के चीथड़े बटोरना और कृतिम रूमानी नागरिकता लादना ही साहित्य धर्म बनता आ रहा है। एक ऐसे कृतिकार को पा कर जो ' गरीब और अमीर पुस्तकें' तथा ' धुंधले कांच की दीवार' जैसी कृतियाँ देता है बड़ा ही संतोष का एक शान्ति का अनुभव होता है। लगता है कि साहित्य अब भी जीवन से विछिन्न नहीं हुआ है। और भाई व्यंग्य निबन्धों के अतिरिक्त आपके रूपकों का तो रंग ही और है। मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूँ कि वे हिन्दी गद्य के क्लासिक हैं। अब ईमानदारी का तकाजा यही है कि यह तथ्य स्वीकार किया जाय।'

यह साधारण और सामान्य पत्र नहीं एक ईमानदार स्वधर्मा साहित्यकार का अपने समकालीन स्वधर्मा साहित्यकार के कृतित्व का सच्चा स्वीकार है । दु:ख यह है कि अब दूर दूर तक ना ऐसे सहज लोग दिखते हैं ना ऐसे सामान धर्मा ईमानदार मूल्यांकन कर्ता। अब तो तू मेरी पीठ खुजा मैं तेरी खुजाऊं वाले दौर में साहित्य धर्म की बात तक करना बेमानी होती जा रही है ।

दादा रामनारायण जी के भीतर जो सतत उल्लास मय सर्जनात्मकता है, उसका उत्स भी नर्मदा की तरह कठोर पर्वत को चीरते हुए निकला है। जीवन की कठिनाइयाँ, विपदाएं, संघर्ष, मान अपमान, मिलन विछोह, आदि मानवीय प्रकल्प कम नहीं थे, परन्तु उनकी प्रखर जीजिविषा ने उन्हें कभी मलिन या उदास नहीं होने दिया। एक सच्चा किसान जिस हिम्मत से वर्षा,घाम। ओले ,हवा और आँधियों से टकराते हुए भी हर सुबह अपने खेत में सर्जना का गीत गाता है, वैसी ही रामनारायण जी की अदम्य आस्था और सर्जनात्मक ऊर्जा थी जो कभी क्षय नहीं होती थी।

दादा रामनारायण उपाध्याय का स्मरण लोक जीवन के दर्पण में अपने राष्ट्र की आत्मा का दर्शन करना भी है। जैसे यमुना, रामगंगा, कर्णाली (घाघरा), ताप्ति ,गंडक, कोसी, काक्षी, चम्बल, सोन, बेतवा, केन, और दक्षिणी टोस, ये सारी नदियाँ गंगा की धाराओं में समाहित हो कर एक विराट जल तीर्थ बन जाती है, उसी तरह मालवी, निमाड़ी, बुन्देली, राजस्थानी, भोजपुरी,अवधि, ब्रज इत्यादि लोक भाषाएं भी अपनी विराट साँस्कृतिक और लोक परम्पराओं के रंगों से सम्पूर्ण राष्ट्र का सुन्दरतम और वरेण्य चित्र बनाती है। इस चित्र में निमाड़ जनपद की निमाड़ी का रंग भरने वाले चितेरे थे पं.रामनारायण उपाध्याय। जब निमाड़ गाता है, ' में उपाध्याय जी हमें निमाड़ के उत्तरी आकाश में उगते हुए शुक्र तारे को निहारती हुई एक निमाड़न नायिका की अलबेली छवि हमें दिखाते हैं। यह हठीली निमाड़न अपने स्वामीजी से जिद कर रही है, कि मुझे इससे इसी शुक्र के तारे की बिंदी गढ़वा दो, तब हमें वह सौंदर्य बोध के जिस उच्चतम धरातल पर ले जाते है, वह केवल लोक आराधक सर्जक के ही वश का काम है, यह काम नागरी सभ्यता में गुम सर्जना के लिए तो संभव ही नहीं हैं।

जब रामनारायण जी युवा थे तब उन्हें एक बार महात्मा गांधी के दर्शन का सुयोग मिला था। गांधीजी ने तब युवा रामनारायण को कहा था कि यदि सचमुच राष्ट्र की सेवा करना हो तो गाँवों में जाओ ,जहां वास्तव में भारत माता का वास है,गाँवों की सेवा ही सच्ची राष्ट्र सेवा है। रामनारायण जी इस मन्त्र को ले कर निमाड़ जनपद में सांस्कृतिक विरासत और लोक चेतना से जन जागरण का ना केवल नवल अभियान चलाया बल्कि इस लोक साहित्य की संजीवनी से अपने साहित्य को भी दीप्त किया। यह हमारी

परम्परा रही है कि लोक साहित्य की संजीवनी शास्त्रीय अनुशासनों के लिए भी आवश्यक होती है, अन्यथा महर्षि पाणिनी अपनी अष्टाध्यायी में सैकड़ों छोटे छोटे गाँवों और बस्तियों के नाम लिख कर उनके बहु आयामी ग्राम्य व्यवहारों की चर्चा ना करते। रामनारायण जी इसी महत्वपूर्ण अभियान में आजन्म लगे रहे। वह लोक जीवन से कभी अलग नहीं हुए। यही लोक जीवन उनके व्यंग्य की तीखी धार बन कर अन्याय का विरोधी स्वर बनता है, तो निमाड़ की कड़ी धूप में हार ना मानने वाली श्रम जीवी कृषि जीवन की सुषमा उनके ललित निबंधों में अपनी धूप छाँव बादल,और अपने इन्द्रधनुष ले कर अवतरित होती हैं।

निमाड़ी संस्कृति के भीतर छिपे सहज मानवीय मूल्यों ,लोक गीतों के यथार्थ और उनके सौन्दर्यबोध को उसके ,नाद सौन्दर्य और उसकी माधुरी को रामनारायण जी ने लोक गंगा में अवगाहन करके खोजा तो संत सिंगाजी की निर्गुणभक्ति से निस्पृहता और कर्मयोग को भी ग्रहण किया था। जैसे एक जुलाहे का जीवन जीते हुए कबीर अपनी भक्ति को अपने चरखे की श्रम साधना से संपृक्त करते हैं, वैसे ही सिंगाजी का आध्यात्म एक किसान की हल से संचालित श्रम शक्ति और अध्यात्मिक जीवन का, अश्रु और स्वेद का संगम है, यही कर्मयोग रामनारायण जी की भी शक्ति है, कृषि जीवन की कर्मण्यता और आध्यात्म का यह एकीकरण भारत की मूल आध्यात्मिक परंपरा है,जो कबीर से ले कर संत सिंगाजी और गांधी से लेकर विनोबा तक में दिखाई देती है। यही परंपरा रामनारायण जी के साहित्य और उनके जीवन का भी उत्स बनी थी।

डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने अपने एक पत्र में दादा को लिखा था –'पानी तलवार में भी होता है, और मोती में भी। आपमें दोनों का समन्वय है। लेखनी तलवार है, और संवेदना मोती। फसल कटने के बाद खेतों में जो भीनी भीनी सुगंध आती है, वही आपके सर्जन के स्वरारोहों में समाई हुई है। जब तक खेत रहेंगे, और खेती रहेगी तब तक आपकी भावना की फसल लहलहाती रहेगी। दादा ने लोक साहित्य, लोक संस्कृति,गांधी दर्शन, ललित निबंध, गद्य काव्य, संस्मरण, व्यंग्य, अनेक विधाओं में विपुल लेखन किया है, किन्तु उन्होंने चिठ्ठी पत्री के माध्यम द्वारा देश भर के सृजनधर्माओं से भी जीवंत संपर्क बनाये रखा था। नये रचनाकारों को आगे बढाने और प्रोत्साहित करने और मार्ग दर्शन देने में वह सदा अग्रगामी रहे।

दादा सच्चे अर्थों में कर्म योगी थे। अपनी वेदना को स्वयं पी जाना और अपने आनन्द को संसार में बाँट देना ही उनका जीवन दर्शन था .विनम्रता, ईमानदारी, और कर्म निष्ठता उनकी प्रकृति थी। वह जितने बड़े सर्जक थे, उससे भी बड़े मनुष्य थे। उन्होंने अपना जीवन संतों की तरह जीया, और वाणी के सुगंन्धित सुमनों का वह एक ऐसा घना और छायादार बाग लगा गये हैं जिसकी सुखकर छाया में हम आज भी अपने मनस्ताप को दूर कर सकते हैं।

संपर्क : 18, सौमित्र नगर, सुभाष स्कूल,
खंडवा (म.प्र.) 450001

दादा से मिलने की प्रबल इच्छा पूरी हुई

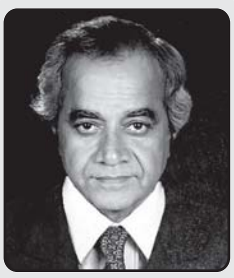

डॉ. मेजर एम.के. गुप्ता

ये बुरहानपुर में 1979 से 2022 तक रहा। मेरा विशेष शौक बुरहानपुर के पुरातत्व में था जो कि एक समय प्रमुख मुगल शहर होता था जहाँ प्रसव काल के शाहजहाँ बादशाह की बेगम मुमताज की मृत्यु हुई।

श्री उपाध्याय जी हमारे जिले खण्डवा में रहते थे उनका नाम काफी सुनते थे। जब पद्मश्री से उनको विभूषित किया तो मिलने की इच्छा प्रबल हो गई। आर्य समाजी डॉ. कु. मालती प्रजापति बुरहानपुर से मेरी पहचान बुरहानपुर पुरातत्व व संग्रहालय की वजह से हुई। उनका श्री उपाध्याय जी से अच्छे सम्बन्ध थे। श्री उपाध्याय जी का बुरहानपुर आगमन डॉ. कु. मालती प्रजापति के यहाँ हुआ और उनकी चर्चा हुई तो श्री उपाध्याय जी को संग्रह देखने की इच्छा हुई वे मालती दीदी के साथ हमारे निवास स्थान मातृसेवा सदन पर आये। उन्होंने मेरे सिक्कों का, मूर्तियों का, पुरातत्व सामग्री का अवलोकन किया, खुश हुए। विजिटर बुक में आर्शीवचन लिखे।

डॉ. कु. मालती प्रजापति, डॉ. श्रीमती श्यामला गुप्ता एम.एस.

पहली बार पद्मश्री अलंकृत किसी महान व्यक्ति को मिल रहा था, एक अलग धारणा थी, पर उनके साथ 2 घन्टे रहे, ऐसा महसूस ही नहीं होने दिया कि वह इस किसी बड़े अलंकरण से अलंकृत है। बहुत ही सरल सादा पहनाव, साधारण भाषा, हर वस्तु को ध्यान से देखा, पूछा समझा, खुश हुए। उनकी इस मुलाकात ने मेरे को मेरे काम के लिए और प्रेरित किया। मैं बुरहानपुर को पुरातत्व साक्ष्य द्वारा 3500 वर्ष पूर्व का नगर ब्रह्मपुर सिद्ध कर सका।

सम्पर्क : मोबा. 9827042768

एक ध्रुव तारा

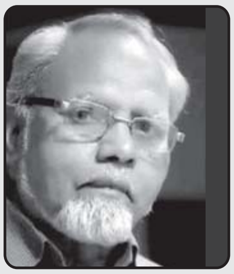
वसंत निरगुणे

मुझसे रामनारायण उपाध्याय का संबंध बहुत पुराना है। शायद पृथ्वी के निर्माण के समय से मेरा उनका धरती का संबंध है । पचास के दशक से मेरी पहचान रामनारायण उपाध्याय के नाम से रही है। एक नाम सुनता रहा, पढ़ता रहा, उसके कार्यों के बारे मैं और व्यक्तियों से जानता रहा। तब मैं नौंवी दसवीं कक्षा का छात्र था, मण्डलेश्वर मैं निमाड़ लोक साहित्य परिषद का कार्यक्रम था । उस समय तक कुछ कविता की तुकबंदी और कहानी लिखने का सिलसिला शुरू हो गया था। मैं और मेरे दो चार साथी मण्डलेश्वर से उत्सुकतावश अधिवेशन मैं चले गये। वहाँ रामनारायण उपाध्याय थे, यह मुझे अच्छी तरह याद है, लेकिन यह याद नहीं है कि मेरी उनकी मुलाकात भी हुई या नहीं, किसी ने परिचय कराया कि किसी साहित्यकार से किस तरह मिला जाता है, जिससे प्रथम परिचय ही यादगार बन सके। यह बात शायद सन् 58 की है।

सन् 1961 में ग्यारवीं पास करके में खरगौन में अध्यापक हो गया । कविता कहानियां बराबर चलती रहीं। इस बीच में एक बात ज़रूर हुई कि शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान मैंने पांच सौ से अधिक लोकोक्तियों का संकलन कर लिया था, जिससे मेरी लोक साहित्य के कार्य करने की प्रेरणा को व्यावहारिक बल मिला । कभी हिन्दी निमाड़ी तुकबंदियाँ, कभी कहानियाँ, कभी नाटक और कभी लघु निबंध लिखता रहा, कहने का मतलब मेरे सामने कोई स्पष्ट दिशा नहीं थी। मैंने मेरे स्कूल के बच्चों की कविताओं के संग्रह नेफा-लद्दाख का सम्पादन किया, तब रामनारायण उपाध्याय जी ते आशीवचन मांग लिया। आशीर्वाद ही नहीं, बल्कि उन्होंने अपनी एक छोटी रचना भी भेजी। रामनारायण जी से पत्राचार का सिलसिला यहाँ से बना। यह बात सन् 1964 की थी । सन् 71 में बंगला देश बनने पर निमाड़ के कई रचनाकारों और स्कूल के बच्चों की रचनाओं का सम्पादन 'बंगला की बेटी' के नाम से एक छोटा काव्य संकलन प्रकाशित किया। बंगला की बेटी की भूमिका, रामनारायण उपाध्याय ने सहर्ष लिखकर भेजी थी। इसी समय, नई दुनिया निमाड़ की लोकचित्र परम्परा पर आधारित लेख 'बिखरे रंग निमाड़ के मय रेखांकनों को प्रमुखता के साथ छपा। इस लेख के लिखने की प्रेरणा मुझे रामनारायण जी की निमाड़ी और उसकी लोक साहित्य पुस्तक से मिली थी। लेख छपने के तीसरे दिन मुझे रामनारायण जी की ओर से बधाई पत्र मिला। जिसमें उन्होंने लेख की भूरी-भूरी प्रशंसा की थी। यहां एक बात बता दूँ अभी तक रामनारायण जी से मेरा केवल पत्र परिचय था । कभी प्रत्यक्ष मुलाकात नहीं हुई थी। इस अकेले लेख ने मुझे लोककलाओं के अध्येता के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। कई लेखकों, पत्रकारों और लोगों के मुझे प्रशंसा पत्र मिले थे। इस लेख ने मेरे लेखन की जैसे दिशा तय कर दी। तब मैंने निश्चय किया था कि मैं निमाड़ी लोककला और साहित्य के लिये ही काम करूंगा। इस लेख के प्रकाशित होने तक रामानारायण उपाध्याय के कृतित्व और व्यक्तित्व से भी मैं भली-भाँति परिचित हो गया था। परन्तु कभी मिलने का सुअवसर नहीं आया था। उनसे मिलने का कोई अवसर ढूँढ रहा था । खण्डवा जाकर उनसे मिलने की कितनी बार योजना बनाई लेकिन कोई संयोग ही नहीं बना ।

अप्रत्याशित खरगौन में वह घटना घटी, जिसकी मुझे कल्पना तक नहीं थी। एक दिन रामनारायण उपाध्याय मेरे घर पहुँच गये । घर में पत्नी थी। मैं उस समय मेरे संस्कृत आचार्य श्री दामोदर शास्त्री जी के पास था। पत्नी से पता पूछकर मुझे ढुँढ़ते हुए रामनारायण जी शास्त्री जी के यहाँ पहुँच गये। मुझे लगा कोई अजनबी आदमी शास्त्रीजी से मिलने आ रहा है। गर्मी के दिन थे । वही धोती और खादी का भगवा कमीज। पहुँचते ही हाथ जोड़कर बोले- मैं रामनारायण उपाध्याय हूँ। वसंत निरगुणे से खंडवा से मिलने आया हूँ। सुनते ही मेरे तन में बिजली सा स्फुरण हो गया। बैठा था, खड़ा हो गया। झुककर चरण स्पर्श कर लिया। मन ही मन सोच रहा था, जिस श्रद्धा पुरूष से मुझे मिलने जाना चाहिए था, वह स्वयं चलकर मुझे ढूँटते हुए मुझसे मिलने चला आया। एक छोटे, सर्वथा अपरिचित नये व्यक्ति से इस तरह इतने बड़े एक प्रतिष्ठित लेखक और श्रद्धा पुरूष अचानक मिलने आ जाय, उसकी दशा का सहज अन्दाजा आज भी लगाया जा सकता है। ऐसा लग रहा था, मेरे लिये आशीर्वाद स्वयं चलकर मेरे घर आया हो। मैं ठगा सा रह गया । पैरों के नीचे की पृथ्वी खिसक गई। एक अनुग्रह बोध के बोझ के नीचे दबता ही चला गया था, उस समय । एक पुजारी के घर स्वयं उसके देवता चले आये हो। यह मेरे लिये कोई छोटी घटना नहीं थी। वह व्यक्ति कितने बड़े मन का होगा, जो अपने से छोटे लोगों

से निस्वार्थ मिलने चला जाता हो । मुझे लगा जैसे रामनारायण उपाध्याय ने मुझे पहचान लिया है, जिन्हें बरसों से मेरी तलाश थी। तब से जब से पृथ्वी बनी है, आकाश बना है, मनुष्य बना है। मुझे उस दिन लगातार महसूस हो रहा था कि रामनारायण उपाध्याय मुझमें कुछ ढूँढ रहे है? मेरी आँखों में आंखें डाले न जाने कितने युगों की बातें कह रहे हों। जितना निश्छल स्नेह, जितना आत्मविश्वास मुझे उनकी आँखों में उस समय लग रहा था, जैसे यह परिचय नया नहीं, बहुत पुराना हो। एक मनीषी का, एक ऋषि का, एक आचार्य का, एक गुरु का, एक साहित्यकार का, एक बड़े भाई का । मैं रोमांचित था और वे प्रसन्न । वे बोलते जा रहे थे और मैं अवाक था। वे मेरे अन्दर उतरते जा रहे थे। उनकी खिलखिलाती हँसी से फूटते शब्द मुझे कविता की तरह लग रहे थे। मुझे लगा निमाड़ के 'गौरव पुरुष रामनारायण उपाध्याय एक सहज आदमी हैं। उन्हें अपनी मिट्टी से बेहद लगाव है, वे मिट्टी की सौंधी सुगन्ध के लेखक हैं, प्रकृति की कोमलता के मनोरम चितेरे हैं। उनकी हंसी में व्यंग्य की मीठी मार है। जो आदमी स्वयं पर हँस लेता हो उससे बढ़कर कोई व्यंग्यकार नहीं हो सकता। रामनारायण जी में यह कुछ गुण कूट-कूट कर भरा हुआ है। उन्हें समाज की विद्रूपता नहीं भाती भी वे उसे छोड़ देने के लिये तैयार रहते है। उनका मन सहजता की कुटिया में रमता है। वे बड़े में मिलने में अपनी अस्मिता का ध्यान पूरी सर्तकता से रखते हैं। उनमें स्वाभिमान इतना बड़ा है कि किसी असंगति से उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। उनकी पहली नज़र व्यक्ति की अच्छाई पर जाती है। बुराई को वे कभी देखते ही नहीं। ऐसे व्यक्ति संसार में विरले ही होते हैं, जबकि लोग बुराई को पहले देखते हैं और कुण्ठाओं के दलदल में फंस जाते हैं। यह तब मुझे एक दिन में मालूम नहीं पड़ा। मुझे मालूम पड़ा उनकी रचनाओं से उनके पत्रों से और उससे बढ़कर उनके सानिध्य से। कई माध्यमों से पिछले तीस सालों में हजारों बार मिले, धीरे-धीरे हम बहुत नज़दीक से नज़दीक आते चले गये। मुझसे उनकी कोई बात छिपी नहीं रही और न मैंने कोई बात छिपाने की कोशिश की। मैं निमाड़ी लोक साहित्य संस्कृति पर छुटपुट लिखता रहा। सन् 1975 मैं निमाड़ी मालवी लोकोत्सव के आयोजन में दादा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तब मैं इंदौर में ही था। सन् 76 में दादा के कहने पर निमाड़ी लोकचित्र परम्परा पर एक छोटी किताब लिखी, उन्होंने ही उसे छपवाया । किताब बहुत छोटी थी लेकिन लोकचित्र परम्परा पर शायद प्रदेश की वह पहली पुस्तिका बन गई। तब तक मैं खरगौन छोड़कर इन्दौर चला गया था । दादा रामनारायण उपाध्याय का सम्बोधन मेरी जबान पर चढ़ गया था इसलिये मैं अब उन्हें केवल दादा कहता था। दादा मुझे केवल वसंत कहते । छोटे से छोटे सुख और दुख मैं उन्हें लिख देता, लिखने में वे मुझसे ज्यादा माहिर है। उनकी ओर से जो पत्र आते वे दर्द में डूबी कविता की तरह आते या आनंद या अट्टहास की मुद्रा में आते। उनका दर्द किसी व्यक्ति का नहीं होता, बल्कि समष्टिगत होता, इसीलिये उनकी रचनाओं में काल से ऊपर उठने की पूरी क्षमता है। श्रीकान्त जोशी ने एक जगह दादा के लिये लिखा है बात को मर्म की बात बना देना उनकी कला है। रामनारायण लिखना जानते हैं और एक सीमा तक लिखे हुए को जीना भी ।'

मेरी दृष्टि में रामनारायण उपाध्याय निमाड़ी के पहले ऐसे आचार्य है जिन्होंने निमाड़ी की वाचिक परम्परा के संकलन का कार्य शुरू किया। निमाड़ी लोकगीतों का सरल अनुवाद और उनकी संपूर्ण उर्जा के साथ हिन्दी जगत से परिचय कराने वाले पहले व्यक्ति रामनारायण उपाध्याय ही है। उन्होंने निमाड़ी लोककथाओं, कहावतों, पहेलियाँ का पहली बार सारगर्भित संकलन किया। निमाड़ी बोली के व्याकरण की व्याख्या और शब्द कोश निर्माण का महत्वपूर्ण काम पंडित रामनारायण उपाध्याय जी ने किया है। निमाड़ की पारम्परिक कलाओं की पुर्नप्रतिष्ठा में रामनारायण जी ने कई स्थायी महत्व के कार्य किये। मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद् के वे संस्थापक सदस्य है। अब वे कुछ भी नहीं करते तो भी उनका नाम अक्षुण्ण रहता।

रामनारायण जी जैसा सरल व्यक्तित्व मिलना दुर्लभ है। लोक साहित्य और साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपने कई मौलिक ग्रंथों की रचना की है। अनेक ग्रंथ पुरस्कृत हुए हैं। पचास वर्षों के लम्बे समय के लेखन का अनुभव आपके ग्रंथों में सदैव प्रकाशमान रहेगा। गांधी दर्शन से जुड़कर रामनारायण जी में चरित्र की एक ऐसी शुद्धता, शुचिता, तात्विकता और पवित्रता मिलती है जो अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी सादगी और स्वाभिमान पर बड़े से बड़ा व्यक्ति नत मस्तक हुए बगैर नहीं रह सकता । रामनारायण जी बाहर से जितने हँसमुख, मुखर और चुटीले हैं उतने ही अन्दर से गहरे और गंभीर हैं। वे बाहर से जितने सहज और सरल हैं, उतने ही अन्दर से संश्लिष्ट और जटिल हैं। लेकिन वे कोई भी भाव किसी को पता नहीं होने देते। यह खूबी उनमें गजब की है । इस समय मैं जो कुछ हूँ वह सब रामनारायण उपाध्याय की बदौलत हूँ। उन्होंने पहले मुझे मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद का सदस्य बनवाया फिर परिषद में सर्वेक्षण अधिकारी के पद पर बिठा दिया। जहाँ केवल निमाड़ ही नहीं बल्कि मध्यप्रदेश को लोक और आदिवासी कलाओं के लिये काम करने का व्यापक फलक मेरे सामने था। मैं लगातार जनजातीय कला और संस्कृति के सर्वेक्षण और दस्तावेजीकरण के कार्य में व्यस्त से व्यस्तम होता चला गया काम के कारण गया। परिषद के समारोहों और प्रकाशनों के निमाड़ की कला और संस्कृति का कार्य चाहकर भी नहीं कर पा रहा था। रामनारायण जी कब चूकने वाले थे, उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा उसमें उन्होंने लिख दिया वसंत तुम आदमी से अफसर हो गये हो । मैंने उन्हें लिखा 'दादा मुझे अफसर बनाने मैं भी आपका ही हाथ है। यद्पि यह तो एक जवाब था लेकिन दादा की पीड़ा मैं समझ रहा था। उनका संकेत बार-बार निमाड़ की ओर लौट आना था । मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि निमाड़ की धरती का कर्ज मुझे अभी चुकाना है, लिखूँगा, निरन्तर लिखूँगा, लिखता जा रहा हूँ। निमाड़ की लोककलाओं पर निरन्तर लिख रहा हूँ। मेरे इस संकल्प के दोहराने का अवसर आज दादा के सौवें जन्म दिन से बढ़कर और कौन सा हो सकता है। दादा का मार्गदर्शन, आशीर्वाद और स्नेह सदैव बना रहे। बस यही मंगलकामना है। वे लोक साहित्य के आकाश के कोने में अचल- अटल एक ध्रुव तारे की तरह सदैव चमकते रहेंगे। उनके चरणों में प्रणाम ।

संपर्क : 7 उमा विहार कोलार थाने के आगे नया पुरा भोपाल म.प्र.
मोबा. 9424030151

■

संस्मरण

लोकऋषि पं. रामनारायण उपाध्याय

डॉ. शोभा सिंह

भारतीय लोकसाहित्य के अध्ययन, सर्वेक्षण और संकलन के लिए पिछली सदी में जो विभूतियां सदैव स्मरणीय हैं, उनमें पंडित रामनारायण उपाध्याय निमाड़ क्षेत्र के अग्रणी नाम है। वे निमाड़ लोकरंग, लोकस्वर और लोकवृत के ऋषि अध्येता रहे हैं। पं. रामनारायण का जीवन एक तपस्वी का जीवन था, जो सादगी और गहन चिंतन का अनूठा संगम था। निमाड़ के गाँवों की माटी से जुड़े होने के बावजूद उनकी दृष्टि वैश्विक थी। वे केवल साहित्यकार नहीं, बल्कि लोक के सच्चे द्रष्टा थे। उनकी लेखनी में निमाड़ की लोककथाएँ, गीत, और परंपराएँ जीवंत हो उठती थीं। उनकी रचनाएँ ऐसी थीं, मानो कोई बाँसुरी नर्मदा के तट पर बैठकर जीवन का राग सुना रही हो— सहज, सरल, पर गहरी।

उनका व्यक्तित्व ऐसा था, जैसे कोई प्राचीन ऋषि आधुनिक युग में अवतरित हो गया हो। वे निमाड़ के उन लोकगीतों की तरह थे, जो पीढ़ियों तक गूँजते रहते हैं। उनकी बातों में नर्मदा की तरह प्रवाह था, और विचारों में हिमालय-सा ठहराव। वे बच्चों को कहानियाँ सुनाते, तो बूढ़ों के साथ दर्शन की गूढ़ बातें करते। उनकी उपस्थिति में हर कोई अपने भीतर की सादगी और सच्चाई को पुनर्जनन का अवसर पाता था। पं. उपाध्याय की सबसे अव्वल विशेषता थी उनकी लोक के प्रति अगाध श्रद्धा। वे मानते थे कि सच्चा साहित्य वही है, जो लोक की आत्मा से उपजता है।

उनकी रचनाओं में निमाड़ की ग्रामीण जीवनशैली, त्योहारों की उमंग, और नर्मदा के तटों की शांति झलकती थी। उनकी लेखनी में एक ललित भाव था, जो पाठक को न केवल विचारों की गहराई में ले जाता, बल्कि भावनाओं के रंगों में भी रंग देता। जैसे कोई चित्रकार अपने रंगों से कैनवास को जीवंत कर दे, वैसे ही वे अपने शब्दों से निमाड़ की संस्कृति को अमर करते थे। उनके जीवन का एक और पहलू था—अध्यात्म। वे नर्मदा को माँ मानते थे, और उनकी कविताओं में नर्मदा बार-बार एक जीवंत चेतना के रूप में प्रकट होती थी। उनकी आध्यात्मिकता दुरूह नहीं थी; वह लोक के सहज विश्वासों में रची-बसी थी। उनके लिए अध्यात्म और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू थे, जो जीवन को पूर्णता प्रदान करते थे। आज जब हम पं. उपाध्याय को याद करते हैं, तो लगता है कि वे अब भी निमाड़ के किसी गाँव में, नर्मदा के किनारे, किसी बरगद की छाँव में बैठे हैं, अपनी कहानियों और गीतों से लोगों का मन मोह रहे हैं। उनकी स्मृति निमाड़ की उस अमर धरोहर का हिस्सा है, जो कभी मिट नहीं सकती। वे निमाड़ के लोकऋषि थे, जिन्होंने अपनी लेखनी से न केवल साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि लोक की आत्मा को भी अमर कर दिया। पं. उपाध्याय का जीवन हमें सिखाता है कि सच्ची साधना वही है, जो अपने मूल से जुड़ी रहे। उनकी तरह यदि हम भी अपने लोक, अपनी माटी, और अपनी संस्कृति को अपनाएँ, तो हमारा जीवन भी एक जीवंत ललित निबंध बन सकता है—जो न केवल सुंदर हो, बल्कि कल्याण और अर्थपूर्ण भी हो।

रामनारायण उपाध्याय निमाड़ की लोकसंस्कृति के प्रखर स्वर थे। उनकी दृष्टि में लोक ही साहित्य का मूल आधार था। वे नर्मदा तट की सांस्कृतिक धरोहर को अपनी रचनाओं में जीवंत करते थे। उनकी लेखनी में निमाड़ के गाँवों की सादगी, लोकगीतों की मधुरता और नर्मदा की आध्यात्मिक चेतना का समन्वय दिखता है। उनकी रचनाएँ, जैसे कविताएँ और निबंध, लोकजीवन की सहजता को दार्शनिक गहराई के साथ प्रस्तुत करती थीं। उपाध्याय जी की दृष्टि में अध्यात्म और प्रकृति अभिन्न थे। नर्मदा उनके लिए केवल नदी नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रतीक थी। उनकी रचनाओं में नर्मदा बार-बार माँ, मार्गदर्शिका और जीवन की प्रेरणा के रूप में उभरती है। उनकी दृष्टि लोककथाओं, मिथकों और ग्रामीण जीवन के प्रति गहरी श्रद्धा से ओतप्रोत थी, जो उनकी लेखनी को एक ललित और भावपूर्ण स्वर प्रदान करती थी। वे मानते थे कि सच्चा साहित्य वही है, जो लोक की आत्मा से जुड़ा हो और उसे संरक्षित करे। उनकी रचनाएँ निमाड़ की सांस्कृतिक पहचान को विश्व पटल पर स्थापित करने का प्रयास रहीं।

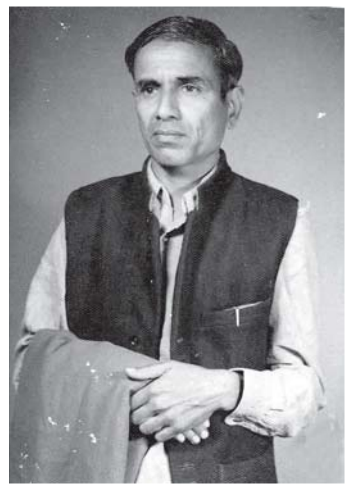

निमाड़ी लोकगीतों के संसार से परिचित कराते हुए वे लिखते हैं- आज जो लोकगीत बजाय शोध, अध्ययन और जीवन में प्रेरणा ग्रहण करने के, महज रेडियो पर गाने और किसी के सम्मान से पढे जाने जैसी सस्ती ख्याति के विषय बनते जा रहे हैं, यही इनके मार्ग का सबसे बड़ा खतरा है।

सम्मान- लोक संस्कृति की सेवा के लिए पद्मश्री।

संपर्क: 435, साधना-सदन, राधा कॉलोनी, गुना (म.प्र.) 473001
मोबाइल न. 09981524344

संस्मरण

दादा रामनारायण उपाध्याय एक संत थे

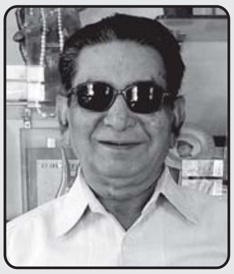

सदाशिव कौतुक

दादा पद्मश्री विभूषित रामनारायण उपाध्यायजी एक साहित्यिक संत के रूप में जाने जाते हैं। उनकी साफ सुथरी छबि से सभी परिचित हैं। आजीवन खादी धारण करने वाले सादा जीवन उच्च विचार को जीवन का मंत्र बनाने वाले निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने जीवन भर साहित्य की साधना की तथा साहित्य के संवर्धन के लिए उन्होंने पूरा जीवन लगा दिया। उपाध्यायजी माँ सरस्वती के सच्चे नि:स्वार्थ उपासक थे। वे सही माने में पद्मश्री के हकदार थे। उनकी सरलता और सहजता से हर व्यक्ति प्रभावित था। दादा ठेठ गाँव के निवासी थे और खण्डवा आने के बाद भी उनका वह ग्रामीण भोलापन, सच्चाई और सादगी में कोई भी परिवर्तन नहीं आया था। मैं दादा से उनके निवास पर कई बार मिला, उनसे आशिर्वाद लिये। वे मेरे लिए प्रेरणापुंज थे। हमें समय-समय पर उनका मार्ग दर्शन मिला और वे हमेशा निश्छलता से मिलते थे। निमाड़ी में लेखन करने वालों पर तो उनकी विशेष कृपा बनी रहती थी। उन्होंने हिन्दी में लिखा पर उनके लेखन के केन्द्र में निमाड़ी ही रही। निमाड़ के लोकगीत - तीज त्यौहार निमाड़ी माँडने, गणगौर, नृत्य आदि अनेक विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। दादा के कई शिष्य थे जिन्हें उनके आशिर्वाद प्राप्त थे। दादा समाज के सजग प्रहरी थे और साहित्य के माध्यम से समाज की दुखती नब्ज पर भी हाथ रखते थे। उनके लिखे सभी ग्रन्थ चर्चित रहे। उनके मुख्य ग्रंथों में दूसरा सूरज, प्रेरक प्रसंग, संस्मरणों की गंगा, आओ अब घर चलें, चिट्ठी पत्री, जिन्हें भूल न सका, गॅवई मन और गाँव की याद, बख्शीश नामा, कथाओं की अर्न्तकथाएँ, जनम जनम के फेरे इत्यादि हैं।

दादा जब बीमार थे। एक अस्पताल में भर्ती थे। उन दिनों मैंने एक उपन्यास लिखा था नदी लौटती नहीं। मैं दादा से खंडवा मिलने गया तो पता चला कि वे अस्पताल में भर्ती हैं। मैं अस्पताल गया उनके हाल चाल जाने और मैंने अपने आने का कारण बताया तो उन्होंने सहज रूप से उपन्यास की भूमिका लिखने की अनुमति दे दी, और आश्चर्य की बात यह रही कि अस्पताल में रहते हुए ही उन्होंने उपन्यास की भूमिका लिख दी और घर आकर मुझे भूमिका डाक द्वारा भेज दी। मैं उनका सदा ऋणी रहूँगा। एक अवसर और आया जब 1984 में मेरे कविता संग्रह 'भूखा बंदर खाय मदारी' का लोकार्पण दादा के कर कमलों से सम्पन्न हुआ था जिसमें उज्जैन से डॉ. पवन कुमार मिश्र, श्री प्रमोद त्रिवेदी, श्री हरि जोशी आदि साहित्यकार मंच पर उपस्थित थे। दादा बहुत ज्यादा पढ़े लिखे नहीं थे। परंतु उन पर माँ सरस्वती की अपार कृपा थी। वे बहुत अच्छे वक्ता भी थे। बात में चुटकियाँ लेकर वातावरण को विनोदी बना देते थे। उनके ठहाकों की अनुगूंज तो काफी दिनों तक कानों में गूंजती रहती थी। दादा कई बार इन्दौर आए। कार्यक्रमों में शिरकत की। मुझे कई बार साइकिल पर बैठाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कभी लेम्ब्रेटा पर बैठाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। दादा बाद-बाद में अस्थमा से त्रस्त हो गए थे और एक दिन आखिर इस दुनिया से बिदा हो गए। मुझे उनके अन्तिम दर्शन करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था।

मैं जब भी दादा के दर्शन करने जाता तो दादा को मेरे द्वारा लिखे गये मत्तगयंद बहुत पसंद थे। मैं जब भी जाता वे मत्तगयंद छंद सुनाने का कहते थे और सुनकर बहुत आनन्दित होते थे। वे दो मत्तगयंद प्रस्तुत करना चाहूँगा।

मत्तगयंद वार्णिक छंद है। इसमें सात भगण, 23 वर्ण, 32 मात्राएँ एवं अन्त में दो गुरु हैं। प्रस्तुत है -

(1)

नैन कमान समान छटा नव गागर धार चली सुकुमारी।
कोमल होंठ कपालहु कोमल, नीरज खेल रहे संग डारी।
मारग में डरती रखती पग, पात भरे जल बोझहु भारी।
झाँकत वा चपला जनु घूँघंट, दूर जरा कर मार कटारी।

(2)

थाल सजाय मृगानयनी तब भाल सुशोभित चौरंग सारी
केश घने घुँघराल घटा नभ सावन श्याम घनी लटकारी।
बारहुँ बार निहारत प्रीतम कोमल नैनन काजर डारी
भूषण से तन ढाँकि लियो अरू कौतुक से नर देखत नारी।

और दादा बाग-बाग होकर ठहाके लगा देते थे। दादा के ठहाकों की अनुगूंज सदियों सदियों बनी रहे इन शब्दों के साथ दादा को लाख-लाख प्रणाम करता हूँ।

संपर्क : श्रमफल, 1520, सुदामा नगर, इंदौर 452009 म.प्र.
मो. 98930-34149

■

संस्मरण

प्रेरणा का यज्ञोपवीत पहना गए दादा

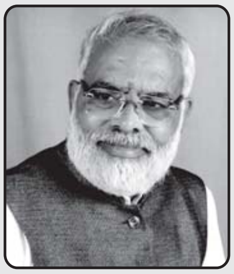

राकेश राणा

मेरे स्मृति कोष की इकतालीस वर्ष पूर्व कि दादा रामनारायण उपाध्याय के विराट व्यक्तित्व की वामन अमिट मधुर स्मृति आज फिर आदरणीय मोटा भाई श्री हेमंत जी उपाध्याय के आत्मीय आग्रह में इन शब्दों में पुनर्जीवित हो उठी। वो कभी न भूलने वाला दिन बारह अगस्त उन्नीस सौ चौरासी था। जब मैं खरगोन के ख्यातनाम व्यक्तित्व स्वर्गस्थ स्वाधीनता सेनानी और साहित्यकार आदरणीय श्री बंकिम बाबूजी जोशी के कहने पर पहली मर्तबा हमारे नवगठित नवयुवक चेतना मंडल खरगोन द्वारा आयोजित बौद्धिक अनुष्ठान नवरात्रि व्याख्यानमाला की तृतीय आवृत्ति के शुभारंभ पर व्याख्यान का निमंत्रण देने और विनम्र स्वीकृति लेने की मंशा से पूज्य दादा स्वर्गीय श्री रामनारायण उपाध्याय से भेंट करने खण्डवा के बस स्थानक पर उतरा। बंकिम दादा ने कहा था। खंड़वा पहुंच कर सिर्फ साहित्य कुटी बोलना। कोई भी तांगे वाला छोड़ देगा। खंडवा पहुंचते मैं साहित्य कुटी शब्द भूल गया था। मैंने एक तांगे वाले से कहा। क्या उपाध्याय दादा के यहाँ छोड़ दोगे? तांगे वाला बोला। बैठ जाओ

मैंने पूछा क्या लोगे? तांगे वाला बोला अरे बैठ जाओ जो देना हो दे देना। तांगे वाले ने एक गली के मुहाने पर उतारा फिर बोला सीधे चले जाना। एक पीले रंग के मकान पर साहित्य कुटी लिखा है वो ही दादा का घर है। मैं बोला क्या दू किराया? तांगे वाला बोला दादा को मेरी राम ! राम ! बोल देना। मैंने कहा मैं आपका नाम नहीं जानता। वो बोला लच्छु तांगे वाला और तांगे वाला बिना कुछ लिये चला गया। गली में थोड़ा आगे एक घर पर साहित्य कुटी लिखा देख। दरवाजे खुले थे। मैं अंदर गया। एक तखत पर धवल बंडी और श्वेत धोती पहने पालथी मार कर बैठे एक बुजुर्गवार दिखे। मैंने चरण स्पर्श किए। मैंने उनसे ही पुछा। रामनारायण उपाध्यायजी यहीं रहते हैं? बुजुर्ग खिलखिलाकर हंस पड़े और बोले मैं ही हूँ बेटा। तुम कौन? मैं सहम कर बोला जी। मैं राकेश राणा खरगोन से। श्री बंकिम दादा जोशी ने आपके पास भेजा है।

दादा बोले अरे... रे... बंकिम न भेज्योज? अरे.. बठ.. बठ..। क्या करते हो? मैंने कहा सरकारी नौकरी फिर घर परिवार की जानकारी ली फिर पूछा। काई काम छे? मैने दादा को व्याख्यानमाला कार्यक्रम की सविस्तार जानकारी दी। दादा ने इस साहित्यिक आयोजन की भूरी-भूरी सराहना की फिर हंसते हुए बोले। तुम्हारा युवा समूह बहुत अच्छा काम कर रहा है मैं जरूर आऊँगा बेटा। मैंने धीरे से कहा दादा व्याख्यान का विषय बता देते तो हमारा आमंत्रण बन जाता। दादा ने विषय बताया हमारे सांस्कृतिक मूल्य और लोक साहित्य। मैंने डायरी में नोट किया विषय। दादा से कार द्वारा खरगोन आने का निवेदन करने पर बोले नहीं मैं रोडवेज से आ जाऊँगा। चर्चा समाप्त दादा के इस आदेश से हुई कि अवं जीमी लेव ! मैंने बहुत ना-नकुर की। बड़ी मुश्किल से दादा माने।

नियत तिथि को हम दादा को लेने खरगोन बस स्टेण्ड गये। खंडवा खरगोन और खंडवा बड़वानी दोनों बस खरगोन आ गई पर दादा कहीं दिखे नहीं। हम निराश बंकिम बाबूजी की दुकान पर पहुंचे तो दादा यहीं बैठे दिखे। मैंने पूछा दादा कौन सी गाडी से आए? दादा बोले खंडवा-बड़वानी गाडी से। मैंने कहा आप तो गाड़ी में थे ही नहीं। दादा ठहाका लगाते बोले मैं स्टेण्ड के बाहर ही उतर गया था। अपनी दो पांव की गाड़ी चलाता यहाँ आ गया। हमने फिर दादा को उनके बालसखा एडवोकेट रामनाथ बिल्लौरे के निवास पर छोड़ा। नियत समय पर दादा स्वयं श्री बिल्लौरे, श्री बंकिम जोशी के साथ आयोजन स्थल नगर भवन आ गये। दादा का धाराप्रवाह प्रगल्भ उद् बोधन सबको मोहित और प्रभावित कर गया और हम आयोजक मित्रों को भी खूब प्रशंसा मिली। कार्यक्रम के अंत में हमने दादा को शाल श्रीफल के साथ पांच सौ एक रुपए की सम्मान निधि भेंट की। दादा ने सम्मान निधि वापस लौटाते कहा राकेश यह आयोजन सतत् करते रहना। दादा अगले दिन प्रात: खंडवा प्रस्थित हुए। यह आयोजन आगे ग्यारह वर्षों तक सालाना होता रहा।

दादा ज्ञान में बृहस्पति सदृश थे। दादा का पितृ तुल्य वात्सल्य मुझ अल्पज्ञ के स्मृति कोष में आज भी महफूज है और उनकी विनम्रता से मैंने प्रेरणा का यज्ञोपवीत धारण किया। यह मेरा भाग्य नहीं सौभाग्य है।

स्मृति शेष पूजनीय रामा दादा को शत्-शत् नमन्।

सम्पर्क : ललित गद्य लेखक, झंडा चौक, खरगोन
आभासी संदेश: 94250 87463, वार्तालाप 94795 77463

संस्मरण

दादा रामनारायण जी उपाध्याय का चैत्रोत्सवी स्मरण

प्राचार्य डॉ विश्वास पाटील

मध्यप्रदेश की भूमि पर दादा के आगमन के साथ एक चैतन्य की लहर दौड गई। माखनलाल जी, किशोरकुमार जी के साथ पूजा की त्रिवेणी पूर्ण हो जाती है। दादा के जीवन में एक साथ भारत की लोक संस्कृति का जागरण और गाँधी चिंतन की प्रमुखता पाई जाती है। यह अद्भुत है। हिंदी के सौंदर्यवर्धन में दादा की लेखनी ने जो चार चाँद लगाए हैं वे तो प्रशंसा के पुष्पों से म्लान हो जाएंगे इस प्रकार की स्थिति है।

मैं चैत्रोत्सव का आनंद उठा रहा हूँ। हवा में ठंडक है। आँगन के कडवे नीम की देहकांति चैत्र पल्लवों से नक्काशीदार हो गई है। पक्षियों का मधुर कलरव जाग उठा है। हवा के अंतरंग में धूप के रंग की बौछार हो गई है। उस बौछार में पीले रंग का लेपन है। गाय के दूध सा चमकीला यह पीलापन मन को मोह लेता है। ब्रह्ममुहूर्त अभी टला नहीं है। मेरे हाथों में उपनिषद के पृष्ठ फडफडा रहे हैं। इन पृष्ठों में अंकित श्लोक में पखेरु गा रहे हैं। ऋषि ने कहा –

आनंदात् हि एव खलु इमानि भूतानि जायंते ।
आनंदेन जातानि जीवंति आनंदं प्रयंति अभिसंविशंति ।।

यह समग्र सृष्टि आनंद से ही आकारित हुई है। जन्मी है। आनंदद्वारा वह पालित–पोषित है। उसकी गति आनंद की दिशा में है। वह ईश्वर की आवश्यकता के कारण उत्पन्न नहीं हुई है। उसके आनंद से, प्रेम से यह विश्व प्रकट हुआ है। इस सृष्टि में उसने अपने आपको ढाल दिया है। प्रकट करा दिया है। इसके माध्यम से ईश्वर प्रकट हुआ है।

कहाँ ढूँढा जाएँ जगन्नियंता को ? क्या वह खो गया है ? मंत्रदृष्टा ऋषि ने उसका पता बताया है। वह स्वयंनिर्मित सृष्टि में प्रकट हुआ है। वह हवाओं के साथ डोलता है। तारों के साथ गीत गाता है। चाँदनियों में जगमगाता है। पहाडों में नदियाँ बन कर प्रवाहित होता है। समुद्र में पुकार बन कर गरजता है। शेर की दहाड में समाया हुआ है। चूहे के डरपोक पन को उजागर करता है। खरगोश की दौड में विहरता है। कछुए की मंद गति में विहँसता है। धरती की छाती में दाह बन कर स्थिर होता है। धरती की छाती से वनस्पति के रुप में औषधि बनता है। जीवन को निरामय रखता है। वह यों सृष्टि के माध्यम से प्रकट होता है। कभी सृष्टि में अप्रकट रहता है। इस प्रकार से लुकाछिपी का खेल खेलता है।

ईश्वर सनातन सत्य के समान प्रकट होता है। नए –नए रुपों में आविष्कृत होता है। वह अपने आत्मतत्व के चराचर रुपों में समावेश करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन कारणों से वह बडा है। दादा जी ने हमें समझाया कि भाइयों–बहनों, हम क्षुद्र कामों के जंजाल में फँस जाते हैं। कराल वासना की पकड हमें कमजोर बना डालती है। मोह के गर्त में धँस जाते हैं। निंदा के ढोल हमें सुहावने लगते हैं। फिर उस अनंत क्षितिज का दर्शन हमें कैसे होगा ? हमारा सही रुप तो विश्वाकार होना है। विश्वव्यापी होना है। सबसे एकाकार होना है। पूरी तरह से एक बने बिना हमें सच्चे प्रेम का बोध नहीं मिलेगा। उसी समय हम जीव से शिव बन सकते हैं। यह आत्मा का सही रुप है। ऋषि विश्व जीवन से एकाकार हो जाते हैं। पूरी तरह से एक बनने के बाद ही विश्व की समझ जागती है। ऋषि स्वार्थ से मुक्त हो जाते हैं। ज्ञान से तृप्त हो जाते हैं। परमात्मा से एकता का अनुभव करते हैं। उन्हें विश्वव्यापी परमात्मा का दर्शन होता है। वे समस्त सृष्टि में प्रभु के दर्शन करते हैं। इससे व्यक्ति की सीमित कक्षा का विस्तार होता है। कबिले से कुटुंब बनता है। कुटुंब का समाज बनता है। समाज से एक राष्ट्र की रचना होती है। राष्ट्र से विश्व सजता है। अनंत विश्व का एक अंतरिक्ष होता है। एक कितना व्यापक हो सकता है। एक अकेला व्यापक बनते रहता है। जीवन विशाल है। 'प्राणो विराट' यह वचन तो ऋषि ने बहुत सोच विचार कर ही कहा है। ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हैं। तमाम वस्तुमात्र की भलमनसाहत वह है। सत् तत्त्व है वह। वह शिव स्वरुप है। वह सुंदर है। वह प्रेम में बसता है। सेवा मे विहार करता है। करुणा में निनादित होता है। कल्याण में विरमता है। यह है उपनिषद का सारांश।

दादा जी के लेखन और जीवन का विचार करते समय यह सहज ही ध्यान में आता है कि जीवन खंडमय नहीं है। जीवन अखंड है। यहाँ पर हेतुरहित कुछ भी नहीं है। सब कुछ सहेतुक है। निरंतर आगे बढते जाना है। विकास साधना है। यह नैतिक दृष्टि है। अपने तक ही देखना और

सोचना गलत बात है। सबके लिए जीना ही सच्चा जीना है। दूसरों के बारे में सोचना और दूसरों के लिए जीना जरुरी है। सुख नकारते आना चाहिए। दुःखों को गले से लगाते आना चाहिए। यह राम ने किया। कृष्ण ने किया। महावीर ने किया। बुद्ध ने किया। जिजस ने किया। मुहम्मद ने किया। जीवन को मूल्य अर्पित करने वाली मृत्यु का संतों ने और सज्जनों ने स्वीकार किया। एक घडे भर जल का बोझ लगता है। तैरने वाले के सिर पर पूरी नदी का प्रवाह होता है उसका कोई बोझ नहीं होता है। सज्जन आपत्तियों के पहाड झेल लेते है। त्रास सहते हैं। क्षमामूर्ति बनते हैं। अनंत से रिश्ता जोडते हैं। तब कहीं जा कर दुःख उन्हें सामर्थ्य अर्पित करता है। आशीर्वादरुप बनता है। स्वार्थ के लिए भोगों का उपभोग किया कि वे दुष्ट सिद्ध होते हैं। गहरी खाइयों में पटक देते हैं। परिपूर्णता का विचार करना चाहिए। दुःख स्वीकारना चाहिए। वह तारक बनता है। इससे परमानंद की प्राप्ति होती है। हम अपनी क्षुद्र परिधि के बीच रहने के आदी हो गए हैं। अपना और पराया यह भाव बनाए रखते हैं। पूर्ण का अवमान करते हैं। अपूर्णता को पूर्ण मानने का स्वार्थी हठ पालते हैं। फिर दुनिया में अशांति का जन्म होता है। विद्रोह झंडे गाड कर खडे हो जाया करते हैं। संहार को जन्म मिलता है। अव्यवस्था का साम्राज्य सजता है। अहंकार जागता है। अहंभाव दुनिया के प्रवाह को रोकना चाहता है लेकिन वह तो प्रवाह में बह जाया करता है। एक अकेले का बल कितना भी क्यों न हो समूह के विद्रोह के खिलाफ उसकी एक नहीं चलती। सबकी एकजूट हो जाएँ तो उसके खिलाफ कोई जीत नहीं सकता है। वह मिट्टी में मिल जाएगा। मिट्टी के कीमत होगी उसकी। यह दुनिया का अनुभव है। ऋषि ने भी यही तो कहा है। अधर्म से चलने वालों की जयजयकार होती है, ऐसा लगता है। सब कुछ उसकी मुट्ठी में होने की बात दिखाई देती है क्षण भर के लिए। विविध ताकतों पर उसकी अधिसत्ता होती है, ऐसा लगेगा घडी भर के लिए लेकिन अंततोगत्वा उसका विनाश अटल है। दुनिया का इतिहास इन उदाहरणों से भरा हुआ है। जो अपने व्यक्तित्व को विशाल बनाना चाहता है उसे चाहिए कि वह विश्वात्मक बने। विश्व में अपनी जडें मजबूती से सजाकर बसाएँ। ऐसा न किया तो वह तापरुप होगा, पापरुप होगा, शापरुप होगा।

दादा जी का सारा साहित्य एवं जीवन साधना इस परमानंद की आराधना रही। एक गाते-हँसते-नाचते पुष्प की जीवन साधना रही। पुष्प सुंदर होता है। रंगीन होता है। सुगंधित होता है। उसे पुष्पित होने से भी एक और श्रेष्ठ काम करना है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए वह अपने रंगों को लुटा देता है। गंध को बिखेर देता है। पुष्प फल को जन्म देना चाहता है। तितली आती है। पराग कणों को लुटाती बिखेरती है। पुष्प के फल बनने की प्रकिया आरंभ हो जाती है। फल के तैयार होने के साथ पुष्प नष्ट हो जाता है। उसकी पंखुडियाँ गल पडती हैं। रंग समाप्त हो जाता है। गंध समाप्त हो जाती है। रुप की माधुरी नष्ट हो जाती है। अब कहाँ है पुष्प? कहाँ गया उसका नाज और नखरा ? कहाँ खो गया उसका रौब? पुष्प अब निर्मिति के कामों में तन्मय है। कली का पुष्प। पुष्प से फल। फल में बीज। बीज में अंकुर। अंकुर में वृक्ष। वृक्ष पर अनंत गुना अधिक सुंदर पुष्प सजते हैं। मोहक पुष्प खिलते हैं। यह अखंड जीवन यात्रा है। इसमें बाधा बनने वाले को दूर फेंक दिया जाएगा। पुष्प याने प्रकृति के द्वारा हमे अर्पित प्रेमपत्र है।

दादा जी के साहित्य को पढ कर एक बात समझ में आती है कि दादा जी ने गंदगी को परे हटाया। अरण्य काट कर रास्ते बनाए। खेती लहलहाई। उपवन सजाया। कुरुपता के प्रकोप से सुंदरता को मुक्त किया। बौडम पन से लावण्य को खुला किया। कीचड से कमल सजाए। कालरात्रि को चाँदनियों की चमचमाती हुई झालर से सजाया। भोग को भद्रता अर्पित की। भद्रता को भाव की संथा दी। स्वार्थ को सहानुभूति का संदर्भ प्रदान किया।

दादा जी ने मानव्य को विकसित किया। संस्कृति के पृष्ठों पर रंग चित्रित किए। उनके चिंतन का सारांश है कि मनुष्य दिव्यता की मूर्ति है। मनुष्य को चाहिए कि वह कठिनता का त्याग करें। जो प्रबल हैं उन्हें चाहिए कि वे दुर्बलों को सीने से लगाएँ। चाबूक न उठाए। दास न बनाएँ। मानव्य की जडों पर घाव न डाले। स्वातंर्त्य, समता, बंधुता, न्याय इन मूल्यों की जयजयकार करें। इससे संस्कृति का विकास होगा। आसुरी भावना से संस्कृति का विकास रुक जाएगा। भोग नहीं चाहिए। भाव चाहिए। अपने अकेले तक सीमित मर्यादित रहने में कहाँ से परिपूर्णता आ सकती है? जीवन में शुभ दृष्टि चाहिए। सहभाव जगाना होगा। दूसरों के कल्याण में अपने कल्याण के दर्शन करना ही तो शुभ दृष्टि है। प्रकृति अपने आपको समर्पित कर देती है पूरी तरह से, कहीं भी अपने लिए कुछ भी बचा कर नहीं रखती। सृष्टि आनंदरुप से नटती है। हमें चाहिए कि हम विश्वसंगीत का आस्वाद ग्रहण करें। अविरत श्रमशील बने रहे। दुर्बलता का त्याग करें। शौर्य की प्रार्थना करें। विश्वशक्ति की, चैत्र की संवेदना को अपने अंगों पर झेल लें। विविध फूलों का परिमल साँसों में भर लें। अरण्यगीतों को अपने हृदय संपुट में स्थापित करें। हमारे कंठों से सर्वग्राही प्रार्थना का झरना प्रवहमान हो। मुझे लगता है कि दादा जी का स्मरण करते हुए इन सारी पूजा सामग्री को अपने हाथों सँवारना होगा। उनकी स्मृतिशेष काया को नमन।

दादा जी के जीवन और साहित्य के बारे में मैं सोच रहा था। सोचते रहा। रात्रि का काला परदा हटने लगा है। उषःकाल सस्मित मुद्रा से उजला बन कर प्रकट हो रहा है। सूरज हँसता है। दादा जी का लेखन सामवेदगान है। वह सुबह के साथ एकाकार हो गया है। सुबह होते ही वह प्रकट होगा। सृष्टि का संगीत विश्व में व्याप्त हो कर परब्रह्म के समान दशांगुल ऊपर ही रहता है। विविध होता है वह। विविधाकार होते हैं उसके नाना रुप एवं आकार। नाना रंग एवं नाना गंध। आज वह और भी नूतन बन गया है। समर्पण के कारण वह नया है। सृष्टि की देह में अनंत यौवन बसता है। धरती चमचमाती हुई दिखाई देती है। सृष्टि की टोकरी में चैतन्य के कण पुष्प बन कर सज उठते हैं। हर दिन नूतन का गीत गाता है। जीवन उजाले से भर जाता है। और हाँ, मौत तो मृत्यु की ही होते रहती है। यह दादा का परममंगल गीत स्वर है। नमन।

संपर्क : 34-बी 'कृष्णाबंरी', सरस्वती कॉलोनी, शहादा - 425 409
मोबाईल 9403848907 // 9767487483

संस्मरण

निमाड़ी लोक साहित्य के महर्षि

डॉ महेशचन्द्र शांडिल्य

परम पूज्य गुरुवर्य श्री रामनारायण उपाध्याय, निमाडी लोक भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति के मर्मज्ञ मनीषी थे। उन्होंने आगरा के सु-प्रसिद्ध साहित्यकार श्री वासुदेव शरण अग्रवाल की पुस्तक पृथ्वी पुत्र का अध्ययन कर, उससे प्रेरणा लेकर, मध्यप्रदेश के लोकांचल निमाड़ के लोक साहित्य को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलवाने का संकल्प किया, और आजीवन, वे इसी संकल्प को पूर्ण करते रहे। दादा ने 'पृथ्वी-पुत्र' पुस्तक को गीता के समान माना और वे सदैव उस पुस्तक को अपने साथ रखते थे।

जब मेरे परम पूज्य पिताजी स्व. श्री राधेश्याम शांडिल्य जी हरदा (म.प्र.) की निमाड़ के पारम्परिक लोकगीतों पर एकाग्र पुस्तक 'नर्मदा की वाणी' प्रकाशित हुयी तो उसकी प्रथम प्रति देने जब, पूज्य पिताजी और मैं उनके निवास ब्राह्मणपुरी खण्डवा पहुँचे तो दादा ने हमारा बहुत स्वागत किया। पुस्तक को देखकर दादा जी बहुत प्रसन्न हुए, और परम पू. पिताजी को अपना आशीर्वाद देकर कहा कि, आपने बहुत अच्छा कार्य किया है, आप अपने निमाड़ की लोक कला, संस्कृति, साहित्य पर तथा आप अपने क्षेत्र में रहने वाली कोरकू जनजाति पर भी गंभीरता के साथ कार्य करो, क्योंकि तुम कोरकू भाषा के भी अध्येता और विशेषज्ञ हो और उनकी भाषा भी जानते हो। सम्मानीय दादा की वाणी से पिताजी को बहुत ही ऊर्जामय प्रेरणा मिली, और उन्होंने दादा को अपना गुरु भी बना लिया. दादा की यह मधुर वाणी सुनकर, मैं भी अविभूत हो गया, और मैंने भी उनसे आज्ञा लेकर, उनके बारे में दो पंक्तियाँ सुनायी-

शोभित सुन्दर स्वरूप अद्भुत आभा है अनूप,
सरल सहज सरस, हँसमुख है रूप-स्वरूप।

लगभग 54 कृतियों का सृजन करने वाले ऐसे विरले ही महा-पुरुष इस धरा पर अवतरित होते हैं। धोती, कुर्ता, बण्डी पहिनने वाले श्री उपाध्याय जी का कृतित्व बेमिसाल है। उनकी सरल सहज हँसी और ठहाके आज तक हमारे कानों में गूंजते हैं उनके इस ठहाकों के कारण उनसे मिलने वाले गुणीजनों के जीवन में एक नयी ऊर्जा और जीवंतता का संचार होता था। निमाड़ का लोक साहित्य, कला और संस्कृति पर उनके विशिष्ट रचनात्मक कार्यों के देखते हुए भारत सरकार ने दादा को 'पद्मश्री' सम्मान से विभूषित भी किया परम सम्मानीय दादा श्री रामनारायण उपाध्याय जी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे पत्र-व्यवहार में सबसे द्रुतगामी लेखक रहे हैं। वे जहाँ एक ओर कोमल-कोमल हृदय थे तो दूसरी ओर बुद्धि से प्रज्ञावान और वाक् के धनी थे। उन्हें जहाँ बोलने में महारत हासिल थी, वहीं उन्होंने माँ सरस्वती की कृपा से लेखन में भी सिद्धी अर्जित की थी। जब हमारा चयन मेरा और मेरे मित्र सहयोगी श्री विनोद गुर्जर जी का चयन संयोग से आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल में हुआ, तो हम दोनों परिषद् के ही किसी कार्य से ब्राह्मणपुरी खण्डवा में दादा से मिलने पहुँचे और उनका आशीर्वाद लिया। फिर साहित्य पर सम्वाद होने लगा तो दादा ने अपनी एक प्रकाशित कृति हमें भेंट में दी और कहा कि से जरूर पढ़ना, जब हमने उस पुस्तक का अध्ययन किया, तो दादा के प्रति हमारा शीष श्रद्धावनत हो गया।

महेश जी शांडिल्य, पं. रामनारायण उपाध्याय, विनोद गुर्जर

इसी अवसर पर दादा ने हमें एक संस्मरण भी सुनाया। उन्होंने का कि जब यह पुस्तक मैंने देश के शीर्षस्थ विद्वान और महान साहित्यकार कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी को भिजवायी तो उन्होंने, इस पुस्तक का अध्ययन कर मुझे पत्र लिखा कि हे! मेरे परम प्रिय उपाध्याय जी यह पुस्तक लिखकर आपने-अपने निमाड़ के लोक साहित्य और संस्कृति को जन-जन तक पहुँचाने का सर्वश्रेष्ठ कार्य किया है, और अपना नाम पूरे देश में बढ़ा रहे हैं मैं आपको नमन करता हूँ। और मेरी तो यह भी प्रबल इच्छा हो रही है कि, मैं आपसे खण्डवा मिलने आऊँ, और आपके श्रीचरणों में अपना शीष रखकर आपका आशीर्वाद ग्रहण करू। पर क्या करूँ भैया, हमारी वय ने आपको मुझसे छोटा बना दिया, पर लेखन में, आप मुझसे बड़े हैं, मैं आपको बार-बार हृदय से प्रणाम करता हूँ, ईश्वर करें आप शतायु हो.

परम पूज्य दादा के इस संस्मरण ने हमको भाव-विभोर कर दिया । परम श्रद्धेय दादा की यह अमूल्य रचना और उसके भाव सदैव मेरी आत्मा में बसे हैं. संभवत: आप भी दादा की यह रचना पढकर भाव-विभोर हो जाएँगे. दादा की रचना इस प्रकार है-

कहाँ है घर
जहाँ हो पिता के आशीर्वाद की छत
माँ की ममतामयी गोद का फर्श
भाईयों की भुजाओं के खम्भे
बहिनों की प्रेम रूपी लताएँ
बच्चों की किलकारियों के झरोखे
जहाँ हो वहाँ घर होता है।

इस शताब्दी वर्ष के अवसर पर मेरे और मेरे पिता के गुरुवर्य जी निमाड़ के साहित्य महर्षि पं. रामानारायण उपाध्याय जी के श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमन।

सम्पर्क : आई-3, राजवेद कॉलोनी, एकता पॉर्क के पास, नयापुरा कोलार रोड़
भोपाल (म.प्र.) पिन: 462 042 मो. 98931 80731/83195 68216

अजब-गजब थे अपने रामा दादा

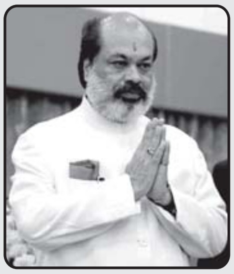

राज शेखर व्यास

हिंदी साहित्य में मेरे तीन रामा दादा हैं- तीनों यूँ कहूँ कि थे-स्व. रामविलास शर्मा राणा सांगा (भास्कर सं.), दूसरे महापंडित, आलोचक, कवि डॉ. रामविलास शर्मा और तीसरे रामा दादा यानी हमारे स्व. पं. रामनारायण उपाध्याय। यहाँ तीसरे रामा दादा का ही उल्लेख है। 20 मई, 1918 को मध्य प्रदेश के खंडवा जिले के एक छोटे से गाँव कालमुखी में जनमे पं. रामनारायण उपाध्याय एक साधारण किसान परिवार से संबद्ध स्वाभिमानी, विनोदप्रिय, अलमस्त, फक्कड़ और लोकभाषा, जन-जीवन के विलक्षण चितेरे साहित्यकार-व्यंग्यकार थे।

आपके पिता श्री सिद्धनाथ उपाध्याय इस छोटे से गाँव कालमुखी में खेतिहर मालगुजार थे और माता दुर्गाबाई धार्मिक प्रवृत्ति की स्नेहमयी सहृदय महिला। पिता धार्मिक ग्रंथों का बेहद मनोयोग से अध्ययन करते थे। फलस्वरूप नन्हे रामा को बाल्यावस्था में ही भारतीय आर्य साहित्य की विविधता का अध्ययन सुलभ हुआ। छोटी-से-छोटी चीज को बेहद बारीकी से देखने, पढ़ने, सुनने, समझने का गुण भी उन्हें पिता से ही विरासत में मिला। रामा दादा का विवाह खंडवा की ही शकुंतला देवी से हुआ। वे भी बेहद धार्मिक महिला थीं और उन्होंने रामा दादा की साहित्यिक साधना में उनका निष्ठापूर्वक साथ दिया। घर-परिवार का संपूर्ण उत्तरदायित्व जीवन-पर्यंत मनोयोग से सँभालती रहीं, किंतु विगत दिनों अचानक वह भी सदा-सर्वदा के लिए रामा दादा का साथ छोड़कर चली गईं। स्नेह की साक्षात् प्रतिमा, धरती की तरह सहनशील शकुंतला देवी के बारे में स्वयं दादा ने एक पत्र में मुझे लिखा था आखिर पत्नी साथ छोड़कर चली गई। नितांत अकेला रह गया। वह शकुंतला बनकर मेरे जीवन में आई और सीता की तरह अपना दायित्व सँभालकर धरती में समा गई।

लेखक बनने के लिए उच्च शिक्षा की जो पूँजी चाहिए, वह भी रामा दादा के पास नहीं थी। तथाकथित सभ्य समाज के वातावरण की यात्रा के अनुभव से भी रामा दादा वंचित ही रहे। फिर वह कौन सी बात थी. जिसने रामा दादा को पदमश्री विभूषित पं. रामनारायण उपाध्याय बना दिया. बचपन से ही पुस्तक पढ़ने की रामा दादा को ऐसी ललक थी कि अपने गाँव से सात मील दूर अपने पिता के एक मित्र के घर साइकिल से जाते और वहाँ से प्रतिदिन पुस्तक लाकर पढ़ते। पिता के एक मित्र उस जमाने में कौंसिल के मेंबर थे। उनकी दो लडकियाँ थी, जिनको उन्होंने लड़कों की तरह पाल पोसकर बड़ा किया था तथा उच्च शिक्षा दिलाई थी। बांग्ला और हिंदी का सारा उत्कृष्ट साहित्य रामा दादा अल्पायु में ही पढ़ चुके थे। पढ़ने की इस रुचि ने रामा दादा को वीरेंद्र कुमार, प्रभाकर माचवे जी से मिला दिया। प्रभाकर माचवे जी ने ही रामा दादा को लोक-साहित्य की ओर प्रवृत्त किया, रामनारायण, हिंदी में तो कई घर-घर बैठे हैं। ऐसे-ऐसे पंडे-पुजारी हैं, जिन्हें चाहे आसमान से गिरा दें या नीचे पटक दें, लेकिन तुम धरती के बेटे हो, गाँव से जुड़े हो, निमाड़ी लोक-साहित्य पर काम करो। इससे तुम्हें अक्षय कीर्ति मिलेगी।

यह भी एक विचित्र संयोग है कि लोक-साहित्य और व्यंग्य के लिए चर्चित रामा दादा के लेखन का आरंभ एक निबंध से हुआ। आपकी पहली रचना विकास या विनाश खंडवा से ही प्रकाशित माखनलाल चतुर्वेदी के चर्चित पत्र कर्मवीर के 10 मई, 1941 के अंक में छपी थी। रामा दादा की दूसरी रचना एक मार्मिक लघुकथा थी, जो आटा और सीमेंट के नाम से अक्तूबर 1941 में इंदौर से प्रकाशित वीणा में छपी थी और काफी चर्चित हुई। इसके बाद तो विश्ववाणी और धर्मयुग में रामा दादा ने लगातार लिखा। साप्ताहिक हिंदुस्तान में आपका पहला व्यंग्य लेख अगस्त 1952 में छपा-माफ कीजिए, मैं माँगकर नहीं पढ़ता। इस व्यंग्य का जन्म रेल यात्रा के दौरान माँगकर पढ़नेवाले यात्रियों को लेकर हुआ था। रामा दादा का यह व्यंग्य खूब चर्चित रहा। सन् 1952 में ही धर्मयुग ने लोक-साहित्य पर रामा दादा का एक हृदयस्पर्शी संस्मरण प्रकाशित किया, जिसमें रामा दादा ने बताया था कि उन्हें लोक-साहित्य की प्रेरणा कहाँ से और कैसे मिली।

रामा दादा को लिखते-लिखते वर्षों हो गए थे, किंतु उनकी एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हो पाई थी। तब विवश होकर रामा दादा ने कर्ज लेकर एक पुस्तक छपवाई और उस पुस्तक की बिक्री ने उन्हें कर्ज से मुक्त कर दिया। उन्हें किसी भी प्रकाशक ने नहीं छापा। इस व्यथा को लेकर रामा दादा ने एक व्यंग्य लिखा- 'किसी गरीब की गुणवान बेटी के लिए योग्य वर नहीं मिलता, ऐसे ही अच्छी पुस्तकों के लिए प्रकाशक नहीं मिलते और पैसेवालों की गुणहीन कृति छाप-छापकर प्रकाशक बगल में दबाए इठलाते फिरते हैं।' रचना का शीर्षक था गरीब और अमीर पुस्तकें। साप्ताहिक हिंदुस्तान में इस रचना को पढ़कर शैलीकार कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने अपने प्रयासों से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ से इसी शीर्षक से रामा दादा की पुस्तक प्रकाशित करवाई। फिर तो रामा दादा चल निकले और देश की सभी प्रमुख प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उनके नियमित स्तंभ, व्यंग्य, रूपक आदि रचनाएँ छपने लगीं। फिर रामा दादा के जीवन में उनके जैसे ही सहज, सरल श्यामसुंदरजी आ गए। उन्होंने रामा दादा का संपूर्ण साहित्य छपवाकर पाठकों के लिए सुलभ कर दिया। आज उनकी 32 से अधिक चर्चित रचनाएँ साहित्य जगत् की शोभा बढ़ा रही हैं।

मेरा विगत तीन दशक से रामा दादा से बहुत गहरा, व्यक्तिगत और अंतरंग संपर्क था। भारतीय दूरदर्शन पर सबसे पहले मैंने उनका साक्षात्कार एक मामूली आदमी से बात शीर्षक से सन् 1986 में दूरदर्शन के राष्ट्रीय प्रसारण के लिए लिया था। फिर उनके जीवन पर एक वृत्तचित्र भी बनाया था। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के समक्ष राष्ट्रपति भवन में होनेवाले मेरे हर आयोजन के वे नियमित वक्ता और स्नेहिल अतिथि होते थे। आज वे चले गए। उनके नाम के आगे स्व. लिखते तो अब भी हाथ काँपता है।

स्त्रोत : याद आते हैं (संस्मरण ग्रथ-राजशेखर व्यास, प्रभात प्रकाशन 4/19 आसफ अली रोड नई दिल्ली और नई नई दुनिया वीणा भास्कर ट्रिबयून में प्रकाशित देहावसान के तत्काल बाद)

निमाड़ी लोक के पथ प्रदर्शक पद्मश्री विभूषित पं. रामनारायण उपाध्याय

महेश जोशी 'अनल'

चश्मे से झांकती ममतामई आँखें, चेहरे पर मृदुल मुस्कान और पीठ पर या कंधे पर रखा कंपकंपाता हाथ। पूजनीय रामा दादा का ये शब्द चित्र नये-पुराने, छोटे-बड़े, बूढ़े-जवान सभी साहित्य साधकों के साथ खींचा जा सकता है। मैं सौभाग्यशाली हूँ कि उनसे एकाधिक बार सान्निध्य मिला और आशीष प्राप्त हुआ। स्व. बाबुलाल सेन दादा पूजनीय रामा दादा के आशीर्वाद और विमर्श के बिना कोई भी नया सृजन नहीं करते थे। उन्हीं के साथ खंडवा जाकर दादा से मिलने का सौभाग्य मुझे अक्सर मिला है। पहली या दूसरी भेंट से ही रामा दादा मुझे पहचानने लगे थे और मेरी रचनाएं सुनकर तत्काल प्रशंसा के साथ आवश्यक सुझाव देने में संकोच नहीं करते थे। निमाड़ी में नये पुराने रचनाकारों का एक साझा संकलन निकालने की योजना लेकर मैं बाबु दादा के साथ एक बार खंडवा गया तो उनसे हुआ वार्तालाप आज भी मेरी धरोहर बना हुआ है। साझा संकलन के लिए आवश्यक निर्देश सेन दादा को देकर वे मुझसे मुखातिब हुए -

- नाना काई लिखी रयोज् आजकल, निमाड़ी मैं जादा लिख। अपणी निमाड़ी में जेतरो लिखऽग, मक ओतरी शांति मिलगऽ। हाव दादा आपका आशीर्वाद सी हाउं निमाड़ी में बी लिखी रयोज। काई - काई लिखज् निमाड़ी मं? दादा ने पूछ्यो तो मन कयो - हाउं तो ग़ज़ल न लिखूंज। काव्य का अलावा गद्य भी लिख, निमाड़ी मं गद्य प भोत कम काम हुयोज्। हाव दादा। पण गद्य मन आज तक नी लिख्यो।

नाना हाउं बी तो इज् कइ रयोज। नइ लिख्यो तो लिख, कि अड़चण आवऽ तो बाबु भाई सी वात कर, म्हारा सी पूछजे। हम दुइ बी अवंऽ पाका अम्बा जसा छे कवंऽ टपकी जावां, कि नख्बी नी हंइ। हमारा बाद अवंऽ तमकज् निमाड़ी की सेवा करनुंज।

दादा से हुई ये बातचीत मेरे मस्तिष्क में महीनों खलबली मचाती रही। निमाड़ी में गद्य लिखने का प्रयास भी किया किंतु आप इसे मेरी कमजोरी कह लें या कमी कह लें, छिटपुट लघुकथाओं के अलावा निमाड़ी गद्य में आज तक कुछ सृजन नहीं कर पाया। पूजनीय रामा दादा और बाबुलाल सेन दादा प्रयाण कर गये पर उनके आशीष से मैंने यह संकल्प तो कर रखा है कि निमाड़ी में गद्य में सृजन जरुर करूंगा, ये सृजन क्या होगा ये भविष्य के गर्भ में है पर रामा दादा का आशीर्वाद फलीभूत होगा ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

संपर्क : 40, नर्मदानगर कॉलोनी खरगोन 451001 मध्यप्रदेश
मोबाइल 9424055551

संस्मरण

दादा का कालमुखी, कालमुखी के दादा

प्रदीप नवीन

राम कहें नारायण हैं
नारायण कहें राम,
कालमुखी में अब भी होती
अच्छी सुबह शाम ।

हाँ निश्चित ही अप्रैल 1972 की बात है। मेरी प्रथम नियुक्ति म.प्र.वि.म.खरगोन में हुई। प्रथम छुट्टी का दिन होते ही रात को रोडवेज की बस से खण्डवा पहुंचा। स्टेशन के पास ही स्थित धर्मशाला में रुका। प्रातः नौ बजे ही मन में एक असीमित खुशी लिए कि हिन्दी/निमाडी के इतने वरिष्ठ साहित्यकार से मिलकर कैसा अनुभव होगा? वैसे दादा से एवं कुबेरनाथ जी राय से बहुत थोडा सा पत्र व्यवहार 1971 में हुआ था।

साहित्य कुटीर ब्राह्मणपुरी में प्रवेश करते ही सामने बडे तखत वाले झूले पर सफेद स्वच्छ धोती, सफेद बंडी में चेहरे पर सौम्य मुस्कान लिए दादा बैठे थे। चरण स्पर्श कर उनका आशिष लिया। क्या करते हो, क्या लिखते हो, कहाँ से आए हो। अपनी समस्त जानकारी देने के पश्चात उन्होंने कहा कि खरगोन से ? वहाँ हमारे जंवाइ जी हैं, वे भी विद्युत मंडल में ही हैं (अब स्व.)। तब तो मुझे भी प्रसन्नता हुई। नेगीजी से भी आत्मिय परिचय हुआ। दादा के खरगोन आने पर नेगीजी के निवास पर ही अक्सर साहित्यिक चर्चा या कविगोष्ठी हो जाया करती थी, जिसमें उस समय के दादा बंकीम जोशी, लक्ष्मणसिंह दसौंधी, प्रभाकर दुबे, जगदीश पंड्या, सुधाकर परसाई, उर्दू के राज सागरी, हाफीज मा. अपनी अपनी कविता/शायरी सुनाते थे। दादा बड़े मनोयोग से सबको सुनते थे। जब वे

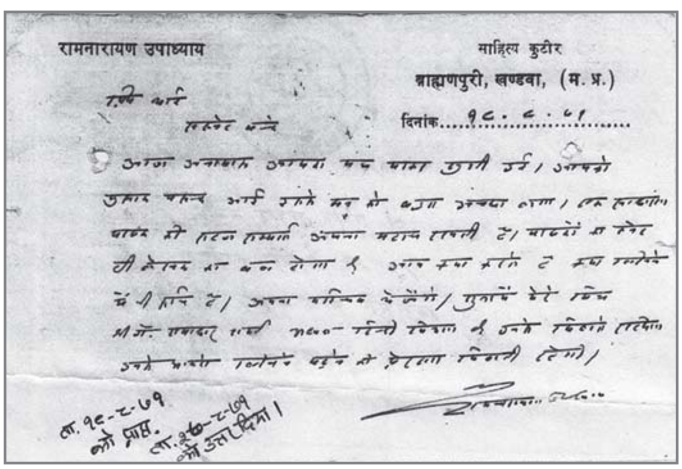

रामनारायण उपाध्याय
साहित्य कुटीर
ब्राह्मणपुरी, खण्डवा, (म. प्र.)
दिनांक 1C.C.61

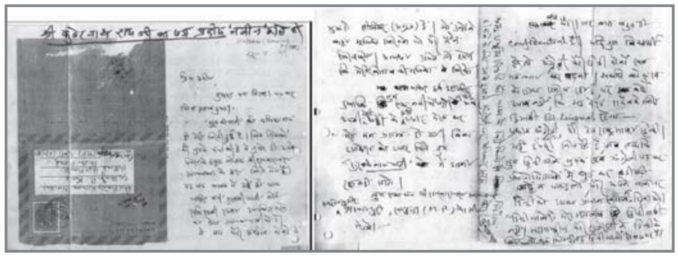

सुनाते तो हम सभी गंभीर हो जाया करते थे। पर ये क्या? दादा के ठहाके लगते ही सारे अपनी हँसी न रोक पाते थे। कभी हिन्दी कभी निमाडी में उनका वक्तव्य अर्थपूर्ण एवं भावात्मक होता था।

वर्ष 1976 में दादा एक कार्यक्रम में सनावद आए थे। श्री जगदीश विद्यार्थी जी के कहीं अन्यत्र होने से वे काफी समय तक साथ रहे ब्राह्मणपुरी वाले मकान में। जब विद्यार्थी जी आए तो उन्हे लेकर उनके घर गया। काफी विस्तार से सनावद की साहित्यिक गतिविधियों एवं सुमन साहित्य समिति के (1 जन. 1967 में गठित) बारे में चर्चा हुई। दादा से दूसरी वृहद भेंट प्रथम कृति मनुहार पर उनके स्नेह के दो शब्द लिखवाने के दौरान हुई। उस पर उन्होने भरपूर आशीष दिया। यूं तो बहुत सारी स्मृतियां हैं दादा की, लेकिन उनके सबूत फोटोग्राफ नहीं। उस समय कहाँ थे कैमरे/मोबाईल।

दादा की कुछ कृतियों को काव्यात्मक रुप देकर नमन करता हैं–

साहित्य कुटीर ब्राह्मणपुरी :खण्डवा की कचहरी में पं रामनारायण उपाध्याय अपनी काव्य पुस्तक "मनुहार" भेंट करते हुवे पं प्रदीप "नवीन" काले :इंदौर

पुस्तक 'मनुहार' की भूमिका दादा ने ही लिखी है; - एक छाँव नीम

पाती सुख के नाम लिखो
दुख हों सारे दूर,
चीख क्रौंच की सुनने को
सारे हों मजबूर।
कहते हैं मन के मृगछौने
चिट्ठी पत्री लिखा करो,
कुमकुम कलश, आम्रपल्लव में
कभी कभी तो दिखा करो।
संस्मरणों की गंगा है।
इतना लोक साहित्य,
वार्ता करे निमाडी में
चंदा से आदित्य ।

सम्पर्क : 1ए, सिल्वर आक्स कालोनी, अन्नपूर्णा रोड, इंदौर, म.प्र. 452009 मोबा. 9238162694

■

संस्मरण

निमाड़ी संस्कृति के प्रतिनिधि रचनाकारः रामादादा

डॉ. अखिलेश बाचे

रामा दादा को याद करते ही मानस पटल पर उभरती है एक तस्वीर जो मन में न केवल सम्मान अपितु श्रध्दा का भाव पैदा करती है। लगभग 5 फीट 4 इंच का कद, सादे धोती कुर्ते वाला साधी लिबास, श्वेत केश, तपस्वी मुख मंडल। वे सादगी एवं सरलता का मूर्त रूप थे। देश के विभिन्न स्थानों का भ्रमण उनका शौक था। सबसे मिलना और सबको अपना बना लेना उनकी खूबी थी। निमाड में बड़े बुजुर्ग को 'दादा' कहने का प्रचलन है। प्रपिता को तो दादा कहते ही है, नाना को भी मामा-दादा कहते हैं। खरगोन और बड़वानी जिलों में ताऊजी को भी दादा कहते हैं। वैसे बंगाल में बड़े भाई को भी दादा कहकर संबोधित करते हैं। खैर, वे सचमुच दादा थे, वडील थे। एक रचनाकार के रूप में मैं उन्हे 1968 से जानता था, उनकी रचनाओं को पढता था। लेकिन प्रथमतः उनके दर्शन हुए 1975 में, एक सामाजिक कार्यक्रम में। आठ-दस वरिष्ठ लोगों के बीच ध्यानाकर्षण का केन्द्र बने दादा जोरों से ठहाका मारकर हंसते हुए दिखे। मैने उन्हे चरण स्पर्श करते हुए अपना परिचय दिया तो वे ऐसे मिले जैसे मुझे बरसों से जानते हों। मैं प्रफुल्लित हो गया कि एक प्रसिद्ध लेखक व समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति से मेरी मुलाकात हुई। उन्हें देखकर मन में अपने परिवार के ही किसी बुजुर्ग से मिलने का भाव पैदा होता था ।

1980 मे वे मध्यप्रदेश लोक साहित्य परिषद के उपाध्यक्ष बने। मैंने उन्हें बधाई पत्र लिखा तो सुखद आश्चर्य कि उनका पत्रोतर मिला। यह शुरूआत थी उनसे पत्र व्यवहार की। दिसंबर 1986 में, जब मैं शासकीय महाविद्यालय मंडलेश्वर में पदस्थ था, उनको आमंत्रित करने का योग बना। एक ही दिन में दो आयोजन थे पहला एक साहित्यिक संस्था में व्याख्यान और दूसरा नार्मदीय ब्राह्मण धर्मशाला मंडलेश्वर में सामाजिक उद्बोधन। दोनो ही कार्यक्रमों में दादा को आद्योपान्त, मंत्रमुग्ध होकर सुना। बोलते समय उनकी आंखें, होंठ, जिव्हा और चेहरे की मांस पेशियाँ सब अभिव्यक्ति का जीवन्त माध्यम बन जाते थे। उनकी मुख मुद्रा क्षण-क्षण बदलती नजर आती थी। थोड़ा झुककर खड़े हुए दादा कभी पीछे पीठ पर हाथ बाँधते, तो कभी अपने कथन को हाथों की भाषा (जेस्चर्स) से समझाते, और इन सब का साथ दे रहे होते उनके कपोल और कपाल ।

गंभीर बात करते-करते उनका चिंतक चेहरा कब हंसी की फुलझड़ी छोड़कर चुहल करने लग जाता, पता ही नहीं चलता। श्रोता यंत्रचालित से

उनकी मुद्राओं को पकड़ने की नाकाम कोशिश करते नजर आते । धर्म को समाज से जोड़ने और कला को कृतित्व से मिलाने की अदभूत क्षमता थी उनमें। ज। निमाड़ अंचल में उनसे पहले संत, अभिनेता, गायक, समाजसेवी, शिक्षाविद्ध, लोक कलाकार, और राजनेता भले ही हुए हों, निमाड़ की लोकसंस्कृति, लोक भाषा और लोककला को सर्वप्रथम पूरे देश में पहुंचाने और उसकी अस्मिता का महत्व स्थापित करने का श्रेय यदि किसी को जाता है तो वे थे दादा रामनारायण उपाध्याय।

देखा गया है, कि बहुत सारे अच्छे लेखक प्रभावशाली वक्ता नहीं होते, तथा मंच पर छा जाने वाले प्रखरवक्ता कागज के मैदान पर खेत रहते हैं। परन्तु दादा उन विशिष्ट लोगों में थे जो लेखक और वक्ता दोनों रूपों में बांधने की क्षमता रखते हैं।। जिस तरह कोई अच्छा शायर मात्र दो पंक्तियों के एक शेर में जिंदगी के किसी जज्बे या फ़लसफे को व्यक्त करने की क्षमता रखता है, दादा की छोटी-छोटी रचनाएँ भी वैसा असर पैदा करती थी। वह रचना जिसमें हर महान व्यक्ति के अंदर छुपी पीड़ा का आभास मिलता है और जो हर पाठक को छू जाती है, देखिये उनकी वह लघु रचना

आभास -

अगर कहीं-पर्वत है तो निश्चित मानिये आस-पास कहीं नदी भी होगी। बिना हृदय में गहरा दर्द संजोये, कोई इतना ऊँचा उठ नहीं सकता।

संपर्क : 5/2 नर्मदानगर कॉलोनी खरगोन (म.प्र.)
मोबा. 99771.12721 फोन नं. 07282-241260

संस्मरण

राम में बसे नारायण

हरेराम वाजपेयी

यूं तो मैं इन्दौर 1957 में आया, यहीं पला बढ़ा, नौकरी शुरु की..... फिर बैंक सेवा में रहते 1986 में जब मण्डल कार्यालय इंदौर में बतौर हिन्दी अधिकारी पदस्थ हुआ और अवसर आया शाखा निरीक्षण का जिसमें एक थी (है) कालमुखी जिला खण्डवा.... ठेठ ग्रामीण क्षेत्र कालमुखी नदी के किनारे बसा छोटा सा गाँव...... किसी तरह पहुँचा गाँव देखा- ऐसे सुदूर देहाती क्षेत्र में यूको बैंक की शाखा क्यों? कुछ दिन बाद सांकल शाखा गया, सालीचौका से पैदल चलकर... उससे भी गया बीता क्षेत्र, मुझे अपना गाँव याद आ गया (सरिगवां जिला कानपुर) जिज्ञासा दोनों गांवों में यूको बैंक होने की. अंततः पता चला कि

1. कालमुखी यह वहीं गाँव है जहाँ निमाड़ की माटी का राम पैदा हुआ, जिसे पं. रामनारायण उपाध्याय के नाम से जाना जाता है। दादा 20.05.1918 में यहीं जन्मे थे.... राम की तरह और अपनी माटी, भाषा, देश, संस्कारों के प्रति समर्पित खादी की धोती कुर्ता पहनने वाले राम में जनकल्याण का नारायण समागया और रामनारायण उपाध्याय दादा रामनारायण हो गए। स्वतंत्रता के बाद उन्हें पद्मश्री सम्मान से भारत सरकार ने सम्मानित किया। दादा वह पहले व्यक्ति थे निमाड़ की माटी से जिसे पद्मश्री सम्मान दिया गया था। (अब उसी माटी से दूसरे. श्री जगदीश जोशीला गोगावा को दिया जाएगा..) फिर दादा गाँव से खण्डवा शहर के एक कोने में बस गए, जहाँ पं. माखनलाल चतुर्वेदी भारतीय आत्मा ने देश की आजादी का बिगुल बजा रखा था...... मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर तुमदेना, फैक दादा ने अद्भुत साहित्य सृजा। 15 नवम्बर 1994 को पं. रामचन्द्र शुक्ल दादा को एक पत्र लिखते है शीर्षक है जैसे सीप में आकाश भर दिया कृति अक्षत का सम्पादन डॉ. श्रीराम परिहार ने किया, इसकी एक प्रति दादा ने वीणा के सम्पादक डॉ. श्यामसुन्दर व्यास को भेंट की। उनकी लेखनी व हस्ताक्षर संलग्न । मैंने कभी सान्निध्य पाया या नहीं, याद नहीं आ रहा है। प्रसंग पर खण्डवा के ब्राह्मणपुरी साहित्य कुटीर में साहित्यकार मित्रों के साथ गया, उनकी जन्मशती पर कालमुखी गाँव में 2018 में आयोजित कार्यक्रम में गया और श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति में उनके निर्माण दिवस पर समिति सभागार में उनके चित्र को स्थापित किया गया जिसमें ललित निबन्धकार श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय शामिल हुए का संचालन किया। इस उत्सव पर दादा की संदर्भ में कई साहित्यकारों ने अपने विचार व्यक्त किये थे।

बाएं से शिशिर उपाध्याय , प्रदीप नवीन ,प्रभु त्रिवेदी , हरेराम बाजपेयी"आश" अरविंद ओझा ,नंदकिशोर वर्मा

उनकी एक कृति जाने अनजाने 1953 में प्रकाशित का मूल्य 2/-रु. है जबकि गवईमन और गाँव की यादे का मूल्य 50/- रु. है। उनके अमूल्य साहित्य की क्या चर्चा करें, मैं तो भाग्यशाली स्वयं को मानता हूँ कि उनकी जन्मभूमि को प्रणाम कर सका और हमारी बैंक ने उन्हें सम्मान देने के लिए कालमुखी में शाखा खोलकर संभवत उनके हाथों से ही खोली गई होगी ग्राम्य जीवन की सेवा की। उनकी भावनाओं को सम्मान दिया। इसी तरह सांकल शाखा का सम्मान भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी की जन्मस्थली होने से बैंक ने सम्मान दिया।

कहने को बहुत कुछ है उनकी कुछ किताबें मेरे सामने है पर मैंने जो समझा उसका सारांश यही है कि राम में नारायण समा गए इसीलिए वह रामनारायण कहलाएं।, दादा को, प्रणाम मेरी ओर से हमारी यूको बैंक की ओर से अपनी बात दादा के शब्दों में ...

'सब कुछ लिखने के लिए ही नहीं होता कुछ
सहने और भोगने के लिए भी होता है
जो कुछ मैंने भोगा है
उसे भी लिख दिया है,, ।
भोगने का सुख
मन के मृग छौने से, ।'

संपर्क : 105, इंदिरागांधी नगर,
केसर बाग रोड, इन्दौर-452009, (म.प्र.)
मो. 9229466225

संस्मरण

लोक के आलोक : दादा रामनारायण उपाध्याय

सुरेश पटेल

अब तक मैं जिन बड़ी विभूतियों से मिला हूँ, उनसे मिलकर कभी यह आभास नहीं हुआ कि वे इतनी महान हस्तियाँ हैं। वे इतने सरल, सहज और सहृदय होते हैं कि उनके व्यक्तित्व का विराटत्व कभी बोझिल नहीं लगता। ऐसा ही अनुभव मुझे पद्मश्री विभूषित रामनारायण उपाध्याय से मिलने पर हुआ।

मेरे मन में बड़े साहित्यकारों को लेकर यह धारणा थी कि उनसे मिलना या बातचीत करना बहुत कठिन होगा, पर दादा से मिलकर यह भ्रम टूट गया।

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी द्वारा खंडवा में 4 अप्रैल 1989 से 9 अप्रैल 1989 तक राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी की जन्मशती का समारोह आयोजित किया गया था। इस आयोजन में डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, प्रभाष जोशी, अशोक वाजपेयी, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', जगदीश गुप्त, नागार्जुन, तत्कालीन विधानसभा अध्यक्ष राजेन्द्र शुक्ल समेत अनेक गणमान्य अतिथि उपस्थित थे।

उद्घाटन समारोह के पश्चात मंच से उतरते हुए मैंने नागार्जुन जी को देखा, जो अपने पुराने लाल गमछे में 'जमुनिया के बाबा' और एक कविता-संग्रह लपेटे हुए धीरे-धीरे नीचे उतर रहे थे। दादा ने दौड़कर उनका हाथ थामा, सहारा दिया और उन्हें भोजन-स्थल तक ले गए। यहीं मैंने पहली बार उन्हें देखा।

मैं उस समय भारतीय कपास निगम, पंधाना में कार्यरत था और खंडवा में ही निवास करता था। लोक साहित्य में मेरी विशेष रुचि रही है, इसलिए यह अवसर मेरे लिए अनमोल था कि लोक के चितेरे दादा से मिलूँ, कुछ सीखूँ।

इस आयोजन में मैं और डॉ. शहजाद कुरैशी, सुमन जी, नागार्जुन जी और प्रभाष जी से मिले। उनके साथ भोजन किया, लंबी बातें कीं — पर दुर्भाग्यवश दादा से भेंट नहीं हो पाई। हालांकि, हर सभा में उनके ओजस्वी और प्रेरक वक्तव्य सुनने को मिले, जिनमें व्यंग्य की धार और सच्चाई की चमक होती थी।

इसी आयोजन के दौरान प्रभाष जी ने दादा को व्यक्तिगत रूप से बताया कि उन्होंने माखनलाल जी पर एक संपादकीय लिखा है जिसमें पूछा गया था — क्या राजनीति भूल गई है कि स्वतंत्रता संग्राम में

माखनलाल जी की भूमिका क्या थी? इसके बाद कांग्रेस के कोषाध्यक्ष सीताराम केसरी का फोन आया कि खंडवा में एक भव्य आयोजन किया जाएगा। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति सभी आएँगे, कोई बड़ी घोषणा भी होगी।

29 जून 1989 को खंडवा में ऐतिहासिक आयोजन हुआ जिसमें प्रधानमंत्री राजीव गांधी, सोनिया गांधी, मुख्यमंत्री मोतीलाल वोरा, धर्मवीर भारती, राजकुमारी बाजपेयी मंचासीन थे। मंच पर दादा ने प्रधानमंत्री के साथ बैठकर निमाड़ की आत्मा की आवाज को स्वर दिया। उसी मंच से यह घोषणा हुई कि माखनलाल चतुर्वेदी के नाम पर एक विश्वविद्यालय खोला जाएगा।

दादा और निमाड़ की जनता चाहते थे कि यह विश्वविद्यालय खंडवा में ही स्थापित हो। लेकिन न जाने किन कारणों से यह विश्वविद्यालय अंततः भोपाल में खुला। इस बात का दादा को हमेशा खेद रहा। हालांकि बाद में जब खंडवा और निमाड़ में सी.वी. रमन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, तो शायद इसने दादा की आत्मा को कुछ शांति दी होगी।

जुलाई 1989 की एक सुबह मैंने तय किया कि अब तो दादा से मिलकर ही रहूँगा। जैसे ही बड़ा बम्ब चौराहा पहुँचा, देखा — गौरवर्ण, ठिगना कद, खादी की कुर्ता-धोती, काले धागे से बँधा चश्मा, चेहरे पर तेज और प्रसन्नता लिए दादा पैदल चले जा रहे थे। मैंने हिम्मत करके उन्हें रोका, चरणस्पर्श किया और नाम बताया। बोले, 'अभी कहीं जा रहा हूँ, घर आना!' और फिर एक स्नेहिल मुस्कान के साथ कहा, 'जरूर आना।'

संपर्क : कबीर अध्येता एवं सामाजिक कार्यकर्ता,
इंदौर में निवास 94253 26565

संस्मरण

उनका हर सान्निध्य एक संस्मरण है

मणिमोहन चवरे

आशीर्वाद लेने और 'दादा' को अवगत कराने गया था कि, प्रशिक्षण की अवधि पूरी हो चुकी है और अब मेरी पोस्टिंग वायुसेना स्टेशन यलहंका, बेंगलोर में हो गई है। साथ ही उन्हें, अपनी पहली पुस्तक, म्हारो देस निमाड़ की पांडुलिपि भी देनी थी, भूमिका लिखवाने हेतु। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा और बोले-परसो हमारे साथ मंडलेश्वर चलना है। कार्यक्रम लंबा चलेगा, वहाँ रात रुकना श्री पड़ेगा। एक जोड़ी कपड़े और कविताओं की डायरी साथ लेते आना भाई।

उनका प्रिय सम्बोधन भाई, उम्र के गणित को हाशिए पररखते हुए, सीधे स्नेह-संबंध जोड लेता था. और उनकी उन्मुक्त हँसी, किसी अकूत संपदा से कम न थी। आज भी, जब कभी द्विवेदी युगीन लब्ध साहित्यकार, श्रीनाथ सिंह की कालजयी कविता के शब्द, फूलों से नित हँसना सीखो.... गुंतारे में आते हैं लो. मौराए विशाल आम-वृक्ष की भूमिका में. रामा दादा का हँसता खिलखिलाता चेहरा, एक नई प्रेरणा, एक नई ऊर्जा दे जाता है।

धुंधलकी सी स्मृति है। वाकया संभवत: 56-57 साल पहले का रहा होगा। हम लोग देर शाम तक मंडलेश्वर पहुँचे। निमाड़ लोक साहित्य परिषद का अधिवेशन था। पहली बार इतने सारे साहित्यकारों से मिलकर मैं तो धन्य हुआ जा रहा था। मेल-मुलाकात, चर्चाओं का दौर, देर रात तक चलता रहा। सबसे कम उम्र के, मुझ, किशोर प्रतिभागी के लिए परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती जा रही थी। मुझे बुखार चढ़ने लगा। दादा ने मुझे कुछ दवाई-गोली दिलाई मैं सो गया।

सुबह जब नींद खुली तो पता चला कि रात, निमाड़ी कवि-गोष्ठी में, दादा (पद्मश्री पं. रामनारायण उपाध्याय) ने मंचासीन रचनाकारों को, मेरी कलमकारी की जानकारी देते हुए, मेरी डायरी में से एक कविता, नाँगरु वखरु न: गोखरू के काव्यांश पढ़कर सुनाए; साथ ही श्रद्धेय गौरीश जी से भी मेरी एक रचना, बैंधड़ को पोर्यें पढ़वाई।

एक छोटे-शब्दकार का ऐसा उत्साह-वर्धन! तो बस 'रामादादा' जैसा कोई विरल साहित्यकार ही कर सकता था।

सम्पर्क : पूणे (महाराष्ट्र)
मो. 09850980334

दादा रामनारायण उपाध्याय एक युग पुरुष

सुरेंद्र गीते

नार्मदीय समाज के गौरव, जिन्हें सब प्यार से दादा संबोधित करते थे और आज भी करते हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे । दादा के बारे में तो वैसे पहले ही कई विद्वत जन अपनी लेखनी से उनके व्यक्तित्व को अंकित कर चुके है। दादा से मेरा परिचय खंडवा में दादा के गृह निवास के पास ही था, उस समय मैं अध्ययनरत था, अक्सर, दादा की निमाडी रचनाओं की चर्चा स्कूल, कॉलेज में होती रहती थी । दादा एक छोटे से गांव कालमुखी से खंडवा आए, आपके पहनावे धोती, कुर्ता की छवि आज भी उनके नाम की चर्चा होने पर ही स्मरण हो आती है। सरल, सीधे, तथा हास्यमुक्त चेहरा आज भी स्मरण हो आता है। वैसे तो दादा ने निमाडी रचनाएं कर उनकी लिखी कई पुस्तकें पुरस्कृत हुई है, इसके अतिरिक्त उनकी लेखनी की विशेषता रहती थी कि वे अपनी बात व्यंग्य में रखते थे पर उसमें सुधार करने का एक संदेश भी छुपा रहता था, इसकी पुष्टि उनके द्वारा एक समारोह में कही गई बात से होती है कि एक राजा ने अपने राज्य में नाव प्रतियोगिता रखी जिसमें कई नाविकों के साथ राजा की ओर से एक विशाल नाव जिसमें कई मल्लाह रखे गए उतारी गई, नियत समय पर इस तट से उस तट तक जाने के लिए सिग्नल दिया गया, जब सब नावे उस तट पर पहुंची तब सबसे पहले पहुंची नाविक को सम्मानित किया गया, पर राजा की नाव इसी तट पर ही रही, इसका कारण जन मल्लाहों से पूछा तो उन्होंने कहा के महाराज हम सभी एक सौ मल्लाहों ने अपनी जान लगा कर पतवारें चलाई पर हमारी नाव इस तट से टस से मस नहीं हुई इस पर राजा ने जांच करवाई, जांच करने पर पता चला कि राजा की नाव खूंटे से ही नहीं खोली गई थी। इस तरह का यह व्यंग्य सरकार के प्रति था। पर सरकार ने उस समय अपनी आलोचना न समझ सरकारी नीतियों में सुधार किया। ऐसे हमारे दादा को केंद्र सरकार से पद्मश्री की उपाधि से सम्मानित किया ।

आज भी दादा की यादें है सब के दिलों में बसी है, पर एक टीस पूरे भारत में दादा प्रेमियों के मन में है कि कब मध्यप्रदेश सरकार दादा की मूर्ति खंडवा में स्थापित कर अपनी आदरांजलि प्रस्तुत करेगी ।

संपर्क : 72 सुधा कुंज, रामेश्वर नगर कॉलोनी, खंडवा
मोबा. 9424018649

संस्मरण

पं. रामनारायण उपाध्याय की लघुकथाएँ

बलराम अग्रवाल

पं. रामनारायण उपाध्याय का जन्म 20 मई 1918 को खंडवा जिले के एक गाँव कालमुखी में हुआ था। वे निमाड़ की संस्कृति-उर्वरा भूमि के तपस्वी रचनाकार रहे हैं। उन्होंने लोक में फैली विराट सांस्कृतिक सम्पदा के संरक्षण और उसके विकास में अपने जीवन को होम दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनको याद करते हुए एक बार कहा था, कि-'सच तो यह है कि (पं. रामनारायण उपाध्याय जैसी लोक सम्बन्धी) सूझ और ताजगी का धनी वही हो सकता है, जिसने धरती की माटी को चूमा हो, प्रकृति की गोदी में खेला हो, लोकगंगा में नहाया हो और खुले आसमान में मँडराया हो।'

उपाध्याय जी के सात व्यंग्य संग्रह हैं-बक्शीशनामा, धुँधले काँच की दीवार, नाक का सवाल, मुस्कराती फाइलें, गँवईं मन और गाँव की याद, दूसरा सूरज, और नया पंचतंत्र। उन्होंने लोकसाहित्य भी खूब लिखा है तथा कथाओं की अन्तर्कथा, चिट्ठी और मामूली आदमी भी उनकी उल्लेखनीय कृतियों हैं। इन सबमें उनकी कुछ ऐसी रचनाएँ शामिल हैं जिन्हें 'लघुकथा' के रूप में चिह्नित किया जाता है। ये लघुकथाएँ मुख्यत: उनके संग्रह 'नया पंचतंत्र' में संकलित हैं।

'नया पंचतंत्र' की भूमिका स्वरूप लिखित 'कृति परिचय' की शुरुआत डॉ. रामशंकर मिश्र ने यो की है- 'नया पंचतंत्र' पढ़ते-पढ़ते हिन्दी व्यंग्य के विषय-विधान तथा रचना-प्रक्रिया के बदलते हुए प्रतिमानों का एक लम्बा-सा क्रम दृष्टिगत होने लगा है। लेकिन इसी भूमिका में उन्होंने एक अन्य बात भी कही है, जिसे डॉ. शकुन्तला किरण ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी लघुकथा' में रेखांकित किया है। वो यह, कि- खलील जिब्रान का लघुकथात्मक रूप भी रचना के सीमित रूप की दृष्टि से उल्लेखनीय है। 'नया पंचतंत्र' में उपाध्याय जी ने कथा के संक्षिप्त रूप का चयन करते हुए विषय के विस्तार को एक नये रूप में अंकित किया है। इस कृति में विपय, शिल्प और भाषा का एक नया जीवन्त रूप परिलक्षित है। इसी भूमिका से डॉ. मिश्र ने यह भी रेखांकित किया है कि 'समाज और राजनीति के प्रहरी सेवा-लीक का त्याग कर आत्मकेंन्द्रित हो चले हैं, इस सत्य के उद्घाटन के लिए उपाध्याय जी ने अनेक लघु-कथाओं की सर्जना की है।' लेकिन इन शब्दों में भी उनका तात्पर्य व्यंग्य ही रहा है, जिसे आगे वह यों स्पष्ट करते हैं- 'यह वास्तव में उनके कथा-विन्यास की बहुत बड़ी विशेषता है। शिल्प की इस विशिष्टता के कारण श्री उपाध्याय की व्यंग्य-कृति को अन्य व्यंग्य-लेखकों की कृतियों से भिन्न रखा जा सकता है।' मैं पूरे सम्मान और आदर के साथ यह कहने की स्थिति में हूँ कि 'नया पंचतंत्र' की भूमिका लिखते हुए डॉ. मिश्र लगातार लघु-कथा और व्यंग्य के बीच दोलन करते रहे हैं। इसमें उनकी कोई गलती नहीं। कुछ रचनाओं में नि:संदेह यह विशेषता होती है कि वे अपनी निकटवर्ती विधा की चौखट पर खड़ी मिलती हैं। आलोचक के लिए विधापरक किसी एक मानदंड पर उन्हें परखना मुश्किल, लगभग असम्भव हो जाता है। 'नया पंचतंत्र' की कुछ रचनाओं ने यह चुनौती, यह मुश्किल डॉ. मिश्र के सामने पेश किए रखी है।

'नया पंचतंत्र' की जिन रचनाओं को लघु आकारीय कथा के रूप में आज तक छापा गया है, वे हैं- अंगूर, लोमड़ी और लड़की; पुराना सौदागर और नये बन्दर; पुराने टोटके नया फल; पुराणपंथी कछुआ और प्रगतिशील खरगोश, पुरानी लोमड़ी नया कौआ ऊँट-सियार न्याय: दक्षिणा: मॉडर्न शकुन्तला; स्वराज्य की बेटी और मँहगाई का धनुष: भ्रष्टाचार के राक्षस और राजा दशरथ के दो बेटे; जल-प्रदाय योजना के महाशय नल और प्राचार्या दमयन्ती; आधुनिक श्रवण, गुरुभक्ति: वरदान; भक्तों की प्रार्थना; कैंट और पहाड़, राजा कौन हाथी या सिंह: ऊँट और कुर्सी; पुरानी सन्धि नया अर्थ; नया समाजवाद: सहानुभूति; खोज में; गरीबी; योजनावादी लोग: प्रजातन्त्र में न्याय, छुटकारा: टिकट का अधिकारी कौन: कागज का कुआँ; समझदार आदमी का जन्म; मन मछली और आँखें। बहुत सम्भव है कि इन 30 के अतिरिक्त भी कुछ अन्य कथा-रचनाएँ नया पंचतंत्र में या उनकी किसी अन्य पुस्तक में मिल जाएँ। यहाँ बहरहाल, इन 30 पर ही विचार रखेंगे।

इनमें 'मन, मछली और आँखें' एक ऐसी कथा है जिसके बारे में मुझे आश्चर्य है कि इसका नोटिस अभी तक क्यों नहीं लिया गया? इस कथा में रूपक भी है, प्रतीक भी और दर्शन भी। इस कथा में लोक का रस रचा-बसा है। यह एक युवती की निर्मल स्वच्छंदता की कथा है जिसे व्यक्त कर पाना हरेक के वश की बात नहीं है। रामनारायण जी की रचनाओं में हमें विशुद्ध ग्राम्य संस्कृति के दर्शन होते हैं। 'नया पंचतंत्र' का प्रकाशन 1974 में हुआ था। इसमें संकलित रचनाओं का रचनाकाल निश्चित ही स्वातंर्त्योत्तर रहा होगा। ऐसा इसमें संग्रहीत रचनाओं में चित्रित राजनेताओं के चरित्र के आधार पर कहा जा सकता है। 'कागज का कुआँ' स्वातंर्त्योत्तर भारत में राजनीतिक गिरावट का यथार्थ है तो 'टिकट का अधिकारी कौन' में देश के वेतनभोगी कर्मचारी के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम सेनानियों और सच्चे समाजसेवियों की दैहिक और आर्थिक स्थिति का भी यथार्थ अंकन किया गया है।

'छुटकारा' पर गत दिनों फेसबुक समूह 'लघुकथा साहित्य' पर लम्बी चर्चा चल चुकी है। राजेश उत्साही को वहाँ प्रस्तुत पाठ की मौलिकता

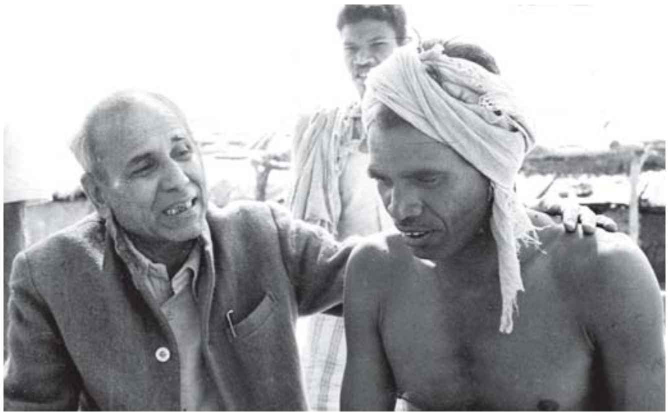

पर संदेह था। यह रचना लखनऊ से 1974 में ही प्रकाशित होने वाली 'लघुकथा चौमासिक' में पहले अंक में पहले छपी थी या इस संग्रह में? यह हमेशा रहस्य और शोध का विषय ही बना रहेगा शायद। लेकिन, इस रचना का आधार एक प्राचीन लोककथा है, यह निर्विवाद है। 'प्रजातन्त्र में न्याय' पंचतंत्र की एक कथा का पुनर्लेखन है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि साहित्य में पूर्व-प्रचलित कथाओं को नये संदर्भों के साथ लिखने को मौलिक ही माना जाता रहा है। एक बात और स्पष्ट कर दूँ, उपाध्याय जी की जिन कथाओं पर यहाँ लघुकथापरक आकलन प्रस्तुत है, वे विचारपरक व्यंग्याधित कथाएँ हैं। वे पाठक को 'कुछ' नहीं, 'बहुत कुछ' सोचने को विवश करती हैं। वे अपने समय के राजनेताओं और विचारक बने बैठे लोगों का चारित्रिक यथार्थ हमारे सामने रखती हैं। इसी के मद्देनजर डॉ. मिश्र ने लिखा है- 'वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था पर रचनाकार का व्यंग्य अधिक प्रखर तथा आंदोलित कर देने वाला है।' 'गरीबी' को लोक-शैली में लिखा गया है और तय पाया गया है कि राजनीतिक कौशल गोलमोल बात करने का नाम है। 'खोज में' को पढ़कर मुझे गाजियाबाद निवासी एक मित्र, गजलकार व्रज अभिलापी याद आ गये। 1988 की बात है। वे एक दिन मिले तो पूछने लगे- बलराम, यह बताओ कि सृष्टि में सबसे ज्यादा चालू कौन है?
मैंने कुछ देर सोचा, फिर कहा- पता नहीं।
मैं बताऊँ? उन्होंने पूछा।
बताओ।

ईश्वर! उन्होंने कहा और आगे बोले-वंदे ने हजार, दस हजार साल तपस्या की कुछ माँगने के लिए। इसने दर्शन दिए और उसकी वृद्धि घुमा दी। घुमाकर कहा- माँगो वत्स, क्या चाहिए? घूमी हुई बुद्धिवाले वत्स ने कहा- आपके दर्शन हो गये भगवन्, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। बताइए, अगले के मुँह से कुछ नहीं चाहिए सुनने के लिए उसके दस हजार माल बरबाद करा दिये उस भगवान ने। मेरे भाई, कुछ नहीं माँगने से पहले भी तू फक्कड़ था, अब भी फक्कड़ रह गया। है न कमाल की बात।

एकदम यही किस्सा उपाध्याय जी लिखित खोज में का भी है। सहानुभूति भी एक लोककथा का ही पुनर्लेखन है। इस लघुकथा की विशेष बात यह है, कि कर्जदार किसान रात के अंधेरे में प्रवेश करता है और हाथों से टटोलने पर यह पाकर चौंकता है कि भगवान की मूर्ति निर्वस्त्र है। इस एक ही आभास से सिद्ध होता है कि वह अस्पृश्य जाति का रहा होगा। स्पृश्य जाति से होता तो उसने कभी न कभी दिन के प्रकाश में भी मूर्ति को अवश्य देखा होता, वह चौंकता नहीं; और वह अगर चौंकता नहीं तो कथा में वह ट्विस्ट न पैदा होता, जो अब हुआ है। सामान्य श्रेणी का व्यक्ति दिन में मंदिर जाए या रात में, कथा क्रिएट नहीं करता। नया समाजवाद धनाढ्य और शक्तिशाली वर्ग द्वारा समाजवाद का अपने हित में दुरुपयोग करने की बेहतरीन कथा है। नया समाजवाद, पुरानी संधि नया अर्थ, पुराना सौदागर और नये बन्दर, पुराने टोटके नया फल या इन जैसी वे सभी कथाएँ जिनके शीर्षक में नया शब्द जुड़ा है, उपाध्याय जी द्वारा अपनी दृष्टि के अनुरूप पुनर्लिखित होने की स्वत: ही घोषणा कर रही हैं। पुरानी संधि नया अर्थ के माध्यम से बताया गया है कि मित्र बनाते समय उक्त व्यक्ति के और अपने परिवेश का ध्यान रखना भी उतना ही जरूरी होता है, जितना शक्ति के संतुलन का। भारतीय समाज में पौराणिक पात्रों के नाम का प्रयोग बहुतायत में पाया जाता है। 1970 के आसपास राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में कार्यरत अधिसंख्य लोगों के चारित्रिक विचलन को अनेक कथाकारों ने पौराणिक नामों के प्रयोग के माध्यम से अंकित किया। कथा पत्रिका 'सारिका' के संपादक कमलेश्वर ने कालखंड-विशेष मेंक, इस शैली में लिखी गयी कथाओं/कथा-पैरोडियों को खूब प्रश्रय दिया। रामनारायण उपाध्याय जी रचित अनेक कथाएँ उस कालखंड का इतिहास बनती हैं। प्रस्तुत रचनाओं में मॉडर्न शकुन्तला, स्वराज्य की बेटी और मँहगाई का धनुप, भ्रष्टाचार के राक्षस और राजा दशरथ के दो बेटे, जल-प्रदाय योजना के महाशय नल और प्राचार्या दमयन्ती, आधुनिक श्रवण आदि ऐसी ही कथाएँ हैं जिनका मुख्य उद्देश्य यही बताना है कि समाज में चारित्रिक गिरावट का ग्राफ कितना नीचे आ चुका है।

बहुत-से नवागत और अनेक पूर्वागत भी, लघुकथा में कथ्य और कथानक के मध्य अंतर को समझ नहीं पाते हैं। प्रत्येक कथा-रचना में कथ्य ही प्रमुख हुआ करता है, वह कथा की आत्मा है जिसे कथाकार अपने दायित्वों और सरोकारों से प्रकाशमान करता है। कथानक उसकी देह है। सरोकारविहीन देहें चलना-फिरना, खाना-सोना, मैथुन और पुनरुत्पत्ति, तात्पर्य यह कि वो सारे काम किया करती हैं जो सरोकारयुक्त देहें किया करती हैं। लेकिन सरोकार-विहीन देहें। ते मर्त्यलोके भुविभार भूता यानी साहित्य के पन्नों पर वे बोझ और लघुकथा-जगत में भीड़ ही अधिक सावित होती हैं, सार्थकता सिद्ध करती हुई अलग चिह्नित नहीं हो पातीं। मानवीय सरोकारों से युक्त कथ्यों की प्रस्तुति के क्रम में कुछेक स्थूल तथ्यों से विचलित होने का अधिकार पाठक और आलोचक प्रारम्भ से ही कथाकार को देते आये हैं। पंचतंत्र की कथाओं से लेकर शरदचन्द्र लिखित 'महेश' तथा प्रेमचंद लिखित 'दो बैलों की कथा' और वर्तमान युग में लिखित अनेक लघुकथाएँ इसका प्रमाण हैं; तथापि उचित यही है कि कथानक को तथ्यपरक रहना चाहिए।

सम्पर्क : एफ-1703, आर. जी. रेजीडेंसी, सेक्टर 120,
नोएडा-2201301 (उ.प्र.) मोबाइल: 8826499115

■

संस्मरण

दादा रामनारायण उपाध्याय ऐसे ही थे

प्रो. शहजाद कुरैशी

गाँव और गांधी– ये दो मेरे लंग्ज है। गाँव में मुझे गांधी मिला और गांधी से मुझे गाँव को समझने की दृष्टि मिली। गाँव में ही मुझे लोकसाहित्य की अजस्त्र रसधारा मिली। इस रसधारा ने मुझे हिंदी साहित्य से जोडा। जहाँ ये दो नहीं वहां रामनारायण नहीं।

ये शब्द हैं गांधीयुग के वरिष्ठ साहित्यकार रामनारायण उपाध्याय के। वह निमाड़ और साहित्य के पर्याय बन चुके है। खंडवा की ब्राह्मणपुरी में स्थित साहित्य कुटीर और निमाड लोक संस्कृति न्यास आज भी उनकी उपस्थिति और जीवंतता के हस्ताक्षर हैं।

आप सुबह, दोपहर, शाम किसी भी समय साहित्य कुटीर में पहुंच जाइये, एक छरहरे बदन का गेहुँए रंगवाला आदमी सफेद झक्क खादी की धोती और आधी आस्तीन का कुरता पहने, तख्त पर बैठकर कुछ न कुछ लिखता मिलेगा। गले में रेशमी डोर से बँधा लटकता हुआ चश्मा उसकी पहचान बन चुकी है। आगंतुक को देखकर उसके चेहरे पर हंसी खिल उठेगी और वह कागज पत्रो को समटते हुए, लपक कर आपका स्वागत करेगा यदि आप कहे अपना लिखना तो पूरा कर लीजिए तो वह ठहाका लगा कर कहेगा वह तो जीवन के अंतिम क्षण तक पीछा नहीं छोडेगा। किसी से मिलने में मेरे लिखने का लिंक नहीं टुटता लेकिन अगर आदमी का लिंक टूट जाये तो वह फिर जुडा नहीं करता। फिर वह इस कदर बतियाने लगेंगे जहाँ छोटे बडे की सारी दिवारे टूट कर सरल मानवता का समुद्र गहराने लगता है। उनसे मिलकर सहसा आपको विश्वास नही होगा कि यह दुबला पतला सा व्यक्ति अपनी चौहत्तर वर्षीय आयु में भी साहित्य की और लोक की विविध विधाए सँवारते अपने लेखन के पचास वर्ष याने आधी शताब्दी पार कर चुका है।

ऐसे निरपेक्ष व्यक्तित्व को प्रस्तुत करना और भी जोखिम भरा काम हो जाता है तब जबकि वह अपने आप को पहले ही खुली खिताब के रूप में प्रस्तुत कर चुका है जिसमे इतना कुछ हो चुकने के बावजुद विनम्र भावना भरी हुई है जो अपने कृतित्व को भी पीछे छोडता हुआ दो टुक शैली में हर एक से बतियाने को परम उत्सुक है।

कल्पना कीजिए जब देश की प्रत्येक गतिविधि का केन्द्र महात्मा गांधी थे जब भारत का हर विचार पूर्व से उदय होने वाले सूर्य की तरह 'सेवाग्राम' से उठता और समुचे देश मे छा जाता। ऐसे युग को अपने संस्मरण में मामने की अदभुत क्षमता दादा रामनारायण उपाध्याय मे रही उनका व्यक्तित्व चित्रण श्रद्धावनत मन के भव सागर में आकण्ठ डूबे हुए किसी प्रार्थना पुरूष के मंत्रो उपचार की भांति वेद भाषा मे रची गयी गीतांजलियो की तरह है उनमे भारतीय सांस्कृतिक, साहित्यिक और कलात्मक फलक को आलोकिक करने वाले शरदचंद्र, रविन्द्रनाथ टैगौर प्रेमचंद्र महादेवी पंत निराला माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल जी, हजारी प्रसाद द्विवेदी और वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे अनेक व्यक्तित्व है तो दूसरी और उनकी यात्रा के सहचर भवानी भाई विष्णु प्रभाकर विद्यानिवास मिश्र, परसाईजी, कुबेरनाथ राय, धमेन्द्र भारती सहित अनेक के व्यक्तिगत आत्म संबंधो की श्रृंखला है।

दादा ने न तो कभी लेखक होने का दावा किया और न कभी यह माना कि वह साहित्य साधना जैसा कोई महान कार्य कर रहे है उनका मानना है लिखना मेरे लिए सही ढंग से जीने का ही नाम रहा। मैं नहीं लिखता वरन कोई आ कर मुझसे अपनी बात लिखा ले जाता है। लिखने से मुझे आत्मदान करने की तरह सुख मिलता है।

लोक जीवन ने उन्हे ललित निबंध लिखने की ओर प्रवृत्त किया। उनके निबंधो मे गांवो के उन्मुक्त वातावरण फसलों की सौंधी सुगंध गीत गाती हवाओ तथा मुसीबत मे भी मुस्कुराने वाले आदमी के स्वर सुने जा सकते हैं उनका कहना है मैं जब भी किसी चिड़िया को अपनी चोंच मे तिनका ले कर घोसले की ओर लोटते देखता हूं तब बरबस मुझे गांव की याद सताने लगती है वर्षों से शहर चले आने के बावजूद मेरा गँवइ मन गांव की याद भूल नहीं पाता और जैसे धरती से उखडा हुआ पौधा गमले मे

झटपटाने लगता है वैसे ही गांव के मुक्त आकाश में उडता फिरता मेरा मन शहर के यांत्रिक जीवन से मेल नही खाता।

लोक संस्कृति और गांधीवादी आदर्श के माध्यम से रचनाकर्म मे निरत दादा रामनारायण उपाध्याय ने अपनी ग्रामीण परिवेश से उपजी सहज सरल मानसिकता और सभ्य समाज के परिवेश की विसंगतियो से खीज कर तीखे व्यंग्य भी लिखे हैं। व्यंग्य के संबंध में उनका कहना है– व्यंग्य का जन्म भी दर्द से होता है। व्यंग्य वही कर सकता है जिसके दिमाग मे एक स्वस्थ समाज के निर्माण का सपना होगा।

उन्होने कहा था सत्य का दृढता से पालन जितना आवश्यक है, असत्य का विनम्रता से प्रतिकार भी आवश्यक है वह कहते है –

हे प्रभु, सच को सच कहना तो बडा कठिन है,
झूठ को सच नही कहना पडे, इतनी शक्ति दे।

दादा अपनी सर्व श्रेष्ठ कृति 'मन के मृगछौने' मानते है उनका कहना है– काव्य मे ऋग्वेद की रिचाओं की तरह कम से कम शब्दों में अपनी बात कहने की क्षमता होती है। उनकी एक रचना कहाँ है घर ?

जहाँ पिता के आशीर्वाद की छत,
मां की ममतामयी गोद का फर्श,
भाईयों की भुजाओ के खंभे,
बहनों के प्यार की लताये,
बच्चों की किलकारियो के झरोखे,
कही मिलें तो खबर देना।

ऐसे ही घर की खोज में वह सबके घरो का अपना घर बना चुके है और मनुष्य मात्र को प्रकृति और धरती के सर्वस्व को आत्मसात कर चलने मे सुख का अनुभव करते हैं। वर्तमान में आदर्श और नेतिकता की मानसिकता के पिछडेपन को मार्ग दर्शन के लिये दादा का व्यक्तित्व प्रमाण प्रस्तुत करता है। उनके अनुशासित जीवन में दिनचर्या में सब कुछ सुनिश्चित था। जैसे प्रत्येक पत्र का उत्तर देना उत्तर लिखना प्राप्त पत्रों को व्यवस्थित कर फाइल मे रखना चाय पीते हुए नए ग्रंथ की पांडुलिपि तैयार करना, सर्वोदय झोला टांगकर डाकखानें पैदल जाना, रजिस्ट्री से पुस्तकें भेजना आने जाने वालो से मिलकर उन्मुक्त ठहाके लगाना यह सब कार्य भी साहित्य चर्या के अभिन्न अंग हैं। उनके यहां उच्च अधिकारी से छोटे से छोटा मजदूर व्यापारी, शिक्षक, प्रोफेसर, पत्रकार, वकिल, डॉक्टर, सामाजिक कार्यकर्ता, नेता, प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति अपनी बाते सुनाने के लिए उनके पास आता वह सबकी बाते गंभीरता से सुनकर उनसे इस तरह मिलते है और एक गहन आत्मीयता लेकर घर से विदा होते हैं। खंडवा का ब्राह्मणपुरी और बडाबम उनकी इस उपस्थिति के साक्षी है।

संपर्क : कुलपति डॉ. सी.वी. रमण विश्वविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.)

कला समय

आगामी अंक
जून – जुलाई 2025

लोक, जनजातीय एवं शास्त्रीय वाद्ययंत्रों पर केन्द्रित विशेषांक

इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतु मौलिक आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, विशेष पाण्डुलिपियाँ सादर आमंत्रित हैं।
सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 15 जून 2025 है।

– संपादक

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com मो.– 94256 78058

संस्मरण

निमाड़ की महान साहित्यिक हस्ती पद्म श्री विभूषित पं. रामनारायण उपाध्याय

डॉ. मीना साकल्ले

अपने बचपन में, खंडवा में रहते हुए मैं रोज एक व्यक्ति को सफेद धोती कुर्ता और बंडी पहने अपने घर के सामने से आते जाते देखा करती थी। मन में एक सहज जिज्ञासा उस प्रभावशाली व्यक्तित्व के लिए उठती। न जाने कौन है यह व्यक्ति, और क्या करता है। खैर समय बीता, और शायद एक ही मुहल्ले एक ही वातावण में रहकर, यह उनके ओज का ही प्रभाव रहा होगा, कि मेरी भी रुचि साहित्य और खासकर निमाड़ी साहित्य में हुई, और आगे चल कर मैंने भी निमाड़ी में शोध कार्य किया । ज्ञात हुआ कि वह साधारण पहनावे वाला व्यक्ति कोई और नहीं वरन पद्मश्री से सम्मानित स्वयं श्री रामनारायण उपाध्याय जी थे। आज पचास साठ वर्षो बाद मुझे फिर से इस महान विभूति के लिए कुछ लिखने का अवसर प्राप्त हुआ है।

निमाड़ में बसी हुई विभिन्न जातियों एवं जनजातियों से सम्बन्धित बोलियां हैं। इन सभी में निमाडी प्रमुख है। यह निश्चित है कि निमाड़ी में प्राचीन समय से साहित्य लिखा जा रहा है, जिसमें संत सिंगाजी निर्गुण पंथी प्रमुख हैं। किन्तु निमाड़ी एक छोटे से क्षेत्र की ही बोली रही है. भाषा का दर्जा नहीं पा सकी। वर्तमान समय में जहां हिन्दी पूरे देश की एक परिपक्व, व्यवस्थित, व्यावसायिक भाषा स्वीकृत एवं प्रचलित है, वहीं निमाड क्षेत्र में निमाड़ी बोली के बने रहते हुए भी हिन्दी ही सभी दृष्टि से सर्वमान्य है। यह कह लीजिए कि हिन्दी का इस क्षेत्र में अपना गौरव है, निमाड़ी का निमाड़ अंचल की दृष्टि से अपना महत्व है।

भाषाओं की बहुलता से निमाड़ क्षेत्र में बहुत से क्षेत्र द्विभाषी हैं (अब तो त्रिभाषा का फार्मूला भी)। एक तरफ तो व्यक्ति घर में अपनी जाति विशेष की बोली प्रयुक्त करता है, तो दूसरी तरफ निमाड़ी की निमाड़ी। इन सबसे बाद भी भाषा के क्षेत्र में सर्वमान्य दृष्टि से हिन्दी का ही प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि निमाड ने निमाड़ी साहित्य और हिन्दी भाषा में लिखने वाले विश्व प्रसिद्ध लेखक दिए हैं। जिन्होंने दोनों ही भाषा में अपना योगदान दिया है। ऐसी विभूतियों में हिन्दी के महान कवि एवं स्वतंत्रता संग्रामी श्री माखनलाल चतुर्वेदी को एक भारतीय आत्मा के नाम से पुकारा जाता है और दूसरी और निमाडी को मालवी बोली से मुक्त कराकर स्वतंत्र भाषा बोली का दर्जा दिलाने वाले स्व. रामनारायणजी रहे हैं, जिन्होंने निमाड़ी और हिन्दी दोनों ही भाषाओं में लिखकर हिन्दी साहित्य में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

चालीस-पैंतालिस वर्षों से साहित्यिक सेवा करने वाले रामनारायण उपाध्यायजी का जन्म 20 मई 1918 में निमाड़ के एक छोटे से गांव कालमुखी में हुआ था। जन्म से ही वे साहित्यिक प्रतिभा लेकर अवतरित हुए थे। यद्यपि उनके पास कोई शैक्षणिक उपाधियाँ नहीं थी, फिर भी उनका व्यक्तित्व इतना प्रबल एवं निखरा है कि उनके साहित्यिक जीवन पर कई शोध हो चुके हैं और आज भी हो रहे हैं। उनकी हिन्दी निमाडी में लिखी 36 पुस्तकें प्रकाशित है, जिसमें व्यंग्य, ललित निबंध, संस्मरण सहित निमाडी समाज एवं संस्कृति पर भी कई पुस्तकें लिखी। गांधी युग की विभूतियों पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं। गांधीवादी होकर वे उनके सिद्धांतों पर ही चले हैं। वे पद्मश्री, साहित्य वाचस्पति सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित हुए। उन्होंने निमाड़ के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों की संक्षिप्त जीवनी एवं परिचय निमाड़ के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी पुस्तक में दिया है।

हिन्दी के साथ निमाड़ी साहित्य के लिए भी उनका बहुत बड़ा योगदान महत्वपूर्ण है। निमाड़ी लोक साहित्य की पूर्ण छवि उनकी इन पुस्तकों में देखते हैं, निमाडी लोकगीत, जब निमाड़ गाता है. निमाड़ का लोक साहित्य एवं संस्कृति, निमाड़ी लोक कहावतें, संत सिंगाजी एक अध्ययन, हम तो बाबुल तेरे बाग की चिड़ियाँ, लोक साहित्य समग्र आदि। इसके अतिरिक्त हिन्दी में भी व्यंग्य, कहानी, संस्मरण, ललित निबंध आदि विद्याओं पर लिखी पुस्तकें हैं।

इस तरह श्री रामनारायण उपाध्याय का गद्य लेखन अपनी सहजता, मौलिकता, प्रखपरता. कटुताहीन, मर्मस्पसर्शिता, वेदनीयता के कारण हिन्दी जगत की विशिष्ट उपलब्धि है। उपाध्यायजी निमाड़ क्षेत्र के एकमात्र व्यक्ति हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम निमाड़ी को निमाड़ी बोली एवं लोकभाषा के रूप में भाषा वैज्ञानिकों से लड़-झगडकर मान्यता दिलवाई। निमाडी लोक साहित्य एवं संस्कृति अत्यन्त प्राचीन होने पर भी इस क्षेत्र के कुछ स्थानीय एवं समीपवर्ती क्षेत्रों के लेखकों ने निमाड़ी का अस्तित्व ही समाप्त करने का प्रयास किया, किन्तु उपाध्यायजी ऐसे सर्वप्रथम व्यक्ति हैं, जिनकी बुलंद आवाज ने भाषा वैज्ञानिकों और साहित्यकारों के द्वार खटखटाकर बार-बार कहा कि निमाड़ी निमाड़ जनपद की अपनी बोली है, न कि सीमावर्ती बोली मालवी में समाहित। यदि उपाध्यायजी ने यह आवाज न उठायी होती तो निमाड़ी का स्वतंत्र व्यक्तित्व उनका समाप्त हो चुका होता।

धन्य है रामनारायण दादा, जिनकी देन युगों तक याद की जाती रहेगी।

निमाड़ क्षेत्र के लिए निमाड़ी को सर्वमान्यता दिलाने का उनका कार्य तो सर्वप्रसिद्ध है ही, इसके अतिरिक्त निमाड़ में खड़ी बोली हिन्दी के साहित्य को प्रसिद्ध करने में भी उनका अमूल्य योगदान रहा है। निमाड़ परिक्षेत्र व्यापक है, फिर भी हिन्दी में योगदान देने वाले राष्ट्रीय स्तर के साहित्यकारों में वे गिने जाते हैं।

यों तो निमाड़ी बोली के साहित्यिक इतिहास में अन्य अनेक लेखकों के नाम गिनाये जा सकते हैं, किन्तु जिस एक व्यक्ति में निमाडी का सम्पूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व मूर्त हुई है, वह है पद्मश्री विभूषित रामनारायण दादा।

निमाड़ी साहित्य का महत्व निर्गुणपंथी संत सिंगाजी के कारण ही बड़ा है, क्योंकि वह निमाड़ी में है। कहा जाता है कि संत सिंगाजी का साहित्य ही इस क्षेत्र का वास्तविक व्यक्तित्व है। श्री प्रभाकर दुबेजी ने लिखा भी है–

स्माणी घोडी वालो वो सवार
सवार संत सिंगाजी
ईनी बोली निमाड़ी की जानऽ
जानऽ संत सिंगाजी

शताब्दियों से चलने वाली संत सिंगाजी की यह परम्परा आगे तक पल्लवित और पुष्पित होती चली गई, जिनमें कईयों के नाम आज तक लिये जाते हैं, जिनका यहां वर्णन करना अप्रासंगिक है। मेरा उद्देश्य ऐसे महान साहित्यकार के व्यक्तित्व का उल्लेख करना है, जिन्होंने हिन्दी और निमाडी दोनों भाषाओं में कार्य कर साहित्य को चरम स्थान पर पहुंचाया है। उपाध्यायजी के कार्य में हिन्दी और निमाड़ी के लोक साहित्य दोनों को भाषा एवं बोली के उत्कृष्ट मापदंड को नापा है।

निमाड़ी बोली से जुडी उनकी जितनी भी पुस्तकें हैं, उनमें सबसे प्रमुख हैं निमाड का सांस्कृतिक इतिहास। निमाड़ी लोक जीवन को चित्रित करने वाली यह पुस्तक निमाड़ी समाज, सभ्यता एवं संस्कृति का पूरा चित्र खींचती है। यह पहली पुस्तक है, जिसमें निमाड के सम्पूर्ण सांस्कृतिक वैभव का चित्रण किया गया। आज भी इसमें वर्णित विभिन्न संस्कारों के लोक गीतों को सहजता से गाया जाता है। हर समाज की एक अलग सभ्यता, संस्कृति एवं बोली होती है, उसके समस्त कार्यकलापों को एक स्थान पर लाकर रखना एक बड़ा शोधपूर्ण कार्य होता है। उपाध्यायजी ने यह कार्य आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व कर दिखाया है और उनका यह ग्रंथ आने वाली पीढ़ी को अपने समाज, सभ्यता एवं संस्कृति का पाठ पढाती है।

लोक संस्कृति का अपना अलग महत्व है। भारत में जितने भी लोक हैं, सबकी अलग-अलग एवं पर्ण संस्कृति है और उस संस्कृति का विश्लेषण करना बड़ा काम है। उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा भी है जब कोई व्यक्ति विशेष प्रकार के रहने या काम करने का अभ्यस्त हो जाता है और लाख कठिनाइयां आने पर भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हो पाता है तो कहते हैं अरे उसके तो संस्कार पड़ गये हैं, वह नहीं बदलेगा। तो व्यक्ति विशेष के कार्य हां संस्कार कहलाते हैं, वे ही समष्टिगत स्वरूप में लेते हैं तो उसे संस्कृति कहते हैं। (निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास पृ.4)

निमाड़ी समाज एवं संस्कृति का एक भी पक्ष ऐसा नहीं रहा, जिसे उपाध्यायजी ने अपनी रचना का माध्यम न बनाया हो। उन्होंने निमाड की पारम्परिक धरोहरों को अपना माध्यम बनाया, जिसमें ग्रामीण जीवन का पूर्ण चित्रण है। ग्रामीण परिवेश होने के बाद भी यहां के निवासियों की वेशभूषा, खान-पान, बर्तन, आभूषण एवं निवास तक को बडी बारीकी से चित्रित किया गया है। इसके साथ ही निमाड़ में मनाये जाने वाले व्रत, त्यौहार, पूजा-पाठ तथा अन्य सभी धार्मिक मान्यताओं का भी वर्णन किया है। लोक कलाएं यहां की अति प्राचीन काल से चली आ रही है। आज भी घरों में भित्ति चित्र, जिरोती, संझा तथा तरह-तरह के मॉडने बनाये जाते हैं। लोकगीतों का तो अपना कुछ अलग ही रंग है, जिसमें विभिन्न संस्कारों के गीतों के साथ भक्तियुक्त भजन, विशेषकर संत सिंगाजी के भजनों का स्थान है। गणगौर पर्व के गीत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जहां गाँव-गाँव में बड़े-बडे पांडाल बनाकर रात में सामूहिक रूप से माता गणगौर के गीत गाकर भक्त शिव-पार्वती की स्तुति होती है।

डॉ श्रीमती मीना साकल्ले वर्ष 2016 का "गणगौर सम्मान" ग्रहण करते हुवे

बाएं से डॉ सुमन चौरे, श्री वरद मूर्ति मिश्र ,डॉ शैलेन्द्र शर्मा, डॉ मीना साकल्ले, श्री तन्मय जी,शिशिर उपाध्याय

निमाड़ी बोली एक परिपक्व भाषा समान है। देवनागरी लिपि होने के साथ-साथ लेखन में स्वरों एवं व्यंजनों का विशेष ध्यान रखा है। लोक कथाएं, मुहावरे, कहावतें, पहेलियाँ निमाड का पारम्परिक स्वरूप है, जिससे भाषा का सौंदर्य बड़ा है।

कुल मिलाकर उपाध्यायजी ने निमाड के सांस्कृतिक वैभव पर पूरी तरह जुडकर कार्य किया है, जो आज ऐतिहासिक बन गया है।

निमाड़ी लोक संस्कृति के साथ हिन्दी साहित्य की उनकी अमूल्य देन है गांधी साहित्य। गांधीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को इतने सारगर्भित रूप में शायद ही किसी ने आज तक व्यक्त किया हो। इसके अतिरिक्त उनकी विभिन्न रचनाओं में अनेक संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध,

कहानी आदि मिलते हैं। इन सभी में हमें ललित गद्य का आनंद मिलता है। छोटे-छोटे भावपूर्ण वाक्यों में गहरी बातें छुपी रहती है। उनके भाषणों का भी महत्व है कि श्रोता बंध सा जाता है।

उपाध्यायजी की रचनाओं की एक अद्वितीय विशेषता है व्यंग्य। उन्हें हम चोटी के व्यंग्यकारों में रखकर देखते हैं। उनका वास्तविक अवलोकन उनके व्यंग्यकार से ही व्यक्त होता है। उनकी हिन्दी की उल्लेखनीय रचनाएं हैं- गरीब और अमीर, धुंधसे कांच की दीवार, सुख के नाम पाती, अनजाने-जाने पहचाने, बोलता हिन्दुस्तान, जिनकी छाया भी सुखकर है, मन के मृग छौने, नया पंचतंत्र, बक्शीसनामा, नाक का सवाल, मुस्कराती फाइलें, दूसरा सूरज, जनम जनम के फेरे, कथाओं की अंतर्कथा, मामूली आदमी, चिट्ठी आदि सराही गई है। कुछ विशिष्ट सम्मतियों के माध्यम से उपाध्यायजी के रचना व्यक्तित्व को परखा जा सकता है:-

डॉ. हरिवंशराय बच्चन के शब्दों में श्री उपाध्यायजी ने युग खोखलेपन पर खुलकर व्यंग्य किया है समाज पर, राजनीति पर, साहित्य पर भी। जो बात सबसे अधिक प्रभावित करती है, वह यह कि व्यंग्य में कटुता का कहीं भी आभास नहीं। व्यंग्य की यह सबसे बड़ी सफलता है।

डॉ. प्रभाकर माचवे के शब्दों में आपके व्यंग्य बहुत ही मजेदार हैं अहिंसक और मौलिक।

प्रो. विवेकीराय के शब्दों में मौलिकता, ताजगी, जीवनानुभव और कल्पना से भरपूर (उपाध्यायजी के) संग्रहों में वेदनीयता है, ये व्यंग्य चुभता है, झनझनाता है व भीतर से उघडता है।

श्री भवानी प्रसाद मिश्र के शब्दों में जीने और लिखने के करीने कोई तुमसे सीखे।

ऐसी कई उक्तियाँ उपाध्यायजी के लेखन पर विद्वानों ने दी है। साथ ही उनके लोक साहित्य पर भी कुछ अनेक विद्वानों की उक्तियों हैं।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार निमाड़ की भूमि लोक साहित्य की सौभाग्यशाली धरती कही जाती है। नर्मदा की उत्कृष्ट भूमि अति प्राचीन संस्कृति की धात्री रही है। इस महिमाता की क्षीर धारिणी मुद्रा में मानव का सर्वतोमुखी जीवन धन्य हुआ है।

श्री राहुल सांकल्यायन के अनुसार लोक साहित्य के कार्य में एक व्यक्ति नहीं सारी पीढ़ियाँ सहायक होगी।

सत्य है उपाध्यायजी जो निमाडी साहित्य एवं संस्कृति का द्वार खोल गए, आगे चलकर उस पर कई उत्कृष्ट शोध कार्य हुए। उनसे जुड़ी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आज बड़े पैमाने पर कार्य हो रहा है। साहित्य अकादमी म.प्र. परिषद भोपाल प्रतिवर्ष निमाड़ी बोली का संत सिंगाजी पुरस्कार श्रेष्ठ निमाड़ी कृति पर देती है। कई परिषद् जैसे उपाध्यायजी द्वारा स्थापित लोक संस्कृति न्यास खण्डवा (म.प्र.), अखिल भारतीय लोक कला परिषद्, म.प्र. लेखक संघ एवं लेखिका संघ द्वारा भी प्रतिवर्ष निमाड़ी बोली के साहित्य को सम्मानित करते हैं। इसके अलावा म.प्र. की कई छोटी-मोटी संस्थाएं हैं, ये भी इस बोली में कार्य करने वालों का सम्मान करती है। कई विश्वविद्यालयों ने अपने यहाँ निमाड़ी विभाग खोलकर रखें हैं और वहां पर निमाड़ी पर शोध कार्य एवं कार्यशाला आयोजित की जाती है।

इस तरह श्री रामनारायण उपाध्यायजी का गद्य लेखन अपनी सहजता, मौलिकता, प्रखरता, कटुहीनता, मर्मस्पर्शिता, वेदनीयता के कारण हिन्दी जगत की विशिष्ट उपलब्धि है।

कुल मिलाकर उपाध्यायजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व निमाड़ एवं हिन्दी साहित्य के लिए अविस्मरणीय है। जो आज ऐतिहासिक बन गया है। निमाड़ पर शोध कार्य करने वालों के लिए दिशा एवं मार्ग मिला है। उनकी यह देन कई पढ़ियों को निमाड़ का परिचय देती रहेगी। माँ नर्मदा का वरद पुत्र होने का सौभाग्य भी मिला। आदि गुरु गोविन्द पाद, शंकराचार्यजी एवं मंडन मिश्र की नगरी और यहां की सभ्यता एवं संस्कृति को विकसित करने का श्रेय भी उपाध्यायजी के पास हमेशा रहेगा।

निमाड़ की गरिमा उपाध्यायजी से है और उपाध्यायजी की गरिमा निमाड़ से। धन्य है निमाड़ की नगरी

शत्-शत् उन्हें प्रणाम्......

जय निमाड़ जय निमाड़ी

संपर्क : एफ-37बी/एस-5, स्कीम नं. 78,
शालीमार टाउनशिप के सामने ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.)
मोबाइल नं.-93297-69449

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें!

कला समय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com bhanwarlalshrivas@gmail.com

समय की धरोहर ....

लोकजीवन के ध्याता और अध्येता

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

लोकजीवन के बीच बने रहने वाला और सहज रूप से लोकबोलियों में बतियाकर, लिखकर अपने को उसके साथ संप्रकृक्त रखता है, वह लोक की आराधना कर सकता है। लोक को साधना परलोक साधने के कहीं ज्यादा दुष्कर है क्योंकि यह जन्मभर की साधना है। यह भी बड़ा सच है कि लोक साधना एक जन्म में कहां पूरी होती। गीता में जिस अधूरे योग की चर्चा होती है, वह हमारे लिए अधूरे लोक की धारणा भी देता रहता है।

पिछली सदी ने जनपद, लोक, अंचल और देशी जैसे शब्दों से साहित्य के भंडार को समृद्ध किया, वह भाषा वैज्ञानिकों के लिए भी कम रोचक नहीं रहा। बोलियों में रचा बसा साहित्य अभिजात्य सृजन का आधार ही नहीं, मूल प्रेरणा भी है। यह बात मुझे आदरणीय रामनारायणजी उपाध्याय के प्रसंग में याद आती है जो अपने समय में भारतीय लोक साहित्य के संकलन संपादन के उस आंदोलन के अग्रणी हुए जिसकी प्रशंसा में प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल को कहना पड़ा कि निमाड़ी का यह शोधक लोक की उस संपदा को सहेज रहा है जिसका भंडार सबसे ज्यादा आय और ब्याज वाला है।

पिछला पचास के आसपास का समय इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि तब लोक साहित्य के विविध रूपों के अध्ययन और सर्वेक्षण तथा लेखन के लिए कई लोग आगे आए और कई संस्थाओं का गठन हुआ। हिन्दी जनपदीय परिषद् 1952 में बना और जनपद नामक त्रैमासिक मुखपत्र आया। इसी समय भारतीय लोक कला मंडल अस्तित्व में आया और लोक संस्कृति और रंगायन जैसी पत्रिकाएं निकलीं। आदरणीय राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी हमें बार-बार याद दिलाते हैं उन लोकसंस्कृति के लोकनिष्ठ साधकों को जिन्होंने प्रसिद्धि से दूर होते हुए भी लोकजीवन के अध्ययन-अनुसंधान के लिये अपना जीवन अर्पित किया था। उनकी सूची में रामनारायण जी विराजित हैं। अन्य नाम भी प्रतिस्पर्धा करते जैसे हैंः शरच्चन्द्र राय , राहुल सांकृत्यायन, कृष्णानन्द गुप्त, धीरेन्द्रनाथ मजूमदार, कृष्णदेव उपाध्याय, देवेन्द्र सत्यार्थी, रामनरेश त्रिपाठी, मेरठ के श्रीकृष्णचन्द्र शर्मा, श्रीकृष्णदास, दुर्गा भागवत, सत्येन्द्र, कुंजबिहारी दास, शंकरसेन गुप्त, दिनेशचन्द्र सेन, झवेरचन्द मेघाणी, पुष्कर चन्दरवाकर, सीताकान्त महापात्र, कोमल कोठारी, विजयदान देथा, देवीलाल सामर, महेंद्र भानावत, कन्हैया लाल सहल, गोविन्द अग्रवाल, राम इकबालसिंह राकेश, गणेशचौबे, नरेश पांडेय चकोर, श्रीरंजन सूरिदेव, श्याम परमार, चिन्तामणि उपाध्याय, नर्मदाप्रसाद गुप्त, मालतीशर्मा, वेदप्रकाश वटुक, गोविन्द रजनीश, इन्द्रदेव, हरद्वारीलाल शर्मा, अंबाप्रसाद सुमन, चन्द्रभान रावत, इन्दुप्रकाश पांडेय, वासुदेव गोस्वामी आदि। यह नामावली सहस्रावधि हो सकती है। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल तो इस धारा के मन्त्रदृष्टा जैसे ही हैं ।

चतुर्वेदी का यह कहना भी एक मुहर जैसा है कि यदि हम इनके कार्य का आकलन कर सकें तो समझ सकते हैं कि भारत के लोकजीवन की गहराई में जनगण की मैत्री और सामंजस्य की शक्तियां किस प्रकार सक्रिय हैं। जाति-पांति, मजहब, वर्ग और भाषा भेद, प्रान्त-भेद की विषमताओं, विविधताओं के गर्भ में मनुष्य की संवेदना कितनी प्राणवान है !

जहां डॉ. भानावत मानते थे कि लोक साहित्य जनजातीय गुहाओं से शुरू होता है और नदी की तरह तीर्थ सा सम्मान और स्वीकृति पाता है। वहीं, चतुर्वेदी जी कहते हैं कि लोकसंस्कृति के क्षेत्र में पिछले सौ बरसों में भारत के प्रत्येक जनपद और आदिवासी-क्षेत्रों में लोकजीवन की अविच्छिन्न वाचिक-परंपराओं, मिथकों, लोककलाओं, लोकसंगीत, लोकवाद्य, लोकनृत्य, लोकशिल्प, लोकमंच, लोकचित्र, थापे, मंडना, अभिनय, लोकभाषा, अनुष्ठान, लोकाचार, रीति रिवाज, लोकविश्वास, लोकमान्यता, लोकदेव, टोना-टोटका, शकुन, लोक साहित्य, गाथा, गीत, कथा-कहानी, लोकनाट्य, लोकमन्त्र ,लोक-अनुश्रुति आदि-आदि को लेकर बहुत अध्ययन -

अनुसंधान हुआ है। यह सारा कार्य बहुत बिखरा हुआ है। भिन्न-भिन्न जनपदों में है।

वासुदेव शरण जी ने रामनारायणजी के कार्यो की आगे चलकर प्रशंसा की जब उनकी पुस्तक आई : निमाड़ी लोकगीत। यह मध्य प्रांत विदर्भ हिंदी साहित्य सम्मेलन, जबलपुर से प्रकाशित हुई और 72 पन्नों की थी लेकिन वासुदेवजी को ये पंक्तियां बड़ी सुहावनी लगी : म्हारो देश मालवो, मुलक निमाड़, गांवड़ा को छे रहे बास। मानो इन शब्दों में लोकगीत स्वयं अपनी जन्म भूमि का परिचय दे रहा है। नर्मदा की रसपूर्ण आत्मा इस प्रदेश के लोकगीतों में बसी है। इतने सरस और भावपूर्ण गीतों की जन्मस्थली होने के कारण सचमुच निमाड़ की भूमि लोकसाहित्य की सौभाग्यशीला धात्री कही जा सकती है...। (जनपद, 1953 पृष्ठ 91) उपाध्यायजी के श्रम का ही यह परिणाम था कि वासुदेवजी को भाव विह्वल कर दिया और उन्होंने निमाड़ के नर्मदा घुले काजल से जैसे माहात्म्य मंडित कर डाला। उस दौर में यह भाव लेखन का मूल तत्व था और पत्र ही इतने रोचक होते थे कि उनमें आत्मीय विरासत की हवेलियां बनी लगती है। उपाध्यायजी के पत्रों में नार्मदीय घूर्णन कंकर को शंकर सा सिद्ध करता ही है।

उपाध्यायजी को पढ़ना निमाड़ के कल्पवास जैसा लगता है। मैं अकसर डॉ. भानावत जी के लिए कहता रहा हूं कि वह एक पूर्णकालिक लेखक और पत्रकार रहे हैं। ऐसा कोई दिन नहीं, जब वे लिखते नहीं। सोचते भी लेखन में और सोते भी लेखन में! शब्द के साधक, स्मृतियों के आराधक, लोक के प्रतिष्ठापक, अतीत के अपने तरीके के शोधक और संशोधक! यही बात आदरणीय उपाध्याय जी के लिए भी कही जा सकती है : लोक साहित्य के लिए उन्होंने अपना जीवन दे दिया, वे आज लोकसाहित्य के सिद्ध हैं। साबर मंत्र जैसा जाप जैसे कौतुक करता है, वैसे ही उनका सृजन इक्के दुक्के नहीं, अनेकों अध्येताओं के शोध अध्ययन में सहायक बना है। उन्होंने बीज के रूप में लिखा, हमें वट वृक्ष के रूप में लगता है। उनकी पोथियां शोध प्रबंधों के रूप में फलवान हुई हैं। देशभर के विश्व विद्यालय साक्षी हैं।

भानावत जी के प्रति मेरा मन कहता रहा है :

कबीर की तरह आंखनदेखी और लोककही लिखकर उन्होंने महेंद्र जैसे मन को मथा और नवनीत लिखा! उस ज्ञानाश्रय में कितने लेखकों का प्रस्थान बिंदु है, यह जानकर ही मैं गौरव पाता हूं। प्रलोभन शून्य, स्पष्ट वक्ता और रंजन के अंजन से आंखों को उजास देने वाले, अपनी प्रतिभा का स्वयं निर्माण और निवेश करने वाले भानावत जी सदा सर्वदा सम्मान योग्य विभूति हैं तो उपाध्याय जी के प्रति यह मन रहा कि मेवाड़ के महेंद्र की तरह ही निमाड़ के राम तो नर्मदा के नारायण हैं, उनके शब्द सहस्र धारा के स्वाभाविक शिवलिंग से कहां कम हैं। उन्होंने शिवार्चना की तरह अपनी भूमि, भाषा और भाव की साक्षर पूजा की।

लेखक - वरिष्ठ साहित्यकार,भारतीय विद्याविद्
और संस्कृत के वैज्ञानिक ग्रंथों के खोजकर्ता हैं।
संपर्क : विश्राधरम्, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर,
उदयपुर 313001 (राज.) मो. 9928072766

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ●आकर्षक गेटअप
●नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है- चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तों के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ- साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि की व्यवस्था है।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा भी उपलब्ध है।

- भँवरलाल श्रीवास
निदेशक

आप स्वयं पधारे या सम्पर्क करें...

0755-2562294, 9425678058
kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

मेरे दादा

डॉ. सुमन चौरे
(बड़ी बेटी)

'कला समय' पत्रिका मेरे दादा पर एक विशेषांक प्रकाशित कर रही है। सम्पादक महोदय ने मुझे दादा के व्यक्तित्व और कृतित्व पर कुछ लिखने को कहा है। हाथ में कलम लेकर बहुत देर तक बैठी रही, कुछ समझ नहीं आ रहा था, कलम क्यों नहीं चल रही थी, क्या लिखूँ? कहाँ से शुरु करूँ? इतने में ही पोस्टमैन ने दरवाज़ा खटखटाया। मैं उससे डाक लेकर पुस्तकालय के टेबल पर चिट्ठियाँ रखने चली गई। वहीं अलमारी के काँच से दादा की पुस्तकों के बीच अभिनंदन ग्रंथ 'माटी की गंध' दिखाई दिया। ग्रंथ को खोलकर देखा, दादा ने लिखा था, 'श्वास-प्रश्वास की तरह मेरे जीवन में समायी बेटी सुमन को भेंट'। दादा के स्याही वाले पेन की दशकों पुरानी लिखावट थोड़ी फीकी पड़ चुकी थी। लेकिन कभी फीकी नहीं पड़ी दादा की यादें। और, यह दादा की कलम की स्याही ही तो है, जो मेरे जीवन में समा गई। स्याही से जुड़ी एक बार की घटना बड़ी बाई सबको बार-बार आनन्द से सुनाती रहती थीं।

कालमुखी के घर की बैठक, जिसे सब कचहरी कहा करते हैं। फर्शी पर बड़ी-सी गादी पर दो-चार लोड और किनारे पर लकड़ी की पेटी रखी रहती थी। यह पेटी दादा के साहित्य रचना की मुख्य सामग्रियों में से एक थी। इस पेटी में कलम (पेन), पेंसिल, निब होल्डर, नीली और लाल स्याही की दवात के साथ कागज और रजिस्टर भी रखे रहते थे। पेन होल्डर हम बच्चों के खिलौने थे। बड़ी बाई सुनाती थीं, कि दादा जब लिखने बैठते थे, तो उनके आस-पास बच्चे खेलने पहुँच जाते थे। सुमन सात-आठ महीने की थी, खुल्ला बैठ जाती थी। एक बार सुमन को दादा के पास बैठाकर, मैंने उनसे कहा, 'एखऽ देखजे।' दादा ने 'हौ' कहकर मुझे एक पेन पकड़ा दिया। तब तक बच्चे खेलते हुए कचहरी से बाहर चले गए। पेन स्याही से पूरा भरा हुआ था। खेलते-खेलते पेन का ढक्कन खुल गया। दादा तो लिखने में मगन थे। उनका ध्यान ही नहीं गया कि सुमन पर पूरी स्याही गिर गई। मुँह, गला, हाथ सब नीले कच्च हो गए थे। जब बहुत देर तक, न सुमन की और न ही दादा की आवाज़ आई, तो मैं चिन्ता से देखने कचहरी में गई। फिर मेरे शरीर पर स्याही देखकर दादा पर थोड़ी-सी नाराज़गी दिखाकर पूछा, 'पोरई स्याही पी गई काईऽ'। मुझे देखकर दादा ने ठहाका लगाकर बाई को कहा, 'लो सरस्वती माता की किरपा हुई गईऽ ज।' और सच में सरस्वती माता की कृपा दादा के स्नेह के माध्यम से बरस पड़ी।

कालमुखी के घर में दीवाल में काँच लगी बड़ी-बड़ी अलमारियाँ थीं, जिनमें पुस्तकें ही पुस्तकें थीं। एक अलमारी से लगा दादा का पलंग था। जिसपर मैं उनके पास सोती थी और जबतक नींद नहीं आती थी, काँच पर हाथ फेरती रहती थी। कभी-कभी दादा की किताब के पन्नों में आँखें गड़ा देती थी। अपने सिरहाने कंदील रखकर दादा देर रात तक पढ़ते थे।

दादा कहते थे, किताब में लिखे अक्षरों को देखते जाओ, देखते जाओ, एक दिन तुम उनको पहचानने लगोगी; और फिर अक्षर तुमको पहचाननें लगेंगे, तो तुम्हारी अक्षरों से और किताबों से दोस्ती हो जायगी। मुझे उनका यह सूत्र याद भी है, जब मैं कक्षा दूसरी में थी, मैंने काँच की

अलमारी में रखी एक पुस्तक का नाम हिज्जे कर-करके सुनाया 'बेलाफूले आधी रात, देवेन्द्र सत्यार्थी'। दादा बहुत खुश हुए थे। उन्होंने कहा था, ''सब पुस्तकें पढ़ डालना।''

सुबह आँख खुली, दादा अपने नियम के अनुसार ऊपर चाँदनी (छत) की दीवाल पर बैठकर लिख रहे थे। सुबह उन्होंने सबको बताया, कि मैंने कितना कठिन नाम पढ़ लिया। बाई ने कुछ व्यंग्यभरी मुस्कान से कहा,'' तुमजऽ बहुत छे। याने लिखने-पढ़ने वाले आप ही बहुत हो। बाई ने सच कहा, याने लिखने'' क्योंकि जब दादा लिखते पढ़ते थे, उन्हें कोई सुध नहीं रहती थी। यहाँ तक कि उन्होंने चाय-दूध भी पीया या नहीं। कई बार तो वे कह देते थे, कि''आज तो संझा हुई गईज जीम्या तक नी।'' बाई

तो क्या हमारी अज्जी माँय हँसते हुए कहती थीं, ''नाना अरू खाणू होय तो खाओ पणऽ झूठ मत बोलो।''

यह तो लेखन के साथ समरसता का एक उदाहरण था। दादा इतने सरल थे इसलिए उनका लेखन भी सरल-तरल रहा, जो सबके मन मस्तिष्क में सहजता से उतर जाता था। दादा की रचना जैसे ही पूरी होती थी, वे अपने काका, मुंशी दाजी, बड़े भाई - बाबू (पुरुषोत्तम), छोटे भाई-शिवा (शिवनारायण), माँय, बड़ी बाई, सबको एक साथ बैठाकर सुनाते थे। हमारी अज्जी माँय भी बड़ी विदूषी थीं। उस युग में भी वे संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन करती थीं, जब महिला शिक्षा का अभाव था। वे दादा के साथ धर्म ग्रंथों और उनके पात्रों पर चर्चा भी करती थी। घर में बच्चों को घुटी में ही यह संस्कार पिला दिए गए थे, कि अध्ययन करना आदमी का स्वभाव बन जाना चाहिए।

हमारे गाँव कालमुखी में दादा की रचनाओं के श्रोता उनके प्रिय मित्र जीवन काका, छोगीलाल दाजी, मोजीलाल फुवाजी, चम्पालाल दाजी और हमारे खेती के साजी फत्तू फूवाजी और भीली बोलने वाली दगड़ी बुआ। हमारे गाँव की दाई जिसको सब रम्भई जीजी कहते थे, वह तक पूछती थी, ''नाना भाई कईं नवो लिख्यो?'' दादा के लेखन की यह आत्मा है, गाँव और गाँव के लोग। सुबह सात बजे के पहले अपना लेखन कार्य पूरा करके दादा गाँव की गली-गली में एक फेरी लगा लेते थे, कोई बीमार हो तो घड़ी दो घड़ी उसके घर रुकते, किसी ने आवाज़ दी कि ''भाई आई जाव,'' तो दस-पाँच मिनट उसके घर-खेत मं की उखण्डी खाट पर बैठकर प्रेम स्नेह की बात कर लेते थे। खेत मंऽ काई वायो? भसी दूध दई रहीज की नईं? आदि-आदि।

एक बार दादा से पूछा, ''दादा, आप ने निमाड़ी लोकगीत और निमाड़ी साहित्य पर कैसे काम करने लगे?'' दादा ने बताया, ''एक बार गणगौर पर्व के अवसर पर रात के समय महिलाएँ बड़े मधुर भाव से टोल में गीत गाती जा रही थीं, मैं दहलीज पर बैठा सुन रहा था। गीत था—शुक्र को तारो रे ईश्वर, ऊँगी रह्यो, तेऽऽऽ की मखऽऽऽ टीकी गढ़ाओ।

''बाई (माँ) से पूछा कि भाभी यह क्या गीत गा रही हैं? जब उन्होंने वह गीत गाकर बताया तो मैं अचंभित रह गया। गाँव की अनपढ़, भोली-भाली महिलाओं की कितनी अद्भुत कल्पना है। निमाड़ी लोक गीतों में तो मोती की खान है। मैंने लोकगीतों और लोक साहित्य पर काम करना शुरू कर दिया।'' दादा कहते थे कि मेरे इस गीत के लेखों को पढ़कर वासुदेव शरण अग्रवालजी ने ही कहा था कि निमाड़ी के इस लोकगीत पर लाखों-लाख लोकगीत न्योछावर हैं। लोकसाहित्य के मूल से जुड़े दादा लोक से भी कभी विलग नहीं हुए। लोकगीतों की उनकी पहली पुस्तक कालमुखी में आई। जब पुस्तकों के उस बड़े बंडल को खोला तो देखा कि उसके आवरण पृष्ठ पर पलाश के फूलों से लदी टहनी के साथ लिखा था—'जब निमाड़ गाता है।'

गाँव के कई लोग आ गए, भीड़ लग गई। कुछ ने कहा, ''जातू भाई, हमारे लेण तो काळो अक्खर भैंसी बराबर, अवंऽ रात मंऽ चावड़ी पर पढ़ी नऽ सुनावऽ जे सबै नऽ खऽ।'' गाँव के लोग जो पढ़ सकते थे, वे पढ़ते थे, वरना वे पढ़वा लेते थे। दादा के विषय में गांधीवादी चिंतक और साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकरजी ने कहा था, ''प्रेमचंद के लेखन को कितने होरियो ने पढ़ा, नहीं जानता, किंतु राम नारायण भाई के साहित्य को उनके गाँव के लोग प्रेम से पढ़ते हैं। परिवार के लोग, बच्चा-बच्चा पढ़ता है। यह उनके लेखन की सार्थकता है।''

तब कालमुखी में डाक की व्यवस्था नहीं थी। हमारे गाँव से आठ मील दूर निमाड़ खेड़ी रेलवे स्टेशन पर डाक आती थी। कालमुखी में सिर्फ एक दिन बुधवार को वहाँ का पोस्टमैन डाक लाता था, दूसरा सड़क मार्ग भी कच्चा ही था, इसलिए कभी-कभी डाक लेने के लिए दादा साइकिल से जाते थे या फिर अपने छोटे भाई शिवा के साथ घोड़े पर जाते थे। कालमुखी से बाहर जाने के लिए यातायात के साधन कम ही थे। गाड़ी बैल या घोड़ा से सात मील दूर अत्तर स्टेशन जाते थे। जहाँ से छोटीलाईन की रेलगाड़ी द्वारा इन्दौर या खण्डवा पहुँचते थे। गाँव में शाला भी चौथी तक थी। हम भाई बहनों को आगे पढ़ाने के लिए दादा-बाई खण्डवा रहने लगे, वार-त्योहार सब गाँव में ही मनाते थे। खण्डवा आने का एक लाभ तो यह कि नियमित डाक की सुविधा हो गई, दूसरा माणिक वाचनालय की पुस्तकों का खजाना और तीसरा किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण था, दादा माखनलालजी चतुर्वेदी का सतत् सानिध्य।

दादा जब भी कहीं से रेल द्वारा खण्डवा आते तो माखन दादा को प्रणाम करने के बाद ही घर पहुँचते, भले ही ताँगा थोड़ी देर बाहर रास्ता देखे या फिर देर लगने की संभावना दिखे, तो दादा उसी ताँगे से घर पहुँचा देते थे। माखन दादा कहते, हमने देख लिया था, तीन पुलिया पर से कालमुखी की छोटी लाईन वाली गाड़ी आ गई है, तुम न आते तो पकड़े जाते। माखन दादा के लकड़ी की जाली वाले बरामदे से रेल गाड़ियाँ दिखती थीं। ऐसा माखन दादा ने इसलिए कहा क्योंकि एक बार दादा मालीकुँआ के रास्ते से पैदल घर आ गये थे। माखन दादा से मिलने अगले दिन सुबह गए, मैं भी साथ हो ली थी। तब दादा ने पूछा कि, कब आये? हमारे दादा ने उत्तर दिया कल। थोड़े रुष्ट होते हुए माखन दादा ने कहा कल पहली हाजिरी यहाँ। फिर बाद में और कहाँ इतना कहकर हँस पड़े।

कालमुखी में दिनचर्या की जैसी शुरुआत होती थी, वैसा ही तारतम्य खण्डवा में भी बना रहा। दादा सुबह साढ़े पाँच बजे उठते, लेखन कार्य कर स्नान करके सात बजे माखन दादा के घर पहुँच जाते थे। दादा को आँखों में कमज़ोरी आ गई थी, उनका आदेश था कि रामनारायण, सुबह अखबार तुम्हें ही पढ़कर सुनाना है, उस अखबार को बासी नहीं होना चाहिए। और हमारे दादा इस स्नेहिल आदेश का पालन करने में कभी नहीं चूके। दादा रात में जो लिखते, अखबार की खबरों के बाद अपनी रचना सुनाते थे। कभी-कभी अखबार के पहले ही अपनी रचना सुना देते। तो दादा, ठहाका लगाकर कहते थे, 'रामनारायण, इतनी अच्छी रचना के बाद

अखबार की खबरें क्या सुनना।'

दादा और बाबूजी दो शरीर और एक ही आत्मा थे। दादा कोई भी रचना लिखते थे, तो पूरी होने पर आवाज देते थे— ''शिवा, नारायण और सुमन, बुला लो अपनी बाई को भी।'' रचना पाठ करते समय उनके चेहरे पर एक संतुष्टि का भाव होता था। खंडवा में रहकर भी दादा अपने गाँव से कभी दूर नहीं रहे, बस रचना के पहले श्रोता बदल गए। अपनी पुस्तक जैसे ही प्रकाशित होकर आती, तो पहली प्रति बाई को देते थे, जो अपने इष्ट श्रीराम के चरणों में रखती थीं। फिर बड़े भाई, छोटे भाई और भतीजे नारायण को देकर माखन दादा को भेंट करने जाते थे। यह क्रम चलता रहा, जब तक माखन दादा रहे।

दादा के साथ हम परिवारजनों का भी सौभाग्य रहा। माखन दादा के लिए दादा का संदेशा या फिर कोई पत्र-पत्रिका ले जाना हो तो मैं एक फर्राटा लगाकर दौड़ जाती और उनका मौखिक या लिखित उत्तर लेकर आती। माखन दादा हमेशा बोलते थे, इतनी भी तेजी से आने की क्या आवश्यकता रहती है, मन्द गति से आने-जाने में संदेश थोड़ी ही बदल जाता है। फिर हँसते हुए कहते थे, तू तो सूत कातते हुए भी आना-जाना कर सकती है। दादा को पता था कि मैं शाला आते-जाते समय हाथ से सूत बनाती जाती थी। ये सूत हम खादी भण्डार में दे देते थे। माखन दादा के घर जब भी कोई साहित्यकार आता, तो बुलावा भेजते, रामनारायण जल्दी आ जाओ। और दादा भी चलते-चलते पैरों को जूतों में डालते हुए, बाई को कह जाते भोजन बनाकर रखना। देश के प्रकाण्ड विद्वान साहित्यकारों ने हमारे घर के चूल्हे के सामने नीचे आसन पर बैठकर बाई के हाथों की नरम-नरम फुल्का रोटी और जुवार का रोटा खाया।

खण्डवा में तुलसी जयन्ती का विशाल साहित्यिक आयोजन होता था। माणिक वाचनालय में तीन दिवसीय आयोजन होता था। देश के मूर्धन्य विद्वान साहित्यकारों की परिचर्चाएँ और कवि सम्मेलन होते थे। साहित्यिक आयोजनों में दादा हम बच्चों को भी साथ ले जाते थे। उनका कहना था, 'अभी कुछ समझ न आये पर बड़े होकर जब कभी साहित्य की चर्चा होगी, तो तुम्हारे भीतर डाला गया यह बीज फल'-फूल उठेगा।

साहित्यिक वातावरण के बीच, मैं कविताएँ लिखने लगी थी। घर में किसी को इसकी खबर नहीं थीं। बिना किसी को बताए मैंने चुपचाप से 'कर्मवीर' में प्रकाशन के लिए भेज दीं। कर्मवीर में प्रकाशित हो और किसी को ख़बर न हो ऐसा हो ही नहीं सकता था। दादा ने भी पढ़ी। उन्होंने मुझे तुरन्त कुछ कहा नहीं। नवनीत सहित और अन्य प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में मेरी कविताएँ, लोक कथाएँ और लघुकथाएँ प्रकाशित हुईं। कुछ दिनों के बाद दादा ने मुझे कहा कि तुम्हें लोकगीतों और लोकसाहित्य पर काम करना है। कविता लिखने से बहुत बड़ा काम लोक साहित्य का है। उस दिन के बाद से मैंने शायद ही कभी कविताएँ लिखीं होंगी। दादा की हिदायत के बाद मेरी वो सब प्रकाशित कविताएँ कहाँ गईं मुझे कुछ याद नहीं रहा और न ही मैंने कभी उन पत्र-पत्रिकाओं को खोजने का प्रयास ही किया। मेरे विवाह के बाद एक बार दादा ने मेरे सिर पर एक हाथ रखकर दूसरे हाथ से मेरे हाथों में खाकी रंग से जिल्द किए हुए कागज़ मुझे दिए। दादा ने अपने हाथ से जिल्द बनाई थी। उस जिल्द के कागज़ों पर मेरी कविताओं की कतरने चिपकी हुईं थी। हरेक कागज़ पर दो कतरनें थी। उन क्षणों याद करते हुए मैं रो पड़ती हूँ। वो जिल्द अभी भी मेरे पास है।

पुन: दादा और उनके साहित्यकारों के लोक के बीच लौटकर आती हूँ। एक बार में तुलसी जयन्ती कार्यक्रम में पंडित विद्यानिवासजी मिश्र भी आये थे। दादा ने कहा, पण्डितजी घर चलिए। मिश्रजी ने कहा ऐसा कहकर आपने मुझे छोटा कर दिया। मैं तो तुम्हें अपनी आँखों में बाँधे था, कि कब समारोह समाप्त हो और आपके साथ चलकर उस स्थान को प्रणाम करूँ जहाँ से इतना ललित उपजता है। दादा ने मिश्रजी का हाथ पकड़कर अपने सिर से लगा लिया। घर में बाई ने पीतल की चम-चम थाली में लड्डू व पापड़ी (बेसन के पापड़) सेंककर दी। दादा ने कहा आप स्वयंपाकी हैं। तो बाई ने पूछा पपीता खायेंगे? मिश्र जी ने हामी भरी। वो पपीता भी दादा और मिश्रजी कार्यक्रम स्थल से पैदल घर आते समय लेते हुए आये थे। अब इतनी धीरज कहाँ, दादा भीतर जाकर स्वयं ही पीतल की थाली में धोकर पपीता और चाकू ले आये और कहा, पण्डितजी लीजिए, यह भी स्वयंपाकी है (पेड़ का पका है)। तेज ठहाके के साथ कमरा गूँज उठा। दादा ने थाली उनके सामने रखी तो मिश्रजी ने कहा, भाई मैं स्वयंपाकी हूँ, स्वयंकाटी नहीं। एक बार फिर ठहाका लगा। फिर साहित्यक चर्चाओं का दौर चलता रहा।

खण्डवा के कई साहित्यिक आयोजनों में भवानी प्रसादजी मिश्र आते थे, तब गेस्ट हाउस में रुकने की व्यवस्था करने वाले आयोजकों से वे कहते थे, मैं गेस्टहाउस का आदमी नहीं हूँ, मैं तो परिवार का आदमी हूँ, परिवार के बीच ही रहूँगा। वे सदा हमारे साथ घर पर ही ठहरते थे। एक तख़्त पर दोनों दादा, भवानी दादा और हमारे दादा। न जाने कब सोते थे, न जाने कब तक बातें करते थे, ठहाके लगाते रहते थे। एक बार भवानी दादा को बुख़ार आ गया, तो वे पाँच दिन रुके। जैसे ही बुखार उतरता, वे कहते किसकी क्या फरमाइश है, और वे भावमय हो कविता कहते थे। वे दादा से कहते थे, भाई, मुझे कविता सुनाने का जितना सुख मंचो पर नहीं होता, उससे कहीं अधिक आत्मीय सुख तुम्हारे परिवार में बैठकर सुनाने से होता है।

यह संयोग रहा ही रहा, उसी समय हमारी बाई को भी बुख़ार आ गया। जब भवानी भाई का बुखार उतरा तो उन्होंने पूछा, पूछा तुम्हारी माँ नहीं दिखाई दी। हमने कहा, उन्हें भी बुखार है। तो वे बोले चलो भी एक बुखार वाला दूसरे बुखार वाले से नहीं मिलेगा तो कविता कैसे बनेगी? और वे दूसरे कमरे में बाई से मिलने गए। मालूम नहीं ये सब साहित्यकार, सहज संवेदनशील रहे, तभी तो साहित्यकार है। जो दूसरों का दर्द अपना ही समझते हैं। उन्होंने कहा, चलो भाभी, बुख़ार देवर का गया तो भाभी का

भी जाना चाहिए।

भवानी दादा घर-परिवार में ठहरने की बात करते थे, ऐसे ही आदरणीया महादेवीजी वर्मा का भी घर पर ही रुकने का आग्रह था। एक साहित्यिक आयोजन में खण्डवा आने पर महादेवीजी ने आयोजकों से कहा, कि जहाँ मेरे भाई का घर हो, तब मैं गेस्टहाउस में क्यों रुकूँ। दादा उन्हें अपने घर लाने के लिए गए भी, लेकिन आयोजकों ने यह कहकर महादेवीजी को मना लिया कि कई स्थानों से साहित्यकार आए हैं, जो आपका सानिध्य और आशीर्वाद चाहते हैं। साहित्यकारों की इच्छा का सम्मान करते हुए वे गेस्टहाउस में रुकीं। लेकिन व्यस्तता के बीच में से समय निकाल कर हमारे परिवार के साथ पर्याप्त समय बिताया। मंच की औपचारिकताओं के परे, उन्होने दादा को पूरे समय अपने साथ ही रखा। खण्डवा से इंदौर एक अन्य कार्यक्रम के लिए कार से गईं तब भी दादा को साथ लेकर गई। महादेवी जी ने कहा, मेरा एक भाई प्रेमचंद था, दूसरा यह रामनारायण, लोक के निर्मल रंग में मगन गवई भाई। इसी गवई मन के कारण हमारे घर महान साहित्यमूर्तियों का पदार्पण हुआ।

दादा को एक बड़ा शौक था—पत्र लेखन का। उन दिनों फोन आदि की इतनी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं। दादा का मानना था कि पत्र के माध्यम से मन-से-मन की बात हो जाती है। सुबह उठकर दादा बहुत सारे कार्ड लिखते थे। उन दिनों डाक दो समय आती थी। डाकिया चिट्ठी लेकर घर आए, उसके पहले ही दादा डाकघर पहुँचकर अपनी डाक लेकर आ जाते थे और पत्र पढ़कर तुरंत उत्तर लिखकर पोस्ट ऑफिस में डाल आते थे।

दादा की पुस्तक मिलने पर हरिवंशरायजी 'बच्चन' का पत्र आया। बच्चनजी ने पत्र में लिखा,

पुस्तक 'धुंधले काँच की दीवार' मुझे समय पर मिल गई थी और मैं उसे पूरा पढ़ भी चुका हूँ। अभी निमाड़ के गीतों का नशा उतरा ही नहीं था कि आपकी यह दूसरी रचना मुझे पढ़ने को मिली। पुस्तक उठाकर छोड़ना मुश्किल हो गया। बहुत बार तो जोरों की हँसी रोकना भी मुश्किल हो गया। अकेले में यह हँसी कौतूहल का विषय भी बनी।...आपके व्यंग्य में कटुता का कोई भी आभास नहीं मिलता। व्यंग्य की यह सबसे बड़ी सफलता है। बड़े लम्बे पत्र होते थे उनके। उनके हस्ताक्षर ऐसे रहते थे जैसे अंग्रेजी में 'गुड' लिखा हो। प्रख्यात साहित्यकार और चिंतक श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' एक पत्र में लिखते हैं, प्रियवर, चिट्ठियाँ लिखने के मामले में अब बहुत पिछड़ जाता हूँ, फिर ऐसी स्थिति में लिखने बैठता हूँ, तो आपके जिस पत्र का उत्तर देना होता, उसे दो-तीन बार पढ़कर अभिभूत होकर रह जाता हूँ। और कुछ लिख नहीं पाता हूँ।

दादा का स्वभाव था, उषाकाल में जल्दी से उठकर, स्नान करके लिख पढ़कर डाकघर पहुँच जाते थे, क्योंकि डाकिया को कई जगह डाक बाँटते-बाँटते हुए हमारे घर आने में आधा-पौन घण्टा बीत जाता था। डाकघर में चिट्ठियों के डाक टिकटों पर डाकिया के द्वारा सील-ठप्पे लगाते ही दादा, अपने पते रामनारायण उपाध्याय, साहित्य कुटीर, ब्राह्मणपुरी, खण्डवा के नाम की सारी डाक साथ ले आते थे। हमारे आठ-दस किरायेदारों की डाक भी इसी नाम पते से आती थीं। उन सभी किरायदारों की डाक रोज़ नहीं आती थी। दादा किरायेदारों की डाक भी लेकर आते थे। दादा को घर में सभी कहते थे कि आप रोज़ सुबह से डाकघर जाकर डाक लाते हैं, फिर भी डाकिया अड़ोस-पड़ोस की चिट्ठी-पत्री लेकर तो आता ही है। आधा-पौन घण्टे का अन्तर पड़ता है बस, तो सुबह से डाकघर तक जाने की क्या आवश्यकता है? दादा कहते थे, यह तो कालमुखी की आदत है। साथ ही सुबह से रास्ते में सभी के हाल-चाल लेते हुए आता हूँ तो संतोष मिलता है।

दादा का संसार केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं था, अपितु देश के स्वतंत्रता संग्राम और ग्राम विकास में योगदान उनके कृतित्व का एक और प्रबल पक्ष है। यहीं पर अतिसंक्षेप में हमारी पारिवारिक पृष्ठभूमि का उल्लेख भी करना उचित होगा।

जातू भाई गाँव कालमुखी के प्रतिष्ठित मालगुजार पंडित सिद्धनाथ उपाध्याय की तीन पुत्रोंवाली संतान में बीच के थे। बड़े पुरुषोत्तम (बाबू भाई), दूसरे रामनारायण (जातू भाई), तीसरे शिवनारायण (शिवा भाई)। बड़े भाई पिता की मालगुजारी में हाथ बँटाते थे। छोटे भाई खेती-बाड़ी का काम-धंधा देखते थे और जातू भाई इन सब से परे अपनी दुनिया, लिखना-पढ़ना एवं स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों में सहभागी होते थे। मेरे पिता शिवाभाई (शिवनारायणजी उपाध्याय- बाबूजी) और नन्दबाबा-से पिता रामनारायणजी उपाध्याय (दादा) और माता सुभद्रा (छोटी बाई) और 'यशोदा-सी' शकुन्तला (बड़ी बाई) ने अनन्त स्नेह दिया।

दादा का बचपन बड़ा रोचक और सुखद घटनाओं से भरी था। किन्तु उनको किशोरावस्था से ही अस्थमा की तकलीफ़ बहुत ज्यादा होने लगी थी, जो आषाढ़ मास से शुरु होती थी और कार्तिक मास तक चलती थी। यह तकलीफ़ शाम के बाद बहुत अधिक बढ़ जाया करती थी। दादा की उम्र के साथ रोग बढ़ता गया। रात में हम बच्चे दादा की पीठ और सीने पर तेल मालिश करते थे, जिससे उन्हें श्वास लेने में कुछ सरलता होती थी। दादा को आराम मिलने पर हम उनसे उनके बचपन और किशोरावस्था की बातें सुना करते थे। दादा सुनाया करते थे, देश की स्वतंत्रता के बहुत पहले की बात है। मैं, मोठा भाई (पुरुषोत्तम उपाध्याय) और छोटा भाई शिवा (शिवनारायण) तीनों खण्डवा पढ़ने के लिए भेजे गये। वहाँ हमारे लिए भाईजी (पिताजी) ने घर खरीदा। एक नौकर भी था, जो हमारे बस्ते हमारी शाला से लाता और ले जाता था। भाभी (माँ) तो नहीं आ सकती थीं। भाईजी को मालगुजारी की जिम्मेदारी देखनी होती थी। तब हमारी एक मावसी हमारे भोजन-पानी के लिए हमारे साथ रहती थी। वो हमें माँ के जैसे ही लाड़ करती थीं। हम लोग ज़री के कुरते-टोपी, कान में मुरकी बाली, हाथ में सोने का कड़ा पहनते थे।

हमारे साथ अंग्रेज़ अफसरों के बच्चे भी पढ़ते थे। जो हमारी बालियों को औऱ हमारी मालाओं को हाथ लगाकर पूछते थे, यह गोल्डन हथकड़ी है क्या? कभी-कभी अंग्रेज़ मास्टर भी भारतीय बच्चों के साथ अच्छा सलूक नहीं करते थे। हमारे मन में अंग्रेज़ों के प्रति बड़ी टीस उठती थी। कई बार अंग्रेज़ मास्टर हमारे सवालों के उत्तर न देकर कहते थे, बैठ जाओ अपने पिता की जागीरदारी सम्हालना, क्या करोगे पढ़ लिख कर। यह पढ़ाई इंडियन के लिए नहीं है। तभी मेरे मन में एक आक्रोश ने घर कर लिया। मैं कटनी रोपनी की (दिसम्बर) की छुट्टियों में कालमुखी आया तो मैंने अपने पिताजी से कहा, भाईजी, मुझे पढ़ते-लिखते आ गया है, अब मैं खण्डवा की शाला में तब तक पढ़ने नहीं जाऊँगा जब तक कि अंग्रेज़ हमारे देश से नहीं चले जायँगे। पहले तो भाईजी ने समझा कि मेरी यह पीड़ा आक्रोश क्षणिक है। किन्तु भाभी ने कहा तीनों भाई अब खण्डवा पढ़ने नहीं जायँगे। उनके अंग्रेज़ मास्टर कहते हैं, टोपी मुरकी पहन कर स्कूल मत आओ और अपशब्द कहते हैं। और मोठा भाई तीन क्लास और दो क्लास अंग्रेज़ी यानी छठवीं पढ़कर और शिवा एक क्लास अंग्रेज़ी पढ़कर खण्डवा का स्कूल छोड़ आए। भाईजी भी समझ गये थे कि हमारे हृदय में अंग्रेज़ों के दुर्व्यवहार ने घर कर लिया है और इन परिस्थितियों में लड़कों को खण्डवा अकेला छोड़ना उचित नहीं है। सो मोठा भाई, शिवा और मैं तीनों खण्डवा के अंग्रेज़ी स्कूल की पढ़ाई छोड़कर कालमुखी आ गये। आगे की पढ़ाई व्यवहारिक और अनौपचारिक रूप से हुई। हमारे काका पंडित रामचरण उपाध्याय रात को पढ़ाया करते थे। वे बहुत अच्छी संस्कृत, अंग्रेजी और मराठी पढ़ाते थे। हमारे भाईजी का स्वास्थ्य ख़राब रहने लगा था, अतः काकाजी रामचरणजी और मोठा भाई उनके प्रशासनिक कार्यों में सहायता करते थे। भाईजी की सात गाँव की जागीरदारी थी तो काम भी बहुत फैला हुआ और लम्बा-चौड़ा था। हर सप्ताह वसूली कुर्की और न्यायिक कार्यो की जानकारी या तो धनगाँव थाना पहुँचाना पड़ता था या स्वयं अंग्रेज़ों के प्रशासनिक अधिकारी घोड़े पर सवार होकर आ जाते थे। अतः बड़ा सतर्क रहना होता था। मोठा भाई उसमें लग गये, शिवा छोटी उम्र में ही खेती किसानी के काम में नौकर-चाकरों की देखरेख करने लगा। अकेला मैं ही कुछ नहीं करता था। मेरा मन नहीं लगता था घर संसार के कामों में। मुझे लगता था क्रान्तिकारियों की सेना में भरती हो जाऊँ। सो मैं कालमुखी से आठ मील दूर निमाड़ खेड़ी रेलवे स्टेशन, कभी चुपचाप, कभी किसी की बैलगाड़ी से, कभी किसी के साथ घोड़े पर या कभी साइकिल से या फिर कभी-कभी पैदल ही चले जाता था और रेलगाड़ी आने के समय पर पहुँच जाता था। वहाँ से डाक भी लाता था क्योंकि कालमुखी में निमाड़खेड़ी डाकघर ही लगता था। मैं भी पत्र लिखने लगा। स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े सेनानियों को पत्र लिखता था। मेरे पत्र के उत्तर भी आते थे।

मेरे मामाजी के बेटे सुकुमार पगारे, प्रभाकर पगारे, डोंगरे मेरे को गाँधीजी के आन्दोलन की गतिविधियों से अवगत कराते रहते थे। सुकुमार भाई का लालन-पालन कालमुखी में ही हुआ था। बाद में वे अपने पिता के पास इटारसी चले गये थे। इटारसी एक बड़ा रेलवे जंक्शन था। चारों दिशाओं में पहुँचने के लिए रेलगाड़ियाँ बदलने के लिए स्वतंत्रता सेनानी यहाँ गाड़ियों की प्रतीक्षा करते थे। वे सभाएँ भी करते थे। उनसे लोगों को हिम्मत मिलती थी। लोग भी निर्देशन लेने के लिए उनसे मिलते थे। उस समय तक सुकुमार भाई दो-तीन बार जेल जा चुके थे। वे ठक्कर बप्पा के आश्रम में रहते थे। मैं सुकुमार भाई से बड़ा प्रभावित हुआ औऱ उनके परामर्श से स्वतंत्रता आन्दोलन का काम करने लगा। वे कहते थे, तू गाँव में सेना तैयार कर। अवसर आने पर तुझे संगठन से जोड़ लूँगा। दादा फिर से कालमुखी में सक्रिय हो गए।

दादा ने कालमुखी में अपने गुर्जर किसान भील भाई की एक स्वतंत्रता सेना तैयार कर ली थी। जैसे कहते हैं कि श्रीराम ने रावण पर विजय पाने के लिए बड़े से बड़े और छोटे से छोटे लोगों को एक साथ जोड़ा। उसी सहयोग और समर्पण से लंका पर विजय पाई। उसी तरह देशभर में अंग्रेज़ी शासन से स्वतंत्रता पाने के लिए अंग्रेज़ों के विरुद्ध ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में क्रान्तिकारियों की टोलियाँ संगठित हो रही थीं। दादा ने अपने सखाओं चम्पालाल भाई, छोगीलालकर, जीवन वग्सावाळे, हरीभाऊ केळवा आदि ने मिलकर एक टोल तैयार कर लिया था जो गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में भागीदारी के लिए और अंग्रेज़ों के शासन के विरुद्ध कुछ भी करने तो तैयार थे। यह संगठन बड़ा गुप्त रूप से बना। यहाँ तक कि दादा बताते थे कि उनके छोटे और मोठा भाई के अलावा किसी को भी घर में इसके विषय में जानकारी नहीं थी। किन्तु जाने कैसे धनगाँव के थाने में इसकी सूचना पहुँच गई।

एक रात दादा के मित्रों ने योजना बनाने के लिए बन्द कमरे में बैठक बुलाई। जिसमें आस-पास के गाँव के स्वतंत्रता सेनानी भी आये। बन्द कमरे की चर्चा में दादा ने सबको कहा- जा के राज न प्रजा सुखारी, ते नर अधम के अधिकारी।

इस गुप्त बैठक और दादा के भाषण में बोले गए इस दोहे की सूचना धनगाँव थाने में पहुँच गई। वहाँ से थानेदार घुड़सवार चार सैनिकों को लेकर आये। दादा को पकड़कर भाईजी के सामने खड़ा कर दिया। थानेदार ने भाईजी से कहा, महाराज आप भले आदमी है, आपका यह बेटा अंग्रेज़ों के प्रशासन के विरुद्ध सभा करके लोगों को भड़का रहा रहा था। आपके व्यवहार को देखकर छोड़ रहा हूँ। आप समझा लो वरना जेल में ठूँस दूँगा, देड़ पसली का तो धरा है और अंग्रेज़ों को उखाड़ने की बात कर रहा है।

दादा ने आगे बताया कि भाईजी ने मेरे तरफ देखा तो मैंने सिर झुका लिया। मुझे बुरा इसलिए लगा कि मेरे कारण भाईजी को थानेदार की दो बात सुननी पड़ी। किन्तु भाईजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा। उनका मौन ही मेरे को बहुत कुछ कह गया। मेरा मन अंग्रेज़ों के विरुद्ध और भड़क गया।

मैं कुछ दिन अपने कक्ष में अध्ययन करता रहा। उनके सामने नहीं

गया। मैंने मेरे मोठा भाई से कहा आप और शिवा दो भाई हो, काकाजी हैं भाईजी के काम में सहयोग के लिए। मुझे छोड़ दो देश के लिए। मोठा भाई ने कहा, तुम समझते नहीं हो, दर असल भाईजी चाहते हैं, तुम इस ज़मींदारी के मेहनतभरे काम से मुक्त रहो। उन्हें और हम सभी को केवल तुम्हारे स्वास्थ्य की ही चिन्ता है।

दादा सुनाते थे, बचपन में एक बार मैं बहुत अधिक बीमार हुआ, किसी भी औषधि का लाभ नहीं हो रहा था। तब मेरी आजी ने कहा, 'जा तू'। और मैं स्वस्थ होने लगा। तभी से लोग मेरा एक नाम जातू हो गया। मान्यता रही है कि इस तरह बोलने से व्यक्ति को रोगों या कष्टों से राहत मिल जाती है। किन्तु मेरी लगातार शारीरिक रुग्णता का परिणाम यह रहा कि मैं कमज़ोर काठी का ही बना रहा। इसलिए भाईजी ने मुझे क्रांतिकारी आन्दोलन में जाने की अनुमति नहीं दे रहे थे। यद्यपि वे मन्तक-मन्तक चाहते थे कि अपना देश अंग्रेज़ो की गुलामी से मुक्त हो जाय।

दादा कहते थे, मैं मोठा भाई का बड़ा प्यारा था। मैंने मोठा भाई को मना लिया था। उनका सम्पर्क क्षेत्र बहुत व्यापक था। उन्होंने मेरे कहने पर मुझे चुपचाप निमाड़ खेड़ी स्टेशन पर रेलगाड़ी के समय पर भेज दिया, जिस दिन गाड़ी में गुप्त रुप से स्वतंत्रता संग्राम सेनानी जा रहे थे। किन्तु इतनी गुप्त रूपरेखा जाने कैसे भाईजी को पता चल गई और मेरे स्टेशन पहुँचते ही लेकिन रेलगाड़ी के आने के संकेत के पहले ही मुझे पकड़कर बैलगाड़ी में बैठाकर कालमुखी वापस ले आये। घर आकर बाद में मैंने मोठा भाई से कुछ सवाल किए, किन्तु उन्होंने यही कहा कि मेरे एक कान की बात दूसरे कान को भी नहीं मालूम, मुझे नहीं पता इतना खुफिया हमारे घर में कौन है।

दादा खादी का कुरता-धोती पहनते थे। दो जोड़ ही रखते थे। कि देश गरीब है, गाँधीजी के आदर्शो के सच्चे अनुयायी होने के कारण दो जोड़ से अधिक कपड़े नहीं रखते थे। हो सकता है, घर में अन्य कपड़ों के बीच सूखते मेरे कपड़े नहीं दिखाई दिये होंगे और इसी आशंका से निमाड़खेड़ी गाड़ी भेजी होगी।

दादा कहते थे कि फिर कुछ दिन मैं शान्त रहा, किन्तु डाक लेने निमाड़ खेड़ी अवश्य जाता था। एक बार अपने कृष्णराव पारे मामाजी के घर नागपुर जाने की इच्छा ज़ाहिर की। तो भाईजी ने कहा जाओ। पारे मामाजी, राधाकृष्ण के भक्त थे, और आयुर्वेद की किसी कम्पनी में काम करते थे। किन्तु दादा नागपुर उनके घर न जाकर वर्धा चले गए। उन दिनों गाँधीजी वर्धा के अपने आश्रम में थे। गाँधीजी प्रार्थना से निवृत्त हुए तो दादा ने उन्हें प्रणाम किया और निवेदन किया कि मैं निमाड़ के कालमुखी से आया हूँ। आपके आश्रम में रहकर सेवा करना चाहता हूँ और स्वतंत्रता संग्राम में सक्रियता से काम करना चाहता हूँ। मुझे कार्य सौंप दीजिए। गाँधीजी ने कहा, भाई गाँव में रहकर गाँव की सेवा कीजिए। गाँव की सेवा भारत की सेवा है। गाँव से स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की मदद करें। यही मेरे आश्रम की सेवा है। आपको यह जवाबदारी सौंप रहा हूँ। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की सेवा ही देश सेवा है।

दादा कहते है, तभी मैं कालमुखी में रहकर गुप्त रूप से स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की मदद करता रहा और ग्रामीण पिछड़ी बस्तियों में सेवा कार्य अपने सहयोगियों की मदद से करने लगे। इन्दौर से खण्डवा और खण्डवा से इन्दौर जाने वाले स्वतंत्रता संग्राम सेनानी जंगल के रास्ते केळ्वा अटूद होते हुए कालमुखी आते थे। यहाँ पर दादा अपने मित्रों के साथ उनकी भोजन और ठहरने की गुप्त व्यवस्था करते थे। आवश्यकतानुसार कुछ आर्थिक मदद भी करते थे। फिर किरगाँव के जंगलों के रास्ते कभी अतर टेमी के जंगल तो कभी हीरापुर के जंगलों के रास्ते सुळगाँव नागचून होते हुए खण्डवा पहुँचते थे। इन्दौर से श्रीराम आगरकर तो खण्डवा के इदर से लक्ष्मण डासौडी आदि आने जाने वाले होते थे। मार्ग पर मदद के लिए भैया लाल बाबूलाल सोनी सबको लाते ले जाते थे। खण्डवा भी गढ़ बन गया था। भैसावां से भास्कर राव चौरे तो खण्डवा से माखनलाल चतुर्वेदी, वैद्यनाथ महोदय, अमोलकचन्द जैन, वाँचू बाबू थे। सिद्धनाथ महोदय, बाबूलाल तिवारी। रायचन्द नागड़ा ने डोंगरगाँव वन सेना की अगुवाई की। इस वन सेना को आदिवासियों के सहयोग ने अधिक सशक्त बना दिया था। सभी सेनानियों से दादा का मिलना-जुलना और आवश्यकता पड़ने पर मदद पहुँचाने का प्रबंध करते थे।

दादा को दम चलता, तेज़ हाँफा भरता था, तो उन्हें भी तकलीफ कम हो और अकेला बुरा न लगे इसलिए हम उनके लिए जागते रहते थे। सुनसान रात में हमको भी बुरा न लगे इसलिए दादा हाँफते-हाँफते सब सुनाया करते थे। वो कहते थे, कि स्वतंत्रता आन्दोलन की यादों से उनकी हिम्मत बढ़ जाती है और दम चलने के बाद भी आराम मिलता है। दादा कहा करते थे कि इस दम से मेरा लेखन दमदार बना है। विनोद में दादा कहा करते थे, मैं दमदार आदमी हूँ। मैं और मेरा जीवन गाँव, गाँधी और दम का ऋणी रहेगा, जिन्होंने मुझे सद्‌विचारों की ओर अग्रेषित किया। दादा ने अपनी बीमारी को भी अपनी ताकत बना लिया था।

दादा कहते थे कि मेरे गुरु गाँधीजी ही हैं। और गाँधी और उनके आदर्श ही मेरा गुरु मंत्र हैं।

गाँधीजी से मिल सका और गाँव को अपना ध्यान केंद्र बनाया तो मेरा मन संतुष्ट है। यह दम नहीं चलता तो शायद मेरे भाईजी मुझे गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में शामिल होने से नहीं रोकते। वे अंग्रेज़ों के अधीन मालगुजारी का काम करते थे, किन्तु आत्मा से वे बहुत बड़े देशभक्त और लगातार लोकहित के सेवाकार्यो के लिए मदद दिया करते थे। जो गरीब ज़रुरतमंद कर नहीं भर सकते थे, उन किसानों की ओर से लगान अंग्रेज़ों के खजाने में जमा कर देते थे। वही देश भक्ति का खून मेरी रगों में दौड़ रहा था, वे पचपन साल की उम्र में सन् चौंतीस में इस देह जन्म से स्वतंत्र हो गये।

दादा को बार-बार यह बात चुभती रही कि वो अगर अस्वस्थ न रहे

होते तो शायद सशरीर देश के काम आते। दादा का विवाह निमाड़ के बोरगाँव, असीरगढ़ के मध्य गाँव कुमठी के साध परिवार में हुआ था। दादा कहते थे, उस वनक्षेत्र के गाँव में भी गाँधी की आत्मा बसती थी। मैं जब भी कुमठी जाता था, मोठाभाई याने चम्पालाल गुर्जर से बिना मिले नहीं आता था। दादा ने कहते थे चम्पालाल भाई मूक सेवक थे और उन जैसे लोगों के कारण ही धर्म और मानवता जीवित है। दादा ने कहा मोठाभाई से मैंने बहुत कुछ सीखा।

दादा की पहल से कालमुखी और कई गाँवों में सड़क बनी, शाला, डाकघर, अस्पताल शुरु हुए और पशु अस्पताल तक खुल गया। कालमुखी के डाकघर के प्रभारी बड़े गुरुजी थे और शाला के चपरासी पतिराम मामा गाँव में डाक वितरित करते थे। किन्तु तब भी दादा अपनी चिट्ठी लेने स्वयं शाला के डाकघर पहुँच जाते थे।

यही डाक-चिट्ठी मेरे मन को बहुत व्यथित कर देती है। दादा अपने परिवार से बहुत खुश थे, किंतु मुझसे कभी-कभी बड़े नाराज हो जाते थे और कहते थे, ''तुमको क्यों पढ़ाया? चार वाक्य की चिट्ठी नहीं लिखते हो। मैं चिट्ठी लिखता हूँ तो जवाब नहीं देते हो?'' मैं कहती, ''दादा, बच्चे छोटे हैं, स्कूल भी जाना रहता है। घर के कामों से समय नहीं मिलता।'' तो वे कहते, ''मैं नहीं जानता। ये रखो, बीस कार्ड ला दिए हैं। हर सप्ताह मुझे चिट्ठी मिलनी चाहिए!'' और फिर भी मैं नहीं लिख पाती थी। शायद आलस या लापरवाही! आज मेरे बच्चे बड़े हो गए। नौकरी से भी निवृत्त हो गई हूँ। दादा को चिट्ठी लिखने को मन विह्वल है, किंतु आज उनका पता नहीं मालूम! जिस किसी को उनका पता मालूम हो, पता जानता हो, मुझे बता देना, मैं कार्ड पोस्ट कर दूँगी!

दादा चले कहाँ गए? यादों में हमारे बीच यहीं हैं। याद आता है कि दादा जब 'पद्मश्री' से अलंकृत हुए थे तो ग्रामीणजनों ने उनका लोक समारोह किया। उस समारोह में उपस्थित ज्ञानपीठ सम्मान से पुरस्कृत श्री नरेश मेहताजी भी थे। इस लोक सागर को देखकर वे बोले, ''बिना किसी आमंत्रण-निमंत्रण, न सरकारी आदेश, फिर भी इतना बड़ा जनसैलाब, अपने खर्चे से समारोह में उत्साह से पहुँचे!' मैं रामनारायण भाई के इस लोकानुराग के प्रति नतमस्तक हूँ। वे किसी लोक नायक से कम नहीं है। मेरा सिर बार-बार नतमस्तक हो रहा है।''

दादा के एक ग्रामीण सखा ने कहा, ''जातू भाई सिंगाजी जैसे गवलई, ओंकारजी जैसे भोला और निमाड़ी की माटी जसा सौंधी खुशबू वाला छे। उननेऽऽऽ निमाड़ी की सेवा करी, न निमाड़ सी उरिण हुया।''

इसी बात को विख्यात साहित्यकार डॉ. शिवमंगल सिंहजी ने भी बड़े सूत्र में कहा, ''रामनारायण भाई ने निमाड़ी की साधना की और निमाड़ को तीर्थ बना दिया।''

मेरे दादा को कोटि-कोटि प्रणाम।

संपर्क : 13, समर्थ परिसर ई-8 एक्सटेंशन बावड़िया कला,
पोस्ट आफिस, त्रिलंगा, भोपाल मोबा. 9819549984

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : **वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 300/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।**

-संपादक

एक युग, एक दादा

कंचन सुरेश चंद्र नेगी
(मंझली बेटी)

जब भी पूज्य दादा की याद आती है और उन पर कुछ लिखने बैठती हूँ, तो मन बादल असमंजस में पड़ जाता है क्या भूलू क्या याद करु, क्या लिखूँ, क्या छोड़ दूँ, किस स्मृति को समेटू और किसे यूँ ही बहने दूँ। क्योंकि हर एक स्मरण उनके साथ जुड़ी अनगिनत मीठी संस्मरणों की गंगा है।

मैं परिवार की पाँचवीं संतान थी वह भी एक बेटी के रूप में। दादा का स्नेह विशेष रूप से बेटियों पर बरसता था। कालमुखी गाँव के छोटे से संसार में, दादा को समझना हम नन्हे बच्चों के लिए किसी रहस्यपूर्ण खेल से कम नहीं था। यद्यपि घर में कई सदस्य थे, परन्तु सभी अपने-अपने कामों में व्यस्त रहते, और बच्चों से बतियाने का समय किसी के पास नहीं होता था। बस, दादा ही थे जिनसे बातें करने में हमें अपार आनंद आता था।

दादा का जीवन एक सुंदर संयोजन था एक ओर वे प्रात: और सायं पढ़ने-लिखने में लीन रहते। तो दूसरी ओर बच्चों के संग खेलने में भी उतनी ही तल्लीनता से रम जाते। उन्हें कागज-कलम हाथ में लेकर शाम को मुंडेर पर बैठना बहुत भाता था। वहाँ से वे दूर-दराज़ के आकाश को निहारते, मन ही मन मुस्कुराते, कुछ सोचते, फिर लिखने लगते। कभी रुकते, दूर क्षितिज को देखते, कुछ गुनगुनाते, और फिर लिखते चले जाते। हम छोटे-छोटे बच्चों के लिए यह सब किसी रहस्य से कम नहीं था। हमें कुछ समझ नहीं आता था कि दादा आखिर कर क्या रहे हैं। हम आपस में फुसफुसाते, हँसते और अनुमान लगाते कि दादा कौन-सी दुनिया में खोए हैं। लेकिन अब समझ में आता है वे क्षण, वे मौन मुस्कानें, उनकी दूर दृष्टि, सब कुछ उनकी आत्मा की गहराइयों से उपजा था, जहाँ निमाड़ की माटी और उनकी आस्था की जमीन से जुड़ी समग्र लोक साहित्य की शब्दों की एक सुंदर धारा बहती थी।

आज भी जब दादा की याद आती है, तो लगता है मानो वे चाँदनी भरी मुंडेर पर अब भी बैठकर कुछ लिख रहे हों हमारे लिए, अपनी स्मृतियों के लिए, और आने वाली पीढ़ियों के लिए।

हम छोटे थे, जिज्ञासु और चंचल। अक्सर बाई से पूछते बाई, दादा तो चाँदनी में मुंडेर पर बैठकर कुछ बड़बड़ाते रहते हैं, फिर कुछ लिखते हैं, फिर बड़बड़ाते हैं। आखिर करते क्या हैं? बाई मुस्कुराकर कहतीं उन्हें छेड़ना मत, वे लेखक हैं। बड़े-बड़े विचार लिखते हैं। तुम्हारी शरारतें उन्हें परेशान कर देंगी। लेकिन हमें तो बड़ा मजा आता था। हम भी उनके पीछे-पीछे मुंडेर तक पहुँच जाते। दूर तक क्षितिज को निहारते और दादा से मासूमियत से पूछते दादा, आपको क्या दिख रहा है? हमें तो कुछ भी नहीं दिखता !

दादा मुस्कुराते और कह उठते मुझे तो रेल दिख रही है, धुएँ के बादल उड़ा रही है। खेत दिख रहे हैं, जिनमें फसलें सिर हिला-हिलाकर बुला रही हैं।

हम हैरान होकर कहते दादा, हमें तो कुछ भी नहीं दिखता ! तब दादा समझाते कभी खेत में गए हो? कभी हौला-हम्बी खाई है? याद करो बेटा, सब दिखने लगेगा ! लेकिन धुंधले कांच की दीवार सा भी हमें तो कुछ भी नजर नहीं आता था। हम परेशान से होकर एक-दूसरे का मुँह देखते रहते। तब दादा हँसते हुए कहते अच्छा छोड़ो फिजूल की बातें।।। चलो, अब भूख लगने लगी है। बाई को तंग करते हैं। कुछ खाने को माँगते हैं !

फिर हम सब उधम मचाते हुए रसोई की ओर दौड़ पड़ते। कभी-कभी दादा का पेन गायब हो जाता। तो पूरे घर में हड़कंप मच जाता। दादा हर किसी से पूछते - मेरा पेन किसी ने देखा क्या? और जब पेन जनेऊ में अटका मिलता, तो हम सब खूब ठहाके लगाते दादा का पेन चुराने वाला कौन? यह सब हमारे बचपन के सबसे अनमोल पल थे।

दादा के पास जाने में किसी को कभी डर नहीं लगता था। वे बच्चों से लेकर बड़ों तक सभी से खूब गप्पें मारते थे। बाई कभी-कभी डाँटती क्या बच्चों के साथ ऐसे मजाक करते हो? तो दादा हँसते-हँसते मीठी चुटकी काटते और मुस्कुराकर कहते तो क्या अब तुम्हारे साथ मजाक करूँ? बाई शर्म से लाल हो जाती।

दादा कहते थे मेरी जिंदगी एक नाव की तरह है। नाव में चढ़ने वाले बढ़ते और घटते रहते हैं। बच्चे बड़े होते हैं, अपनी-अपनी नाव बनाते हैं और जीवन के महासागर में निकल जाते हैं।

बेटियों से दादा का स्नेह तो बस निराला था। जब भी किसी के घर कन्या जन्म लेती, दादा आनंद से कहते अरे, माया आई है। ममता आई है। बेटियाँ तो हमारी ममता की मूर्ति हैं। लड़के तो बड़े होकर शादी कर भाग जाते हैं, पर बेटियाँ तो हमेशा अपना प्यार बरसाती हैं।

लेकिन जब घर से कोई दूर चला जाता, दादा का दिल भीग उठता। कभी गुनगुनाते मिलते- एक बंगला बने न्यारा जिसमें हो कुनबा प्यारा जिसमें चढ़कर इंद्रधनुष को छुए लाल हमारा, एक बंगला बने न्यारा।

उनके भीतर एक सपना पलता था अपने परिवार का, अपने बच्चों का, अपने अपनों का, जो हमेशा साथ रहे। एक छत के नीचे, एक दिल के साथ। आज भी जब दादा की याद आती है, तो लगता है जैसे चाँदनी में उनकी छवि मुस्कुराती हुई बैठी है। और दूर कहीं एक रेल धुएँ के बादल छोड़ती हुई गुजर रही है।।।।

त्योहारों का नाम आते ही दादा जैसे किसी बच्चे की तरह उत्साहित हो उठते थे। मेरा घर उनके पास ही था। जैसे ही कोई पर्व आता, दादा बड़े प्यार से कहते आजा बेटा, मुझे टीका तो लगा दे। टीका लगते ही पैसे मेरी हथेली पर रख देते। और फिर बाक़ी सबके लिए भी त्योहारों की भेंट के पैसे अलग निकालकर संभाल कर रख देते। हँसते हुए कहते सबके त्योहार के पैसे मैंने संभाल कर रखे हैं, जब आओगे, तब दे दूँगा! राखी के समय फोन करते – कब आओगी? तुम्हारी राखी के लिए रास्ता देख रहा हूँ।।। जल्दी आ जाओ। नहीं तो सोने चला जाऊँगा!

तीज-त्योहारों पर घर देर रात तक गुलजार रहता। मिठाइयों बनतीं, बच्चे खेलते-खिलखिलाते। दादा बार-बार रसोई में झाँकते बनी कि नहीं? जब मिठाई तैयार होती। तो बच्चों को चुपके से रसोई में बिठा देते और बाई से कहते गरम-गरम मिठाई इनको खिला दो। बच्चे माँ के डर से चुप रहते, लेकिन दादा खुद मिठाई उठाकर खा लेते और मुस्कुराते हुए कहते – अब तो भगवान जी ने प्रसाद ले लिया। अब सब खाओ। फिर तो बच्चे भी मिठाई पर टूट पड़ते।

जब घर का कोई सदस्य बाहर चला जाता तो दादा का मन बेचैन हो उठता। वे तुरंत पत्र लिखने बैठ जाते। पत्र पोस्ट करते ही अगले ही दिन से उसकी राह तकने लगते आज तो चिट्ठी आ जानी चाहिए थी। जब दो-तीन दिन तक पत्र नहीं आता, तो दादा व्याकुल होकर घर में चक्कर लगाते, फिर बाहर दरवाजे पर जाकर डाकिए का इंतजार करते। तेज धूप हो या बारिश, दादा को कोई फर्क नहीं पड़ता उनकी आँखें बस डाकिए को ढूँढती रहतीं। यह डाक चिट्ठी -पत्री ही उनका जीवन थी।

देश भर से दादा के मित्रों, लेखकों, परिचितों के पत्र आते रहते थे। उनके पत्रों की मुस्कुराती फाइलें उनके अनुभवों और भावनाओं का अद्भुत खजाना थीं। हम सब भी उनके पत्रों को बहुत सँभालकर रखते। बड़े गर्व से कहते यह हमारे दादा के पत्र हैं। दादा ने हमें भी पत्र लिखे हैं उन पत्रों के शब्दों में दादा की आत्मा बसी थी स्नेह, ममता, अपनापन और वह विशुद्ध प्रेम। जो आज भी हमें अपने दादा की याद में भीगने को मजबूर कर देता है।

सिनेमा देखने के लिए जब हम पैसे मांगते, तो दादा जेब से पैसे निकालकर दे देते और अगर कम पड़ते। तो बड़ी बाई से दिलवा देते। दादा कितना ही जरूरी लेख क्यों ना लिख रहे हो अगर कोई मिलने आ जाए तो कागजों को एक और हटाकर बातें करने बैठ जाते अरे यह जो आदमी आया है इससे मिल चलो ना जाने किस रूप में भगवान मिल जाए। दादा छोटे-बड़े, पढ़े-लिखे या अनपढ़ सभी से समानता और अपनत्व से बातें करते थे। उनके साथ बैठने उठने में कोई भेदभाव नहीं था। वे हर किसी के साथ घुलमिल जाते थे। कभी हँसी-ठिठोली करते, तो कभी खाने-पीने में भी कोई संकोच नहीं करते। वे दमा के मरीज थे और कहते थे कि हँसना फेफड़ों के टॉनिक के समान है। ऐसे सरल, निष्कलंक हृदय वाले मामूली आदमी को क्या कहा जाए !

जब तक बाई जीवित थीं। दादा की शक्ति थीं। बाई के बीमार होने पर दादा ने उनकी सेवा जिस निष्ठा से की, वैसी सेवा शायद कोई जवान व्यक्ति भी न कर पाता। एक बार दादा भयंकर रूप से बीमार पड़े। तब बाई उन्हें लेकर इंदौर के अस्पताल गईं और केवल पाँच दिनों में दादा को स्वस्थ कराकर घर ले आईं। वह दिन वट सावित्री की पूर्णिमा का था। बाई के जाने के बाद दादा पूरी तरह से टूट गए कहते मेरी बीमारी में तुमने सावित्री की तरह यमराज से लड़कर अपने सत्यवान को बचा लिया, लेकिन जब तुम्हारी बीमारी आई तो मुझे अपने सत्यवान को बचा लेने का वह गर्व क्यों नहीं मिल पाया?

बाई के चले जाने के बाद दादा पूरी तरह से टूट गए। बाहर से वे सामान्य दिखते। वो क्रोंच की चीख सुनाई तो ना देती मगर उनकी उदास आँखें हमेशा किसी को खोजती रहतीं। कभी-कभी भावुक होकर कहते। देखो। सीता भी चली गई। एक दिन राम ने कहा, लक्ष्मण, सीता को गए अब दस वर्ष हो गए हैं। अयोध्या में कोई उन्हें याद भी नहीं करता। अंत में जब राम ने सरयू नदी में अपना देह त्याग किया, तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो सीता स्वयं लहरों की वरमाला लेकर उनका स्वागत करने आई हों। उन्होंने अपना सिर झुका लिया और इस तरह जनम-जनम के फेरे लिए राम और सीता फिर से एक हो गए एक युग एक आत्मा। दादा ने हम बच्चों को सिर्फ प्रेम ही नहीं दिया, बल्कि अपनी साहित्यिक धरोहर भी सौंप दी। हर नई रचना सबसे पहले घरवालों को सुनाते, कहते अगर इन्हें पसंद आ गई, तो सबको आएगी। अपनी हर पुस्तक बेटों, बेटियों, भाइयों, बहनों, मित्रों सभी को उपहार स्वरूप देते कहते, यह कोई किताब नहीं। इसमें मेरे प्राण हैं। कहकर सौंपते थे। और उन्हें काम पूरा होने का सुख तब ही मिलता जब तक हम पढ़ कर उस पर अपनी टिप्पणी न दे दे। वे केवल लेखक नहीं थे। संबंधों को जोड़ने वाली जीवित कड़ी थे। हमारे परिवार, हमारी पीढ़ियों को आपस में प्रेम से बाँधने वाले। एक बार हम गुजरात जा रहे थे अपने भाई के घर, रास्ते में ट्रेन

में एक सज्जन मिले पूछे कहां से आ रहे हैं हमने कहा खंडवा से उसने बड़ी जोर से कहा अच्छा तो दादा के नगर से आ रहे हैं?? हां दादा माखनलाल जी के नगर से। उन्होंने कहा नहीं नहीं रामनारायण उपाध्याय की साहित्य कुटीर के नगर से आ रहे हैं हमने कहा हां हम वहीं से आ रहे हैं। क्या आप उन्हें जानते हैं वह बोले हां मैं तो खंडवा में अपने सर्विस के चलते रहा हूं बहुत ही सरल गांधी विचारधारा से ओतप्रोत व्यक्ति हैं, प्रेमी आदमी है, साधारण से धोती कुर्ता पहनते हैं सबसे प्यार से मिलते हैं सबको घर जैसा आदर देते हैं।

उन्होंने कितनी किताबें लिखी है मुझे भी कुछ दी है जिन्हें मैंने गरीब के धान की तरह उसे संभाल कर रखा है मैंने उन्हें खूब पढ़ा है वह तो बहुत बड़े आदमी है पर बहुत ही सरल। मेरे पति ने कहा कि यह उन्हीं की बेटी है हम गुजरात उनके डॉक्टर बेटे के घर जा रहे हैं फिर तो अपनी सीट छोड़कर हमारे पास आ गए और दादा की बहुत सी बातें करते रहे उनकी किताबों के संस्मरण सुनाते रहे यात्रा की पगडंडियों में बातें जिनका सिलसिला टूट ही नहीं रहा था ऐसे हैं हमारे दादा।

हमारे दादा, जो हमारे पिता के बड़े भाई और हमारे बाप-दादा के दादा थे, उन्होंने हमें गोद में खिलाया, दुलार किया, पढ़ाया-लिखाया, हमारी शादी-ब्याह के सारे अवसरों में सहभागी बने, फिर भी हमें कभी नहीं भूले जिनकी छाया भी हमारे लिए सुखकर थीं। वे हमेशा हमें अपने मन में बसाए रखते थे। चाहे धूप हो, बारिश हो, दादा दरवाज़ा खटखटाते पापड़ी खिलाओ चाय पिलाओ! और हमारी छोटी बेटी तो उन्हें प्यार से पापड़ी वाले दादा कहने लगी थी।

22 जून को दादा ने हमें घर बुलाया। जब हम घर पहुंचे। तो उन्होंने मुझसे कहा, तुम सास बन गई हो। तो आती नहीं हो। मैंने उन्हें कहा, दादा। ऐसा नहीं है, मेरे घर भी सास हैं और मुझे उनकी सेवा करनी होती है। फिर उन्होंने कहा, मुझे गोली खिला दो। उस दिन दादा के सिर पर चोट की वजह से पट्टी बंधी हुई थी। मैंने कहा, आप तो साईं राम जैसे लग रहे हो। दादा मुस्कराए और बोले, अच्छा, मैं साई राम जैसा दिख रहा हूं बस। उसके बाद उन्होंने अपनी आंखें बंद कर ली, और हम सभी चुपचाप उन्हें देखते रह गए। हमारे लिए वो दूसरा सूरज बन गए जिन्हे हम भूल ना सकें

ऐसे थे हमारे प्रिय दादा, जो एक ओर 40 पुस्तकों के लेखक थे और दूसरी ओर एक सरल, सच्चे सज्जन, जिन्हें पद्मश्री पुरस्कार, साहित्य वाचस्पति भी मिला था। दादा 40 पुस्तकों के रचयिता, पद्मश्री सम्मानित लेखक, परन्तु जीवन भर एक साधारण धोती-कुर्ता पहनने वाले सरल हृदय इंसान। आज भी उनके प्रेम की ऊष्मा, उनकी सीख, उनके शब्द हमारे लेखन, गायन, नृत्य। जीवन और जब-जब भी निमाड़ गाता उस हर कोने में बसते हैं। हमारे दादा हमारे लोकजीवन के राम हमारे आदर्श, हमारे जीवन का अविचल प्रकाश।।।

संपर्क : 49, परमेश्वर -2, चांदखेड़ा,
अहमदाबाद, गुजरात 9998170903

दादा और मेरे बीच निःस्वार्थ त्याग की भावना थी।

हेमंत उपाध्याय
(मंझले बेटे)

भोपाल में सीधे मंत्री का दर्जा प्राप्त, लघु उद्योग निगम के अध्यक्ष, वो भी प्रदेश के मुख्य मंत्री माननीय प्रकाशचंद्र सेठी के खास श्री अमोलक चंद छाजेड़जी का मेरा, सीधे निजी सहायक होना दादा रामनारायण उपाध्याय व छाजेड़जी की प्रगाढ़ मित्रतावश कोई मुश्किल कार्य नहीं था। भोपाल में मंत्री स्तर का बंगला हो, पक्की नौकरी हो और कोई उसे छोड़ दे वो भी एक माह का वेतन जमा कर, व नयी नौकरी लाईन के गड्ढा खोदने के 5/- प्रति दिन दैनिक मजदूरी पर खंडवा में लग जाये, ये सहज त्याग करने वाला कोई और नहीं मैं खुद था। परिवार के बेटे डॉक्टर बसंत उपाध्याय व नाती श्री अशोक खेड़े की शादी छोड़ कर मेरे साथ, भोपाल में डॉक्टर हरि शंकर पारे साहब के यहाँ दादा ही रहे , क्योंकि भयंकर दुर्घटना के बाद रीढ़ की हड्डी क्षतिग्रस्त होने से यात्रा तो दूर मेरा बैठना भी संभव नहीं था। दादा और मेरे बीच इतना अधिक स्नेह व आदर था कि दादा के लिए मैंने पक्की नौकरी को कुर्ते पर लगी धूल के समान झटका दिया। उसके बाद के सारे सुअवसर छोड़ कर दादा के अंतिम समय तक, मैं दादा के साथ ही रहा। 20-6-2001 को दादा की सांस टूट रही थी, न्यास में योगेश्वर भगवान की आरती चल रही थी, दादा बात करते- करते बेभान हो गए और बेटा अनिमेष ऑटो लाया और दादा को लेकर हम शुभम हॉस्पिटल पहुँचे। मैं दादा के सिर पर हाथ रख शुभम हॉस्पिटल में गायत्री मंत्र का जाप कर रहा था। रात्रि 9.35 को प्राण

वायु के बाद भी दादा के प्राण नहीं बच सके, दूसरे दिन 21-6-2001 को संध्या सब परिजनों व दादा के निमाड़-मालवा के प्रसंशकों के बीच राजा हरिश्चंद्र घाट, खंडवा में हरिश्चंद्र की तरह सब कुछ त्यागने वाले गाँधीवादी व सत्य वक्ता को मैंने मुखाग्नि दी।

न्यास का गठन व संचालन- जीते जी दादा ने अपने कईं खेत-खलिहान व घर मेरे पिताश्री माने पुत्र तुल्य छोटे भाई शिवनारायण उपाध्याय के परिवार की खुशहाली के लिए सहर्ष बेच दिये। माताजी श्रीमती शकुंतला रामनारायण उपाध्याय की दिनांक 11-4-1987 को मृत्यु के समय एक छोटा सा खंडवा में मकान बचा था उसे 11 भाई-बहनों में कैसे बांटा जाए, इस संबंध में बड़े भाई ललित नारायण, पिता शिवनारायण उपाध्याय ने उन्हें माँ की स्मृति में पारिवारिक न्यास बनाने की सलाह दी, जो दादा को जम गयी एवं माता श्रीमती शकुंतला रामनारायण उपाध्याय की स्मृति में निमाड़ लोक सांस्कृतिक न्यास का गठन हुआ। दादा को पिता तुल्य मानने वाले तत्कालीन जिलाध्यक्ष आदरणीय श्री राघव चंद्रा साहब ने न्यास का उद्घाटन परिवार के सबसे छोटे बालक अनिमेष हेमंत उपाध्याय के हाथों करने की सलाह दी व 2-अक्टूबर 1998 को द्वीप प्रज्ज्वलित कर विधिवत उद्घाटन हुआ। इस न्यास के आजीवन सदस्य व अध्यक्ष दादा रामनारायण उपाध्याय रहे व 20-6-2001 के बाद श्री शिव नारायण उपाध्याय रहे। उनके बाद से भाई शिशिर के नेतृत्व में न्यास सुचारु रुप से संचालित हो रहा है।

दादा तखत व पैतृक घर, मुझे दे गये व बाकी भाइयों को खेत दे गये। दादा व परिवार जिस घर में रहते थे व जिस तखत पर देश भर के कईं प्रसिद्ध साहित्यकार एवं कविगण यथा भवानी प्रसाद मिश्र जी, विष्णु प्रभाकर जी, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी, नरेन्द्र कोहली जी, विद्यानिवास मिश्र जी, नागार्जुन जी, बालकवि बैरागी जी, धर्मवीर भारती जी, अज्ञेय जी सुकुमार पगारे जी, महादेव पगारे जी, बलराम पगारे जी, हीरानंद वात्स्यायन जी, भदंत आनंद कौसल्यायन जी, नर्मदा प्रसाद उपाध्याय जी, माणिक वर्मा जी एवं अन्य कईं विद्वान और कलाकार बैठे थे वो मुझे दे गए, उस तखत से ताकत पाकर मैंने लघुकथा संग्रह प्रकाशित कराया तखत की ताकत जिस पर मुझे लघुकथा श्री सम्मान मिला। साथ ही मैंने उस कक्ष को भगवान का मंदिर बना दिया, जहाँ सब साहित्यकारों व पूर्वजों की चरणरज सुरक्षित है। जो दादा व परिवार की स्मृतियों को आक्षुण्य बनाये रखता है, पर हम रोज पूजा के बाद भी उऋण नहीं होते। मैंने, मेरे लिए एक रुपये का भी गहना या सोना-चाँदी नहीं रखा, उसके बजाए दादा द्वारा बनाये न्यास व साहित्य को ही धरोहर मानकर सम्भाल रहा हूँ।

सम्पर्क : सचिव निमाड़ लोक संस्कृति न्यास,
खंडवा 7999749125/ 9425086246

ऐसे थे हमारे : रामा दादा

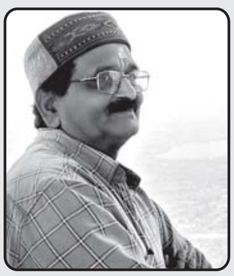

शिशिर उपाध्याय
(सबसे छोटे बेटे)

क्यूँ गाँव घर को छोड़ के

ये गीत की कहानी है , या कहानी का गीत है ,लेकिन है सब सच्चा- सच्चा। वर्ष 98,99 के आसपास जब खण्डवा के पास पंधाना क्षेत्र में भूकम्प के झटके आये तो, पूरा क्षेत्र दहल गया, एक बड़े भूकम्प के आने की बात कही, कईं प्रकार की बातें, कईं प्रकार के किस्से गढ़े गए, हास्य व्यंग्य हुए, लेकिन मैं इक दुचिंता में डूब गया। खण्डवा वाले घर मे आ. दादा, बाबुजी और बाई तीनो वृद्ध अकेले, क्या करूँ। भूकम्प आया तो कौन सम्भालेगा न जाने, क्या होगा, खबरें रोज मुखपृष्ठ पर थी , इतने रिएक्टर का आएगा। एक दिन सुबह बड़वाह से बस पकड़ी और खण्डवा पहुँचा आ. दादा , बाई बाबुजी को लेने, घर मे सब मेरे अचानक आने से चौंक गए। मैं ने कहा चलो बड़वाह, बोरिया बिस्तर बाँधों,आ. दादा ने हँसते हुए कहा, अरे भूकंप वगैरह कुछ नहीं आने वाला और यदि आया तो आये, ये कौन सी बात हुई की उस से डरें, यहाँ सब कुछ है, मेरे रिश्तेदार, मित्र, बालसखा, ये पूरा शहर और ये गाँव, सभी, ये सब खत्म हो जाएगा और हम बचे रहेंगे तो फ़िर ये जीना किस काम का, तू तो जा, हम इन सबको छोड़ कर नहीं जा सकते, मैं हतप्रभ उन्हें देखता रहा, उनका माटी से प्रेम , स्वजनों का साथ और दृढ़ इच्छा की जो होगा वो हम देखेंगे, मैं बस में आँसू भिगोते बड़वाह जा रहा था, कवि मन रो रहा था और गाए जा रहा था.. वो ही गीत सादर

गर आते हैं तो आने दो , भूकम्प के झटके,
क्यूँ गाँव घर को छोड़ के यहाँ -वहाँ भटकें,,
मंदिर है हमारा यहाँ, मस्जिद है हमारी,
माटी को न छोड़ेंगे , यही जिद है हमारी,
न बंद होंगे द्वार , गुरुद्वारे के घट के
क्यूँ, गाँव घर को छोड़ के,,
भोगी है हमने बाढ़ की , भादौ में मुश्किलें,
ओढ़ी थी हमने ठंड तो सरसों में गुल खिले,
बरसों बदन पे झेले हैं बैशाख के चटके,
क्यूँ गाँव घर को छोड़ के...
ये खेत हमारे हैं, ये खलिहान हमारे,

गौधन है हमारा,ये पशु प्राण हमारे,
पनघट ये हमारा ये पनिहारा ये मटके
क्यूँ गाँव घर को छोड़ के...
माँ, शारदा का मंदिर, वो मेरी पाठशाला ,
वो पेड़ इमलियों के, वो बाग आमों वाला,
हर चीज़ निराली है, सारे जहाँ
से हटके,
क्यूँ गाँव घर को छोड़ के,,,,
माटी के पूत हैं हम, माटी में मिलेंगें,
कल फिर से सुमन बन कर, बगिया में खिलेंगे,
शिशिर तू राह तकना , हम आयेंगे पलटके
क्यूँ गाँव घर को छोड़ के
यहाँ - वहाँ भटके ।

स्मरण आ. बड़ी बाई का अर्थात शकुंतला रामनारायण उपाध्याय का अनुशासन में जिसके घर था, नियम कायदा उसका स्वर था..

आ. बड़ी बाई श्रीमती शकुंतला रामनारायण जी उपाध्याय का निधन 11अप्रैल 1988 को हुआ। इसके एक साल बाद 27/11/1987 को आ. रामा दादा ने उनकी पुण्य स्मृति में अपने हिस्से का मकान दान देकर उस पर निमाड़ लोक - संस्कृति न्यास खण्डवा की स्थापना की, जिसके संरक्षक मंडल डॉ शिव मंगल सिंह 'सुमन' जी एवं खंडवा के तत्कालीन कलेक्टर श्री राघवचंद्रा थे। इसका स्वरूप पारिवारिक था किंतु इसमें सम्पूर्ण निमाड़ की गूंज थी, इसमें एक निशुल्क वृहत वाचनालय भी रखा गया। निमाड़ी लोक भाषा में जहां 1995 तक महज 5/6 पुस्तकें थी, न्यास ने लोक भाषाओं के लेखकों को प्रोत्साहित कर उन्हें गणगौर सम्मान से नवाजा जिसके फलस्वरूप 2006 में यह संख्या 40 के आसपास पहुँची। निमाड़ लोक - संस्कृति न्यास आ. दादा का बाई का प्रति लोक प्रेम का एक बड़ा स्मारक है। पश्चात दादा ने आ. बड़ी बाई की याद में एक हृदय स्पर्शी कविता क्रौंच की चीख भी लिखी जो साहित्य जगत में संवेदना की बड़ी कविता मानी गई।

आ. बड़ी बाई हमारे संयुक्त परिवार को जोड़ कर रखने की महत्वपूर्ण कड़ी थी वो। हमारे पिताश्री तीन भाइयों में सबसे छोटे थे, बरसों पूर्व जब बड़े भाई पं पुरुषोत्तम उपाध्याय अलग हुए तो बड़ी बाई और रामा दादा ने छोटे भाई के साथ रहना पसंद किया । आ. बड़ी बाई को दो संताने हुई थी जो शैशव काल में ही चल बसी। संयुक्त परिवार की नींव के ये पत्थर अपने ऊपर घर की दीवारों और उस पर बनी छत का बोझ सहज ही उठाते रहे । घर मे दीवारों में जब- जब दरारें दिखीं तब उन्होंने उन्हें मेटने का भी प्रयास किया , किन्तु जब नई दीवारें खड़ी हुई तो उन्हें भी उन्होंने सहजता से स्वीकारा।

आ. बड़ी बाई अर्थात ममत्व ,स्नेह ,प्यार और अनुशासन का अदभुत समावेश। आज हम जो हैं, उन्ही के आशीर्वाद से हैं, खास कर ये शिशिर तो गाँव का होकर ही रह जाता। आ बड़ी बाई के स्नेह में तिलिस्म था, 4 भाई और 5 बहनों में हर कोई यह समझता था कि बड़ी बाई उन्हें ही सबसे ज्यादा लाड़ - प्यार करती है । साहित्य की उसे बड़ी समझ थी, आ. दादा अपनी हर रचना उन्हें पढ़कर सुनाते थे , कई बार वो आवश्यक सुझाव और सुधार भी करने को कहती थी । नई पुस्तक आने पर आ. बड़ी बाई उसे माथे से लगा कर भगवान के सामने रख देती थी।

जैसे - जैसे बच्चे बड़े हए, वैसे - वैसे उनकी आवश्यकतानुसार, उसकी स्वर्ण मोतियों की माला, छोटी होती गई, हाथों के हिरण्य कंगन, काँच की चूड़ियों में बदलते गए, मगर चेहरे की दीप्ति बढ़ती गई। अगस्त 1985 में जब मेरा खंडवा से बड़वानी स्थानांतरण हुआ तो दो दिन तक उसे बताया नहीं तीसरे दिन आ. दादा ने उसे कचहरी में बुलाया, आ. बाई समझ गई बोली कोई गड़बड़ वाली बात है आ. दादा ने कहा मिंटू का ट्रांसफर बड़वानी हो गया है, वो मैनेजर बन कर जा रहा है, आ. बाई फफक - फफक के रोने लगी, मैं ने कहा मैं दो तीन साल में लौट आऊंगा, उसने कहा के डाल से उड़े पंछी और पत्ते टूटे तो फिर वापिस डाल पर नहीं लौटते, पूरा परिवार रो रहा था, और वही हुआ, आ बाई लंबे समय तक बीमार रही, फिर सात दिन तक कौमा में रही, जीवन - मृत्यु का संघर्ष चलता रहा, मैं खण्डवा से बड़वानी 190 कि.मी. दौड़ता रहा, बमुश्किल रिलीवर मिला, छुट्टी मिली, 11 अप्रैल को 1988 को बस से खण्डवा उतरा तो खबर लगी की बड़ी बाई नहीं रही,, बोझिल कदमों से घर की ओर बढ़ा चला, गली में भीड़ और घर में रुदन के दहला देने वाले स्वर, मैं लिपट कर उससे कह रहा था, उसी की बातें, तू सच कहती थी, जाने वाले पँछी लौटते नहीं,

कितना इंतज़ार किया होगा तुमने मेरे लौटने का,
मगर क्या करूँ समय की बेड़ियों ने जो कसा ,तो अब तक नहीं लौटा ,
आज भी तू याद आती है तो आंसुओं से भिगा जाती है मुझे
हम जनम -जनम तक ऋणी रहेगें आ. बड़ी बाई,

सम्पर्क : 9926021858

सहज - सरल समरूप स्नेही - दादा

जय श्री उपाध्याय
(छोटी बहू)

दादा पद्मश्री विभूषित पंडित राम नारायण उपाध्याय जी को मैं किशोर अवस्था से ही जानती और पहचानती थी, क्योंकि दादा खंडवा नगर साहित्य आकाश के दैदीप्यमान सितारे थे आप खंडवा की पहचान थे। फिर जब मैं ने अपने नीलकंठ महाविद्यालय खंडवा के एक साहित्यिक आयोजन में प्रत्यक्ष रूप से आपका व्याख्यान सुना तो मैं आपकी बहुत बड़ी प्रशंसक बन गई, क्योंकि मुझे साहित्य में रुचि बचपन से ही रही अत: साहित्यिक पुस्तकें लाइब्रेरी से लाकर पढ़ा करती थी। जब दादा की पुस्तक मन के मृगछोंने पढ़ी ,तब उसमें से बहुत से रूपक मन मस्तिष्क पर अंकित हो गए। लेकिन मैंने यह कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि आपका सानिध्य और आशीर्वाद मुझे अखंड मिलेगा। नील कंठेश्वर महाविद्यालय खंडवा में एमएससी रसायन की पढ़ाई करते-करते जब पिताजी ने मेरा रिश्ता दादा के परिवार के छोटे बेटे शिशिर उपाध्याय से जोड़ दिया,तब मन प्रफुल्लित हो यह सोचकर मैं बहुत खुश थी कि दादा के साहित्यिक सांस्कृतिक परिवार में मुझे स्थान मिल रहा है। यह मेरा सौभाग्य है के आदरणीय दादा से जब मुझे परिवार में पहली बार आशीर्वाद लेने का मौका आया तब आदरणीय दादा ने अपनी दो पुस्तकें चिट्ठी - पत्री एवं जिनकी छाया भी सुखकर है अपने हस्ताक्षरों से लिखकर भेंट दी, तो मन मयूर यह सोचकर नाच उठा की, अब तो दादा की सभी पुस्तकें आसानी से पढ़ने को मिलती रहेगी ।

एमएससी की पढ़ाई पूरी होने पर ही विवाह होगा, मेरी यह भावना जानकर दादा ने मुझसे कहा अरे तुम्हें तो पीएचडी भी करनी है, मैं तो प्रसन्न हूं कि मेरी बहू निरंतर अध्ययन करना चाहती है, यह सुनकर लगा कि दादा का आशीष मुझे सदा मिलता रहेगा। ऐसे थे हमारे रामा दादा जो बहू को भी निरंतर आगे बढ़ते देखना चाहते थे। विवाह पश्चात आपसे बेटी के समान आशीष मिलते रहे। उन्होंने अपना वचन दोहराया कि तुम चाहो तो करो मुझे अच्छा लगेगा। किन्तु शासकीय सेवा में व्याख्याता पद पर रहते, अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियां को निभाते हुए में पीएचडी नहीं कर पाई और दादा की इच्छा को पूरा नहीं कर मुझे इस बात का खेद है, और रहेगा।

लेकिन मेरी रुचिनुसार मुझे परिवार में पूरी तरह से साहित्यिक वातावरण मिल गया। बड़े-बड़े साहित्यकार जब भी खंडवा आते थे तो साहित्य कुटीर ब्राह्मणपुरी में ही आकर ठहरते थे दादा की कचहरी में यानी अपने ही घर में मुझे साहित्यकारों के आशीष का लाभ मिलने लगा। मुझे अपने विवाह के पक्ष का एक प्रसंग बरबस ही याद आ गया है कि, हमारे विवाह के अवसर पर दादा ने उनके लगभग सभी साहित्यिक मित्रों को आमंत्रित किया था, श्री हरिवंश राय बच्चन, आदरणीय भवानी प्रसाद

मिश्र, बालकवि बैरागी डॉक्टर शिवमंगल सिंह 'सुमन' और महादेवी वर्मा जैसे कई साहित्यकारों के आशीर्वचन हमें पत्र रूप में प्राप्त हुए, हैं जो धरोहर स्वरूप हैं।

बच्चन तब 'सोपान' दिल्ली में रहते थे उन्होंने अपने लेटर हेड पर लिख कर भेजा।

शिशिर जयश्री मिलकर ऐसी 'मधुयामिनी' मनाएं,
'मिलन यामिनी' बच्चन जी की देख जिसे शर्माए।

एक विशेष प्रसंग यह भी रहा कि भवानी प्रसाद मिश्र मन्ना दा ने लिखा कि मैं किसी कारणवश अभी विवाह में नहीं आ पा रहा हूँ, लेकिन शीघ्र ही खंडवा आऊंगा और सौ. जयश्री बहू के हाथ का बना खाना खाऊंगा। भवानी दादा ने अपना वचन पूरा किया विवाह के लगभग एक माह पश्चात आप खंडवा आए और लगभग चार दिन रुके और हमें आशीर्वाद दिया, चार दिन तक घर और खंडवा उनकी गीत कविताओं से सुरभित रहा। माणिक स्मारक वाचनालय की वह काव्य निशा खंडवा में ऐतिहासिक हो गई जब आ. मन्ना दा काव्य पाठ कर रहे थे ,वो स्वयं रो रहे थे और पूरा सदन भी अश्रुपूरित था,,

आदरणीय रामादादा परिवार में सभी पर समान रूप से स्नेह रखते थे, तो हम कैसे अछूते रह जाते। कालांतर में जब शिशिर जी का स्थानांतरण बड़वानी हुआ तो आदरणीय बड़ी बाई और दादा बहुत अधिक व्यथित हो गए थे। आदरणीय दादा अक्सर बड़वानी हमारे पास आ जाते थे, उनकी साहित्यिक चर्चाओं का मुझे विशेष लाभ मिल जाता था। जनवरी सन 1991 में दादा मेरे बेटे ऋषिराज (चिंटू)के मुंडन संस्कार के लिए अंजड़ आए थे तभी वहां दादा को पद्मश्री अवार्ड घोषित होने की खबर मिली। कार्यक्रम का आनंद द्विगुणित हो गया। घर बधाई दाताओं से भर गया। सभी साहित्यकारों के फोन भी वहीं दादा को प्राप्त हुए सभी के बीच रामा दादा भी प्रसन्न और हम सब भी बहुत प्रसन्न थे।

दादा अक्सर शिशिर जी से साहित्यिक चर्चाओं के समय आवाज देकर मुझे बुलाकर सम्मिलित कर लेते थे, जब भी कोई लेखन कार्य पूर्ण

होता तो पढ़कर सभी को सुनते या फिर हमें डाक से भेज देते थे। मेरे जन्मदिन विवाह वर्षगांठ पर 10 का नोट पत्र के साथ पिन लगाकर हमें आशीर्वाद रूप में डाक द्वारा अनवरत मिलता रहा। आदरणीय दादा सभी से समान रूप से स्नेह करते थे। किसी से कभी कोई अपेक्षा नहीं रखते थे। अपनों के लिए सदैव सहज रूप से लाड प्यार लुटाते रहते थे। मुझे दादा की एक बात बहुत अच्छी लगती थी, आप अपने साहित्यिक कार्यों के साथ-साथ परिवार के लिए भी सदैव समर्पित रहते थे। आज वो जब नहीं हैं हम सभी अपने दादा को बात-बात पर याद करते हैं कि किस तरह उन्होंने अपने पूरे परिवार को एक सूत्र में जोड़ कर रखा था। परिवार का छोटे से छोटा सदस्य भी दादा के लिए उतना ही महत्वपूर्ण होता था, बहू- बेटियों नाती-पोते-पोती हो,या रिश्तेदार सभी पर समान रूप से नेह बरसाते रहे। हमारे हृदय में आदरणीय दादा के लिए आदर सम्मान स्नेह आजीवन रहेगा, उनके साहित्य की यात्रा को हम सभी परिवारजन निरंतर आगे ले जाना चाहते हैं, दादा की प्रेरणा से ही मैं आज लिख पाती हूँ, सोचती हूँ कि यदि दादा प्रोत्साहित नहीं करते तो मेरा साहित्य प्रेम पुस्तक के पढ़ने तक ही सीमित रह जाता। दादा परिवार के चारों बेटों, चारों बहुओं , 5 बेटियों और 21 नातीयों, पोतीयों से भरे हुए एक संयुक्त परिवार के वट वृक्ष थे। उनके सभी पुत्र, पुत्रियों, बहुओं का अपने-अपने क्षेत्र में अपना विशेष स्थान है यह सब आ. दादा के अमृत आशीषों का फल है।

सम्पर्क : 9826656989

फोन का नहीं पत्रों का इंतजार रहता है-दादा

पूर्णिमा चतुर्वेदी
(सबसे छोटी बेटी)

मैं पूर्णिमा अपने दादा पद्मश्री विभूषित प. रामनारायण उपाध्याय के परिवार में 9 भाई बहनों में मैं सबसे छोटी नौवे नंबर की दादा की बेटी हूँ। मुझे पुन्टू के नाम से घर में बुलाते है। सबसे छोटी होने के कारण मुझे सभी बड़ों से सबसे अधिक लाड़-प्यार मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जब से मुझे अपना बचपन याद है तभी से, अपने आपको और सभी भाई-बहनों को अपने बाई-बाबूजी (माता-पिता) से अधिक दादा व बड़ी बाई (ताऊजी और ताईजी) के निकट पाया है। दादा-बाई जब भी कहीं बाहर जाते थे, अधिकतर मैं ही उन के साथ जाती थी। हमारे घर के अंदर के एक बड़े कमरे में दादा-बाई के पलंग लगे रहते थे। भाई-बहन वहीं पलंग के पास बिस्तर बिछाते थे, और मस्ती करते थे। मगर मैं हमेशा अपनी बड़ी बाई के पास ही सोती थी। बाई को मेरे बगैर और मुझे बड़ी बाई के बगैर नींद ही नहीं आती थी। बड़ी बाई ही हम सभी को सुबह पढ़ने के लिए जगाती थी। उस समय कई बार जब मैं सुबह पढ़ने के लिए उठती थी तो देखती थी कि दादा हमसे पहले ही उठकर लिखने बैठ गए हैं, ना ही उन्हें किसी ने जगाया था और ना ही कोई अलार्म लगाया, फिर भी हम लोगों के उठने से पहले ही दादा के लेख तैयार हो जाते थे। मुझे आज भी अपने बचपन की बातें याद आती हैं कि हमें स्कूल का काम करना हो या कुछ और कितना मूड बनाते थे कि अब लिखना है, कितना लिखना है वगैरह वगैरह और दादा को हमने हमेशा कभी भी कैसे भी माहौल में लिखते देखा। चाहे घर में मेहमान हो या छोटे बच्चे उनके आसपास खेल रहे हों, मोहल्ले में कोई शोर हो या अस्थमा की परेशानी दादा का लेखन अनवरत रूप से अपनी दिनचर्या से चलता रहता था।

मैं बचपन से ही रेडियो सुनने की शौकीन रही हूँ सोते समय भी रेडियो अपने पास लेकर ही सोती थी। बड़ी बाई और मैं देर रात तक विविध भारती का आखिरी कार्यक्रम बेला के फूल सुनकर ही सोते थे, परंतु रेडियो की आवाज इतनी कम रखते थे कि दादा को सुनाई ना दे। एक बार हमने रेडियो जल्दी बंद कर दिया कि दादा सो गए हैं, पर उसी समय दादा की आवाज आई 'क्या बात है आज रेडियो बंद क्यों है' और हम हंसने लगे। बाई बोली अच्छा तो तुम भी हमारे गाने सुनते हो। दादा, बाई और मैं कई बार जब तक रात में नींद नहीं आती थी तो कई विषयों पर चर्चा करते रहते थे। कभी-कभी ठंडी की रात में दादा को दमा का जोर उठता था तो बाई डॉटती थी कि आज जरूर बाहर का कुछ खाया है तब दादा कहते थे कि हाँ एक मित्र के यहाँ गरम-गरम भाजिए खा लिए थे। दादा को ज्याद डांट पड़ें इससे पहले ही मैं जल्दी से दादा की पीठ पर तेल व विक्स लगा देती तो उन्हें तुरंत आराम लगने लगता।

दादा को अस्थमा की शिकायत थी पर उन्होंने उसे अपनी बीमारी ना मानकर अपना साथी माना और हमेशा कहते थे दमा से मुझे दम मिलता है।

हम 9 भाई बहनों में 4 भाई व 5 बहनें है और हम पाँच दादा की बेटियों के अलावा परिवार की कितनी ही बेटियों की शादी तो दादा के नाम से ही हो गई कि उपाध्याय जी की लड़की है तो ना कहने का तो सवाल ही नहीं बनता और दादा की सभी बेटियां संपन्न परिवारों में ही ब्याही गई और आज भी सभी बेटियां अपने दादा के आशीर्वाद से अपने-अपने परिवार में सुखी हैं, उनमें से एक मैं भी हूँ। जब दादा मेरे विवाह का प्रस्ताव लेकर गए तो मेरे ससुरजी ने आदर से प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उनका कहना था - उपाध्याय जी की लड़की है तो हमे ना देखना और ना ही पत्रिका मिलानी है। और इसी के साथ मेरा चतुर्वेदी परिवार में श्री आनंद चतुर्वेदी (भोपाल) से रिश्ता तय हो गया व जनवरी 1987 में शादी होकर में भोपाल आ गई। मेरी शादी के 1 साल के अंदर ही बड़ी बाई का स्वास्थ्य खराब रहने लगा बड़ी बाई को भी शक्कर व दमा की बीमारी थी।

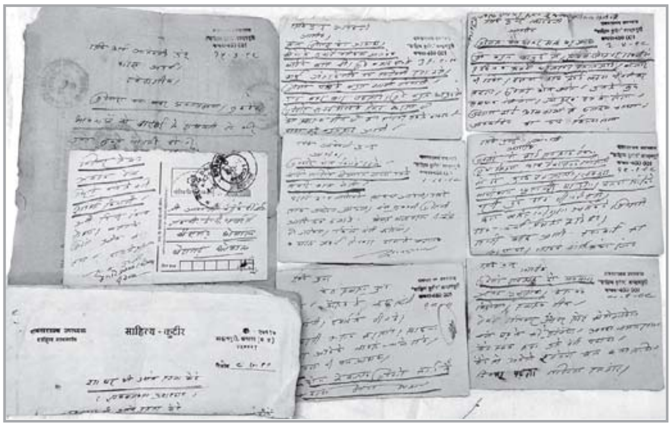

मैं अपने नवजीवन के रिश्तों को निभाते हुए अपने घर परिवार में व्यस्त हो गई। इधर बड़ी बाई की तबियत बिगड़ती ही जा रही थी। मैं ससुराल के कायदों के अनुरूप जब-जब रिवाज होता दो-चार दिन के लिए ही खंडवा आ पाती थी। ईश्वर की कृपा से सातवे माह में गोद भराकर मुझे मायके लाया गया तब मैं बहुत खुश थी कि अब मैं कुछ दिन बडी बाई के साथ रहूँगी परंतु दुर्भाग्य वश मैं बाई के साथ 15 दिन ही रह पाई और 11 अप्रैल 1988 को बड़ी बाई का देहांत हो गया।

इधर दादा के लिए जो जीवन हँसी ठहाकों व उनके लेखन से भरा हुआ था वो एक ही पल में पहाड़ के समान हो गया। और इधर मेरे ससुराल में परिवार का यह पहला बच्चा था व मायके में ऐसा हो जाने के कारण ससुराल वालो का कहना था कि पूर्णिमा को वापस सनावद ले जाएंगे। जब दादा को यह पता चला तो दादा ने आनंद जी से बात कर विनती की और चतुर्वेदीजी ने तुरंत मान भी लिया। और मुझे खंडवा में ही रहने की आज्ञा मिल गई, दादा का आग्रह था कि बाई के जाने के बाद अकेलापन बढ़ गया है अगर पुन्टू रहेगी तो अच्छा लगेगा।

बाई के जाने के बाद इस कठिन समय को दादा को मैंने काटते देखा है, एक-एक दिन दादा को एक-एक साल की तरह लगता था। दादा ने चुपचाप अपना दर्द अपने तखत व तकिये तक समेट लिया था मुझे देखकर अपने आपको सामान्य-सामान्य दिखने कि कोशिश करते ।

मुझे चिंता होने लगी थी कि दादा जो हमेशा लेखन के कार्य में लगे रहते थे उनका लिखना बंद नहीं होना चाहिए मैं दादा को रोज एक ही बात के लिए प्रेरित करती और आग्रह करती कि आप लिखो दादा आप लिखना बंद मत करो। समय के चलते व दर्द के भरते-भरते दादा ने लिखना शुरू किया व इसी बीच दादा की एक किताब भी छपी क्रौंच की चीख। मुझे फिर चिंता हुई कि दादा ने व्यंगय को छोड़ करुण रस लिखना प्रारंभ कर दिया था। परंतु ईश्वर हमारे साथ था उसी समय दादा को निमाड़ी शब्दकोश बनाने का कार्य मिल गया। जिसमे दादा और मैं रम गए। शब्दकोश के लिए सभी शब्दों को इकट्ठा कर उन्हें अ,आ,ई के क्रम में जमाने के चक्कर में हम दिन-रात काम करते और इस काम में घर के कई अन्य लोग भी शामिल थे। मुझे या दादा हो कभी रात में नींद ना आए तो हम उठकर फिर शब्दकोश के काम में लग जाते। धीरे-धीरे करके शब्दकोष तैयार हो गया और दादा के कभी ना भरने वाले घाव पर शब्दकोश का काम मरहम लगाने जैसा कार्य हुआ।

समय धीरे-धीरे बीतने लगा व दादा ने जो जिम्मेदारी ली थी कि पुन्टू की डिलीवरी खंडवा में ही होगी, अत: अब दादा को मेरी चिंता सताने लगी और फिर 19 जून 1988 का वह दिन आ ही गया जब मुझे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, दादा के लिए यह बहुत बड़ी खुशी की बात थी मैं समझ रही थी कि किस तरह दादा ने अपने दर्द को अपने अंदर छुपाकर नन्हें मेहमान के साथ दिन रात उसकी किलकारियों की आवाज सुनकर उसे देखकर खिलाकर अपने जीवन को नए सिरे से जीने की प्रेरणा ली। दादा ने बच्चे का नाम रखने में भी हमारी मदद की, मेरा बेटा सौभाग्यशाली है कि कई नामों में से दादा ने पारस नाम पर टिक लगाकर पारस को धन्य कर दिया। समय बीतता गया मैं पुन: अपने ससुराल लौट आई व अपने घर-परिवार में लग गई।

दादा को अपना अकेलापन खलने लगा था पर दादा ने अपना लेखन कार्य पुन:धीरे-धीरे प्रारंभ कर दिया था और हम सभी के पत्रों का आना-जाना दादा के लिए दवा का काम करता था। परिवार की व्यस्तता के चलते जब कभी भी मुझे पत्र लिखने में देरी हो जाती तो दादा विचलित हो जाते और तुरंत जवाबी पत्र भेज देते थे। दादा कहते थे तुम्हारे पत्र मेरे लिए मेरी माँ के पत्रों की तरह है, पत्रों में दिए गए तुम्हारे निर्देशों अपने स्वाथ्य का ध्यान रखना, लेखन कार्य जारी रखना से मुझे हमेशा प्रेरणा मिलती है। बाद में दादा की कई नई किताबे आई जिसमे प्रमुख लोक जीवन में राम व दादा पर भी किताबें लिखी गई। इधर शिशिर भैय्या भी दादा का लेखन कार्य संभालने लगे और उसे दादा के इतने करीब रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ अतएव दादा को दोनों तरफ से संबल मिला शायद इसीलिए दादा कहते थे-पुन्टू व मिन्टू (शिशिर) दोनों मेरे लंग्स है जिनके द्वारा मैं श्वास लेता हूँ।

सन् 1990 में मेरे दूसरे बेटे अपूर्व का जन्म हुआ। मेरे ससुर जी से दादा की गहरी मित्रता थी। 1991 में जब दादा को पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया तो दादा खुद सम्मान लेकर भोपाल मेरे घर मेरे ससुरजी से मिलने आए। कई बार उनकी घण्टों-घण्टों साहित्यिक चर्चा चलती रहती थी।

मेरा खंडवा जाना कम ही हो पाता था कभी-कभी 1 दिन के लिए ही जा पाती थी, परिवार की व्यस्तता के चलते पत्र व्यवहार भी कम ही हो पाता था। जब भी हम सभी भाई-बहन (परिवार) खंडवा मे इकट्ठे होते तो दादा बहुत खुश हो जाते, वे अपने संस्मरण सुनाते कभी-कभी रामायण व महाभारत तक की कहानियों का वर्णन करते थे। हमें भी यह सब सुनना अच्छा लगता था और उन दिनों बस हमारी बातों व दादा के ठहाके लगाकर हँसने की आवाज से ही घर गुंजायमान रहता था।

हम लोगों ने हर परिस्थिति में खुश रहना, सभी पर्व व त्योहारों पर अच्छे कपडे पहनना उनके रीति-रिवाज, व संस्कारों को निभाना, बेटियों से

तिलक लगवाकर आरती की थाली में नेग चढ़ाना, और ऐसे ही अनेकों संस्कार दादा से ही उनके साथ रहकर सीखें। और इसी वजह से दादा की बेटियों को कभी भी अपने परिवारों में संस्कारों व परंपराओं को निभाने में कोई परेशानी नहीं हुई।

दादा का मन था मैं लोक कलाओं पर काम करूं। उस समय दादा मुझे भोपाल आकाशवाणी ले गये। वहां से मैंने मण्डली के साथ परीक्षा पास कर वर्ष 1996 से आकाशवाणी भोपाल से लोकगीत गायन का कार्य शुरू किया।

आधुनिकता के चलते सभी घरों में फोन आ गए थे। अब तो फोन पर ही सभी से बात हो जाती थी और पत्र तो कभी-कभार ही लिख पाती थी। एक बार दादा का बड़ा पत्र आया, दादा समझ गए थे कि फोन पर बात होने के कारण पत्र लिखना कम हो गया है। दादा ने लिखा था तुम फोन पर बात करती हो, पर ज्यादा बात नहीं हो पाती मुझे तुम्हारे फोन का नहीं पत्रों का इंतजार रहता है। मैं फिर से दादा को पत्र लिखने लगी, कई बार पोस्ट कार्ड लिखती थी तो दादा खाली अंतर्देशीय भेज देते थे कि बड़ा पत्र लिखो और इस तरह पत्र व्यवहार द्वारा साहित्य, आध्यात्मिक व अन्य कई विषयों पर चर्चा होती रहती थी। एक बार दादा का पत्र आया, लिखा था कि मुझे सुनाई देना लगभग बंद हो गया है, जी घबराता है तब मैनें उन्हें लिखा आप चिंता क्यों करते हैं ईश्वर ने तो आपको एक अलग ही शक्ति प्रदान की है कि आप अपने हृदय की आवाज सुने और उसका आनंद ले, पर ये सब बहुत कठिन था, दादा को पुन: ताकत मिल जाती थी कि ईश्वर जैसा रखे रहना पड़ेगा। आखिर सबसे कठिन पहाड़ चढ़ना होता है उम्र की वृद्धावस्था। बहुत समय हो गया था मैं दादा को पत्र लिखती रही, अब दादा को दिखाई भी कम देने लगा था, दादा को पत्र पढ़ने में परेशानी होती तो घर में कोई भी उन्हें पत्र पढ़कर सुना देता था।

दादा का पत्र आए कई दिन हो गए तब मैंने अपनी छोटी बाई से पूछा मेरे पत्रों का जवाब दादा क्यों नहीं देते. तब बाई ने बताया कि दादा की तबियत आजकल ठीक नहीं रहती दिखाई एवं सुनाई भी कम देता है। उसी समय मुझे ऐसा लगा कि दादा की तबियत ज्यादा ही खराब है परंतु मैं चिंता ना करु इसलिए मुझे ज्यादा कुछ बताया नहीं जा रहा है। तभी मैंने अपने श्रीमान चतुर्वेदी जी से कहा कि मुझे दादा से मिलना है मैं कुछ दिन उनके पास रहना चाहती हूँ तो उन्होंने तुरंत हां कर दी और मैं अपने दोनों बच्चों पारस व अपूर्व के साथ 18 जून 2001 को खंडवा आ गई। अगले दिन (19 जून) को पारस का जन्मदिन था तो दादा ने पूरणपोलऽई बनवाई व कई दिनों के बाद दादा ने चाय पी व खाना खाया। बाबूजी को लगा कि दादा अब धीरे-धीरे ठीक हो जाएंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। 20 जून 2001 की शाम को हम सभी मैं साधना भाभी, कंचन जीजी तखत पर दादा के पास बैठकर बातें कर रहे थे कि अचानक शाम को दादा की तबियत बिगड़ी और सभी से बातें करते-करते दादा हमेशा की तरह हंसते मुस्कुराते हुए कहने लगे कि अब मैं सोऊंगा लाईट बंद कर दो। और उसी समय उन्हें ठसका लगा और उसी तखत पर आखरी सांस ली। हम उनको लेकर अस्पताल पहुंचे पर कुछ नहीं कर सके। एक ओर तो यह मेरे लिए सबसे सौभाग्य की बात थी कि मैं दादा की सबसे अधिक लाडली रही परंतु वहीं यह मेरा दुर्भाग्य भी था कि सबसे छोटी होने के कारण मैं सबसे कम समय दादा के पास रही।

जैसा कि दादा का सपना था कि मैं लोक कलाओं पर काम करू। परिवार की अनुकुलता होते ही मैंने लोकचित्र सृजन, प्रशिक्षण पर कार्य किया, मंडली बनाकर लोक गीत प्रस्तुति भी देने लगी और उनके आशीर्वाद से कई प्रतिष्ठित मंचो से प्रस्तुति के साथ प्रदेश के बाहर भी लोक कला पर कार्य किया, जो दादा का सपना था और 2020 में मुझे राज्य शासन का शिखर सम्मान भी मिला, साथ में कई अन्य सम्मान मिले, परन्तु अब भी मन में कसक है कि इस खुशी के समय न दादा रहे इस दुनिया में न बाबूजी (पिताजी) न ही दोनों माताएं ही रहीं जो खुश होकर मुझे लाड़कर मेरी पीठ थपथपाते पर आज भी मैं उनकी प्रेरणा से लोक संस्कृति पर कार्य करती हूँ व करती रहूँगी, बस पत्रों के माध्यम से दादा को खुशी की खबर नहीं दे पाऊँगी।

मेरे पत्रों का इंतजार करने वाले पद्मश्री दादा अब मेरे साथ आशीर्वाद रूप में हैं। दादा को हमारा शत्-शत् नमन।

संपर्क : निमाड़ी लोक कलाकार
ई-2, शिखर एन्क्लेव कैलाश नगर संत हिरदाराम नगर, भोपाल
4462030 मो.9425605959

साधना हेमंत उपाध्याय
(मंझली बहू)

पद्मश्री की सूचना मुझे मिली

25 जनवरी 1991 की संध्या घर के दूरभाष पर खंडवा में काल आया जो, मैंने उठाया। उधर से आवाज आई- पंडित रामनारायण उपाध्याय से बात हो सकती है क्या? मैंने कहा वो खंडवा में नहीं है। बेटे शिशिर के यहाँ अंजड़ गए है। उधर से आवाज आई मुख्यमंत्री पटवा जी उन्हे बधाई देना चाहते हैं, उनको पद्मश्री मिली है। जब भी आये बता दीजिये। निमाड़ की पद्मश्री दादा को मिली, प्रथम सूचना मुझे मिली.

सम्पर्क : साहित्य कुटीर, पंडित रामनारायण उपाध्याय वार्ड
क्र 43 खंडवा म.प्र. 9827049839

पं.रामनारायण उपाध्याय को पद्मश्री प्रदान करते हुए महामहिम राष्ट्रपति श्री वेंकटरामन, दि.-२४/३/१९९१

भूईं का रामा

डॉ. ममता खेडे
(मामा की बहू)

विशाल ललाट, उन्नत नासिका, खुले खिले निर्मल नेत्र, बंडी धोती और कोल्हापुरी चप्पलों के सादा बाने में एक अजब सादा मनुष्य हुआ करता था, जिसे हम पंडित रामनारायण उपाध्याय कहते हैं।

उपाधियों और सम्मानों की चकाचौंध से परे यह मौलिक आत्मीय सहजता भारी भरकम संज्ञाओं में नहीं अंटती। निमाड़ का यह रत्न रामा दादा के सहज संबोधन में माटी से सने हुए हृदय, सूरज से तपे हुए चिन्तन, नदियों में भीगी हुए संवेदना, लू और लुरुप के वेग से बहती हुई कल्पना शक्ति और निमाड़ के परिश्रमी अख्खड़ चरित्र के रंग से रंगे हुए भूई का रामा है। निमाड़-भूमि का यह बेटा लोक रस से लोक को रचता चला गया तथा निमाड़ की लोक संस्कृति की अछूती गाथा का पुरोधा बन गया।

रामा दादा बीसवीं शताब्दी की दुपहरिया में कृत्रिम पश्चिमी आरोपण से लोक की सुरम्य सरणियों के बचाने के लिए सिर पर गमछा बांधकर निकली मनीषियों की उस टोली के सदस्य थे, जिन्होंने अपने-अपने अंचल के लोकरस की पहचान की और उसे फोकलोर (गंवारु-वृत्ति) के दाग से मुक्त किया ।

रामादादा पुस्तकों और कृत्रिम चर्चाओं से लोक की ओर नहीं गए। धरती के गहरे यथार्थ को आत्मीय अनुभूति से जीते हुए लोक रचनाओं, लोक-शैलियों और बोली को चिर जीवन देने का असाध्य-साधन किया। लोकसंस्कृति के प्रति यह मौलिक और पवित्र दृष्टि ही उन्हें लोक देवता का सच्चा साधक बनाती है। अपने निबन्ध धरती का सबसे बड़ा सत्य आदमी में उनकी ये पंक्तियाँ इसी दृष्टि का परिचय देती हैं- पृथ्वी को भूमि कहा गया है। निमाड़ी में इसे भूई कहते हैं। इस भूई (भूमि) पर जितने लोग रहते हैं, वे सब धरती के बेटे हैं। गांव खेड़ों से लेकर नदियों के किनारे टीलों, वनों, पर्वतों पर मुहाळ (मधुमख्खी के छत्तों) की तरह कहीं खोहों, गुफाओं में, कहीं टपरों झोपड़ियों में तो कहीं घर बना कर लोग रहते हैं, उन्हें ही हिन्दी साहित्य में लोक कहा जाता है। इस लोक की लोक-माता भूमि का अध्ययन हमारा दायित्व है।

यही श्री रामनारायण उपाध्याय जी की विचार भूमि हैं। जहाँ वे चिन्तक की भाँति प्रस्तुत नहीं होते। वे ठेठ निमाड़ के खांटी जन-जीवन का हिस्सा हैं। वे आमजन जिसे लोक कहा जाता है की भाँति, आनन्द उत्सव, चिन्ता-दु:ख, पूजा-पर्व के भोक्ता हैं और अपने भोगे हुए गहरे यथार्थ को वे आरोपित विचार दृष्टि को परे रखते हुए सच्चे मानुस की तरह परखते हैं, शब्द देते हैं। यह वही मानुस है, जो जीवनको, धरती को, प्रकृति को लोगों को और अपनी संस्कृति को खूब प्यार करता है-

धरती भी आपको माँ की तरह पुकार रही है। आम अपने सिर पर मौर की कलगी बांधे आपको अपने पास आने को कह रहा है। नदी अपने एक हाथ से उद्‌गम को प्रणाम करते हुए और दूसरे से समुद्र से मिलते हुए अपने सतत् प्रवाहमान रहने का राज बता रही है। सूर्य नित्य उदय और अस्त होते हुए अपने नित- नूतन यानि सनातन होने की घोषणा कर रहा है। कोयल के गीत और झरने के संगीत में किसका मन मुग्ध करने की क्षमता नहीं है।

- घर- हमारी संस्कृति का प्रतीक (निबन्ध से) (निमाड़ की अक्षय शब्द सम्पदा)

निमाड़ और निमाड़ के सांस्कृतिक विषयों पर चर्चा करते हुए रामादादा के भाव और भाषा का लालित्य इस गहरी आत्मीयता के मधु से और मीठा हो उठता है। वे चाहे निमाड़ी बोली के शब्द सामर्थ्य पर विचार कर रहे हों या लोक रचनाओं के भाषा सौष्ठव और शब्दों का चयन, वर्गीकरण और विवेचन में वे स्वयं निमाडी बोली के व्याख्याकार की अपेक्षा निमाड़ की पगडंडियों से गुजर रहे खांटी ग्रामीण की भाँति- उपस्थित दिखाई देते हैं। यही कारण है कि उनके द्वारा उद्धृत शब्द और वाक्यांश वही पूरा बिम्ब खड़ा करने में समर्थ होते हैं-जो किसी बोली को बोलने वाले का अनुभव सामर्थ्य ही कर सकता है-

इसी तरह हिन्दी में नींद शब्द है इसे लेकर आदमी गहरी से लेकर हलकी नींद बताता है। लेकिन निमाड़ी में इसकी प्रत्येक हरकत के लिए बारीक से बारीक शब्द मिलेंगे। इसके साथ ही वे नींद से जुड़ी हुई क्रियाओं बळ्ळाज, चरवळज, बदकज्, घोरज, सोस्साज, जपज, नींदराज, टग्गी लगई लेज, डोळा लग्याज् इत्यादि शब्दों को भाषा की लड़ी में मनकों की तरह पिरोते जाते हैं। इस पिरोते रहने में वे अन्य भाषा शास्त्रियों की भाँति तत्सम, तत्भव, देशज, आयातित, संधि, समास विपर्यय, संकोच, उपसर्ग, प्रत्यय इत्यादि के विश्लेषण की मशक्कत में नहीं पड़ते बस मुग्ध बालक के समान अपनी माँ-बोली का गुणगान करते हैं यही पंडित रामनारायण उपाध्याय की सादगी है और वैशिष्ट्य भी। उन्होंने बोली को उसके बेलौस अनगढ़ सौन्दर्य के साथ अपनाया-

शब्दों को पुस्तकों में नहीं खेतों-मैदानों में काम करने में आनन्द आता है। कहीं वे भरी दुपहरिया में आगे वृषभ-बैल और पीछे-कृषक याने किरसाण को लेकर एक सख्त खेत 'हल' के कुसले से उथल-पुथल कर हलवाई करने में आनन्द का अनुभव करते हैं। तो कहीं जमीन की अतल गहराइयों से कुआं खोद कर पानी निकालने में उनकी तीस प्यास बुझती आई है।

- श्री उपाध्याय लोकसंस्कृति के विविध उपादानों की व्याख्या करते हुए उसे उपकृत करने का आडम्बर नही रचते। वे लोक संस्कृति

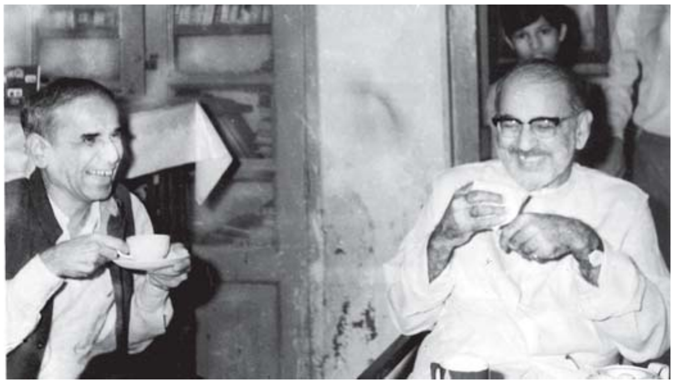

एक-एक विधा की सजीव साक्षी में मानवता के लिए अमृत बटोरते हैं। वे लोक के पास दाता की भाँति नहीं, गृहिता की भाँति उपस्थित होते हैं-

गाँवों का आदमी जाने कब से बाट जोह रहा है कि कोई आये और उससे भी कुछ ले जाये। उसका समग्र जीवन एक अनपढ़ी खुली पुस्तक की तरह, सामने बिछा है। उसका रहन-सहन, खान-पीन, वस्त्राभूषण, आचार-विचार, रीति-रिवाज धर्म और आस्था, विश्वास और मान्यताएँ, पर्व और उत्सव, मेले और तमाशे, गीत और कथाएं, नृत्य संगीत और कलाएं और भाषा तथा बोलियों के प्रत्येक शब्द हमें कुछ न कुछ देने की क्षमता रखते हैं।

(सांस्कृतिक स्वरूप- निमाड़ी की अक्षय शब्द संपदा)

उस बेहद आरंभिक समय में जब लोक से इतर विद्वानों का लोक-तत्व के प्रति उदासीनता का और कुछ बहुत हद तक अवहेलना का भाव रहा होगा ऐसे समय में सूने में सोन्ने की तरह झलक रहे निमाड़ी लोकगीतों के संग्रहण का असाध्य श्रम करके संजोया, उनकी पहचान स्थापित की ओर बालक की भाँति उनका जयगान करते रहे। उनकी सभी कृतियों की विभिन्न विधाओं में इन निमाड़ी गीतों की व्याख्या और विश्लेषण उन्हें अधिक प्रिय प्रतीत होता है। रामादादा लिखते भी हैं कि निमाड़ी का गणगोर गीत शुक्र को तारो सुनकर उनका ध्यान इन गीतों के अभिव्यंजना गत सौन्दर्य और भाषायी सौष्ठव की ओर आकृष्ट हुआ और फिर वे इन गीतों में रमते चले गये। यही निमाड़ी लोक साहित्य की सुदृढ़ पहचान स्थापित करने का सशक्त आधार सिद्ध हुआ। निमाड़ जब गाता है के प्राक्कथन में वे लिखते हैं -

ये गीत मेरे मन के मीत रहे हैं। चाहे मैं काम कर रहा होऊं, भोजन कर रहा होऊ या किसी पुस्तक को पढ़ने में संलग्न होऊं, ये कभी-कभी चुपके से आकर मेरे कानों में गुनगुनाते हैं कि, देखो ! मैं जा रहा हूँ। मेरी यात्रा का कोई अंत और छोर नहीं है; फिर कब मिलना होगा, इसका भी कोई निश्चय नहीं। यदि मिलना है, तो अभी मिल लो तब मैं अपने हाथ का काम छोड़ कर उनसे मिला हूं और उसी मिलन की याद में यह पुस्तक है।

निमाड़ी गीतों की बात चलते ही वे बहते चले जाते हैं। लोक का यह अन्तर्नाद रामादादा के अंतस में एक अद्भुत ललक बन कर गूंजता रहा। वे साहित्यकार या समीक्षक के रूप में नहीं रस पिपासु की भाँति लोकगीतों के पास जाते हैं, उन्हें गुनगुनाते हैं और फिर

उनका सौन्दर्य दर्शन करके कलम से उतार देते हैं। इस तरह गीतों के संकलन के अतिरिक्त उनकी समीक्षा में लिखे गये रामादादा के लेख ललित निबन्धों से सरस बन पड़े हैं।

निमाड़ जब गाता है के परिचय में ही वे आगे लिखते हैं -

इन्होंने कभी मुझे चुपके से चार मित्रों में से बुलाकर तो कभी बड़ी रात गये झकझोर कर उठाकर अपने सुख दु:ख की गाथाएं सुनाई हैं। इन्होंने मुझे अपने पुत्र जन्म के उत्सव में बुलाया, तो कभी विवाह में आने का रंगीन निमंत्रण दिया है। कभी किसी उत्सव में शामिल होने के लिए मुझे अपने घर से खींच लिया, तो कभी बच्चों के साथ बच्चा बनकर खेलने के लिए बाध्य किया है। इन्होंने मुझसे कभी कुछ भी नहीं छिपाया, यहाँ तक कि ये अपने शयन कक्ष की रंगीन से रंगीन बात भी

**''भी मुझे बताने में नहीं शर्माये हैं। गीत क्या है,
मनो भावनाओं का सुकोमल इतिहास है।''**

वस्तुत: लोक रचनाओं को परिनिष्ठित भाषा के साहित्य के समकक्ष रखकर समीक्षा करना उस समय एक नये साहस का मानदण्ड हुआ करता होगा किन्तु लोक रचनाओं को व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के चलते सस्ती लोकप्रियता के लिए उपयोग किये जाने की प्रकृति को पंडित रामनारायण उपाध्याय ने उसी समय पहचान लिया था। वे इस सम्बन्ध में चेतावनी देते हैं- एक बात और है, आज जो लोकगीत बजाय शोध अध्ययन और जीवन में प्रेरणा ग्रहण करने के, महज रेडियो पर गाने और किसी के सम्मान में पढ़े जाने जैसी सस्ती ख्याति के विषय बनते जा रहे हैं, यही इनके मार्ग का सबसे बड़ा खतरा है। वास्तव में ये गीत लोक-जीवन की अमूल्य निधि हैं और इनका वास्तविक स्थान जीवन की ज़मीन है पर है।

वस्तुत: लोक जीवन से इस गहरे नाते से ही वे अत्यन्त साधारण ग्रामीण जीवन, उनके तीज-त्योहार, सुख-दु:ख, काम-धाम, घर-बार, खेती-बारी, बचपन-बुढ़ापा, सभी को सूक्ष्म ब्यौरों के साथ देख सके। लोकानुभूतियों को भीगी आत्मीयता से निहार कर लोक-जीवन के हर पहलु को शब्दबद्ध करने के लिए असाध्य श्रम किया।

निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास संजोने के लिए इसी गहरी ललक के साथ उन्होंने बोली के सौष्ठव, सौन्दर्य के साथ रीति-रिवाजों में खेती-बारी के तरीकों, विविध लोक-कलाओं, वाद्य यंत्रों, दर्शन-स्थलों, पर्वो, तीर्थों, मेलों को एक जगह ला कर जैसे समूचे निमाड़ को संजो लिया।

ठेठ निमाड़ की यह गहरी समझ और निमाड़ियों का फख्खड़ और अख्खड़ बोध और कहने की सटीक कला रामादादा की मौलिक रचनाओं में देखी जा सकती है नाक का सवाल संकलन की पहली रचना आदमी का बच्चा भी ऐसे ही मौलिक-

मार्मिक दृष्टिबोध की चुटीली अभिव्यंजना है। इस व्यंग्य के कुछ वाक्यांश ही उनकी सशक्त अभिव्यंजना की बानगी के रूप में देखे जा सकते हैं-

पिंजरे का मुँह सोने के दरवाजे से बंद था। दरवाजे के खुलते ही उसमें से एक आदमी का बच्चा उछलकर बेतहाशा भाग-दौड़ करने लगा

कुर्सी पर बैठने के बाद सिर की ज़रूरत नहीं रहती, इसलिए मैंने उसका उपयोग कुर्सी तक पहुंचने में कर लिया------

यह मेरे पेट का सवाल है! अगर मैं जनता की ओर मुँह करके बैठूं तो मेरा पेट खाली रह जाएगा ! मेरी पीठ पक्की है, इसलिए मैंने उसे जनता की ओर कर दिया है।

-क्यों रे आदमी के बच्चे, यह वन-मानुस औरत से छेड़खानी कर रहा है और तू चुप है?

वह बोला- कुर्सी पर उल्टे मुँह बैठे होने के कारण मेरी आँखें बन्द हैं। इस अन्याय की खबर जब अखबार में छप कर आयेगी, तो मैं उसका सख्त प्रतिकार करूंगा। आदमी का बच्चा होने से मैं इसे सह नहीं सकता।

पंडित रामनारायण उपाध्याय के तीक्ष्ण दृष्टि बोध की प्रभावी अभिव्यक्ति शैली की यह बानगी भर है। चमत्कारी नदी, स्वप्न भंग, समाजवादी बिल, स्वराज्य की बेटी और मंहगाई का धनुष, कागज का कुंआ, भक्तों की प्रार्थना, गुरुभक्ति, सिंह और स्यार इत्यादि रचनाएँ लघु कथा शैली में तीखे व्यंग्य को बिम्बों का का कलेवर दिए हुए हैं। ये सभी रचनाएं एक निष्णात बुद्धिजीवी की प्रस्तुति न होकर एक भुक्त-भोगी की तिरछी नजर प्रतीत होती हैं। ऐसा अद्भूत साधारणीकरण उनके व्यंग्य को और सशक्त बनाता है।

चिट्ठी-पत्री में संकलित अज्ञेय जी के पत्र में रामादादा की इसी दक्षता को बहुत खूबसूरती से लिखा है-

मधुर व्यंग्य जो जाड़ों के घाम जैसा स्निग्ध, अपने पन से भर जाए, और सधा हुआ सूक्ष्म स्पर्श जो भाव को जगाए पर चौंकने न दे, दोनों ही प्रकार के निबन्धों का अपना-अपना मजा रहा।

बड़ी बात यह है कि आप व्यंग्य को अधिक खींचने नहीं देते, बात कहां पूरी हो गई, यह जानते हैं और इसमें पाठक भी भरोसा करते हैं। यह उपाध्याय जी की लेखन शैली पर सटीक टीप है।

जीवन के लिए यह अन्तर्दृष्टि रामादादा को उनकी सहजता जता के बाने में भी प्रखर चिन्तक बनाती है। कथाओं की अन्तर्कथाएँ में भी विभिन्न पौराणिक आख्यानों की तर्कसंगत टीका की है। वेदों, पुराणों और उपनिषदों के विभिन्न आयामों के मिथकों को लेकर बहुत सादगी के साथ शल्यक्रिया की है कि मिथक का खोल टूटा किन्तु टूटन नज़र नहीं आई और भीतर का मधु सबके आस्वास्वादन के लिए प्रस्तुत हो गया। सम्पूर्ण पुस्तक में कहीं भी आख्यान की व्याख्या में पण्डिताई हावी नहीं है। जीवन को गहराई से जीने वाली गम्भीर यथार्थ दृष्टि का प्रसाद ही प्रस्तुत होता है।

किसी एक आलेख में दादा को समग्रता से नहीं देखा जा सकता। निबन्ध, संस्मरण, लघुकथाएँ, रूपक, रिपोतार्ज सभी विधाओं में उन्होंने अपनी उजास बिखेरी । लोक साहित्य छात्रा होने से लोक रचनाओं संबंधी निष्ठा मुझमें उनके लिए श्रद्धाभाव जगाती है। उन दिनों खण्डवा साहित्यक सांस्कृतिक हलचलों से आन्दोलित रहा था कि साहित्य कुटीर के इस सहज साधक ने उस समय की साहित्यिक विभूतियों के साथ संवाद और सम्पर्क के माध्यम से निमाड़ की सांस्कृतिक चेतना को विशिष्ट पहचान प्रदान की। अपने खांटी निमाड़ी व्यक्तित्व और अपने विविध आयामी कृतित्व में पंडित रामनारायण उपाध्याय गंभीर अध्येता, उदार चिन्तक और मौलिक संवेदनाओं के स्वामी हैं किन्तु यह स्वामित्व उन्हें और ज्यादा जमीनी, और ज्यादा विनम्र तथा और ज्यादा सहज बनाता है। वस्तुतः उनका पाण्डित्य, अध्ययन और दृष्टिबोध पाठक को आक्रांत नहीं करता, बहुत स्नेह के साथ हाथ थाम कर खण्डवा के साहित्य कुटीर की छोटी संकरी गलियों से गुजारते हुए काळमुखी की अमराइयों, पनघटों, खेतों-खलिहानों, हतई ओटलों पर हंसते- मुस्कुराते, रोते-गाते, जीवन की धुन पर थिरकते नर-नारियों और आबाल-वृद्ध जन समुदाय की ओर खींच कर ले जाता है, जहाँ आप उनके साथ उजली मटमैली अनोखी लोक-सृष्टि के साथ तादात्म्य स्थापित कर पाते हैं, इसीलिए पंडित रामनारायण उपाध्याय भूई के रामा हैं।

सम्पर्क : संयुक्त कलेक्टर नीमच

सरलता का पर्याय-दादा

सुनीता जोशी
(पोती)

मेहनतकशों का शहर, महानगर मुंबई के ट्रेफिक सिग्नल पर गाड़ी रूकी, अचानक एक आईस्क्रीम वाला आया जिसके हाथ में हरे पत्ते, काड़ी व गले में बाल्टी जैसा बर्तन लटकाया हुआ था। गाड़ी का काँच खोलने का आग्रह कर रहा था और मैंने भी उत्सुकतावश काँच नीचे किया। उसने पत्ता थमा दिया। जिसमें आईस्क्रीम थी। बिना संवाद के मैंने अंदाज से पैसे दे दिये, जैसे ही पत्ता हाथ में आया आईस्क्रीम का स्वाद लेते ही मैं खंडवा की गलियों में पहुँच गई जहाँ स्वच्छंदता हिलौरे लेती है।

खंडवा में नानी-नाना के यहाँ सभी बच्चे इकट्ठे होते थे। दोपहर को कान गली में आईस्क्रीम वाले की आवाज पर ही रहते थे। जैसे ही उसकी आवाज आई, हम सभी बाड़े के दरवाजे की ओर भागते थे। वहाँ दादा पहले से ही उपस्थित रहते थे। पैसे देने के लिए। परिवार के ही नहीं बाड़े के सभी बच्चे होते थे। सभी की नजर आईस्क्रीम वाले की कढछी पर होती थी वह बड़ी ही सतर्कता से कढ़छी घुमाता और पत्ते पर आईस्क्रीम देता। सोने की तरह एक माशा ज्यादा न कम। रोज आशा रहती कि कल शायद कढछी

आगे तक घुमाएगा। आज फिर आईस्क्रीम वाले भैया की आवाज आते ही हम सभी बड़े के दरवाजे की और दौड़े लेकिन ठिठक कर रूक गए। आज तो दादा इंदौर गए है रेडियों टॉक के लिए पैसे कौन देगा यह प्रश्न आते ही अंदर कमरे से बड़ी बाई के शब्द कानों में पड़े दे दो भैया बच्चों को आईस्क्रीम दादा पैसे मुझे दे गए है। मैं देती हूँ। दादा व्यस्तता के बाद भी हम बच्चों की छोटी-छोटी खुशियों का ध्यान रखते है।

दादा व बडी बाई परिवार के लिए नंदबाबा व यशोदा मैया स्वरूप थे। उनके स्नेह से हम सभी आज भी प्लावित हैं। बड़ी बाई मेरी नानी। दादा सभी के लिए 'रामादादा' थे। सभी से स्नेह रखते थे। उनके ऐसे उदाहरण हैं, जिससे हम सभी सरोबार है। छठवीं-सातवीं कक्षा तक खण्डवा में ही मेरी पढ़ाई हुई। तब तक दीवाली-गर्मियों या अन्य लम्बी छुट्टियों में भोपाल आती थीं। तब, माँ डॉ. सुमन चौरे फंदा में शासकीय शिक्षिका थीं और पिताजी श्री मनोहरजी चौरे दैनिक समाचार पत्र में संपादक थे। बड़ी बाई के आँचल में मेरा बचपन बीता ममता, करूणा और समर्पण का पर्याय मेरी बड़ी बाई।

पद्मश्री से सम्मानित हमारे दादा रामनारायणजी उपाध्याय ऐसे व्यक्तित्व हैं कि मेरे लिए मेरी भावनाओं को शब्दों में आबद्ध करना कठिन है।

आ.बड़ी बाई - सौ शकुंतला रामनारायण उपाध्याय

माई रेवा की तरह ममता सभी को पोषित व पल्लवित करते गए। हिमालय की भाँति अचल रहकर कठिनाइयों एवं संकटो का सामना किया परिवार को संरक्षित रखा। आदित्य, जिससे संपूर्ण निमाड़ लोक दैदिप्यमान हो रहा है। इन सबके विपरीत वे बाल हृदयी थे। स्वयं के जन्मदिन पर सुबह से हलवाई के यहाँ से जलेबी लाकर पूरे बाड़े में बाँटते और सभी को आशीर्वाद देते थे। औपचारिकता अहम् उनके शब्दकोश में हीं नहीं थे।

एक गाँधीवादी लेखक जिनकी लेखनी से सभी साहित्य प्रेमी अवगत है। कोई भी अछूता नहीं। किसी भी मंच, रेडियों या दूरदर्शन कहीं से भी वे बोलते थे श्रोताओं को बाँधकर रखते थे। उनकी अविरल रसधारा में सभी रसमग्न हो जाते थे। सभी आयुवर्ग के श्रोता उन्हें सुनने के लिए ललायित रहते थे। भाषा सरस, सरल व हृदयस्पर्शी है। दादा जब भी भोपाल आते आस-पड़ोस के लोग दादा से मिलने आ जाते थे। पुराना घर हवामहल रोड, पीरगेट और बाद में 1250 क्वाटर्स में था। सभी कहते थे कि ठहाकों गूँज से पता चल गया कि दादा आ गए है। पडोसी प्रतिष्ठित कवि राजेन्द्रजी अनुरागी और प्रतिष्ठित फोटोग्राफर-कलाकार नवल जायसवालजी कहते थे दादा के ठहाकों की आवाज मुझे सुबह से दादा के पास ले आई।

कितने भी बडे स्तर का अधिकारी हो दादा उनके सामने ही उनपर व्यंग्य करते थे और खूब हँसते थे। वह अधिकारी भी निहत्था होकर ठहाके लगाता था और दादा के प्रति समर्पित हो जाता था। दादा को अस्थमा की गंभीर पीड़ा थी ठंड के दिनों में यहाँ भोपाल आते थे। और कहीं समारोह या गोष्ठी में जाना था तो मैं बोलती थी दादा आज बहुत दम चल रहा है। मत जाइए। आराम करिए वे कहते ''दम भी चलेगा मैं भी चलूँगा'' और खूब ठहाका लगाते ऊर्जावान इतने किसी को आभास ही नहीं होता था कि दादा को अस्थमा की परेशान कर रहा हैं। वे मित्रवत भी थे। मुझसे हर बात साझा करते थे। कोई भी मन की बात मुझे बताते थे।

दादा प्रगतिशील विचारों के थे। बहुओं-बेटियों को उन्होंने चार-दिवारी से बाहर रखा। सभी को अपनी योग्यतानुसार आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी के परिणाम स्वरूप परिवार की बहुएँ बेटियाँ निमाड़ लोक परंपरा, साहित्य, कला में अपना पूर्ण योगदान दे रही है। चौथी पीढी भी अग्रणी है।

दादा को स्मरण करते ही बाबूजी सहज ही स्मरित हो जाते है। छोटे भाई शिव नारायण, श्रीराम और महादेव जिस तरह एक दूसरे के आराध्य है उसी तरह दोनों भाई। दोनों एक दूसरे से अभिन्न है। पूरक है। एक आत्मा है। परिवार में सभी, दादा-बाबूजी संबोधन एक साथ करते है। परिवार में बड़ी बाई छोटी बाई दादा-बाबूजी पूरे कुटुंब के स्तंभ थे। जेठानी-देवरानी में प्रगाढ़ प्रेम, समर्पण त्याग अद्वितीय था जो कि प्रणम्य है।

घर में साहित्यकारो कंला प्रेमियों का मेला लगा ही रहता था। जो भी खंडवा आता दादा के घर ही रूकता। परिवार का आतिथ्य पाकर परिवार का ही होकर रह जाता। श्री विष्णु प्रभाकरजी महादेवी वर्मा, भवानी प्रसाद मिश्र, शिवनमंगलजी सुमन, और अन्य लेखक, समृद्ध प्रतिभाएँ सिने हस्तियाँ सभी, दादा से मिलने और घर भी आते। महादेवजी दादा को भाई मानती थीं। दादा सभी के लिए प्रेरणास्त्रोत थे। और आज भी हैं। रामनारायण उपाध्याय सरलता के पर्याय है। 'रामादादा' ने सिखाया है, जीवन में सरलता और सहजता के साथ बढते जाना चाहिए और संघर्षो- कठिनाइयों को ठहाकों के साथ जीना चाहिए। सहसा, हमारे इकबालजी ड्राइवर ने बोला मेम साब घर आगया हैं। अब लगा दादा की दी गई छोटी-छोटी खुशियाँ छोटी नहीं बहुत बड़ी थीं। जो पचास वर्ष के अंतराल पर मन मस्तिष्क पर अंकित हैं। पाँच सितारा होटल की आईस्क्रीम में भी वह स्वाद नहीं है जो दादा द्वारा दिलाइ गई। 'माशे तोला' की आईस्क्रीम में था। ड्राइवर जी ने गाड़ी का दरवाजा खोला। गाड़ी सें उतरते हुए ऐसी अनुभूति जैसे माई रेवा में डुबकी लगाकर आई हूँ। दादा बाई के स्नेह में जो डुबी थी। घर की सीढ़ी चढ़ते समय सोच रही थी। क्या दादा मानस पुत्र थे......? ऐसे ज्योर्तिपुंज को कोटी कोटी नमन। जिससे संपूर्ण निमाड़ लोक ज्योतिर्मय है।

संपर्क : संस्थापक अध्यक्ष- शक्ति सामाजिक उत्थान संस्था, मुंबई

■

पोती की स्मृतियों में दादा

डॉ. ऋचा उपाध्याय
(सबसे छोटी पोती)

दादा वह शब्द है जो प्राय: एक बच्चा एक वर्ष के आसपास लगातार बोलने की प्रक्रिया में जल्दी सीख जाता है, और अनवरत कहता है दा-दा-दा-दा ,शायद मैं ने भी तभी से कहना शुरू किया होगा। मेरा नाम ऋचा ही दादा के कहने पर दिया गया है। वेदों में लिखे वाक्य को ऋचा कहते हैं, जीवन में पहले शब्दों से लेकर अपने नाम रखने की प्रक्रिया तक दादा साथ थे। थोड़ी समझ आई तो पता लगा कि एक दादा और है,, जो बाबूजी आ. शिवनारायण जी मेरे पापा शिशिर उपाध्याय जी के पिता हैं,दादा पंडित रामनारायण उपाध्याय पिताजी के ताऊ जी थे। बड़े भाग्यशाली हैं ,हम क्योंकि जिस तरह शिव ,राम के और राम शिव के हृदय में विराजते हैं वैसे ही मेरे दोनों दादा एक दूसरे के साथ में प्रेम से रहते थे,यह रूप भी मुझे मेरे घर में देखने को मिला। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके घर आसपास के वातावरण व शिक्षा संस्कार, महत्व रखते हैं वैसे ही खान - पान बोली - भाषा भी बच्चा इन्हीं से सीखता है और जीवन की आधारशिला रखता है। इसी तरह मेरे बाल्य काल में कई प्रसंग मेरे व्यक्तित्व निर्माण में भी दादा के साथ, प्यार आशीर्वाद से हुए ,जो आज भी स्मृति पटल पर ज्यों के त्यों अंकित है। कुछ प्रसंग जो मेरी दीर्घकालिक स्मृति में है उसमें से प्रमुख है 20 मई आ. दादा का जन्म दिन। जब से थोड़ा कुछ समझ आया यह तिथि उत्सव का दिन थी। सुबह से लेकर रात्रि तक साहित्य कुटीर खंडवा में शुभकामनाएं, फूल मालाएं मिठाई व ठहाकों की गूंज का मेला होता था, साहित्यिक चर्चाओं का विशेष दौर और मेरे बाल मन में आम रस की मौज।

दादा के जन्मदिन के आम रस की दावत होती थी क्योंकि दादा खुद इस दिन झोला भरकर आम लाते थे। 20 मई गर्मी की छुट्टियों में ही आता है, तो जीवन में दादा के रहते हमने इसका खंडवा घर में ही बहुत आनंद लिया। हम सब भाई-बहन इस दिन साथ-साथ - खाते खेलते और खुशी मनाते थे, कोई अतिथि आया तो बारी- बारी से पानी चाय- नाश्ते की ट्रे लेकर कचहरी में पहुँच जाते थे। खाली ट्रे लेकर दौड़ लगाते थे वापस लाते थे ,आते थे। साहित्य कुटीर हमारे संस्कारों की पाठशाला रही,बचपन में हम सभी को नमस्कार करते थे और अगर दादा परिचय करवा थे ,तब अतिथि से दो बात जरूर करते थे, शायद इसीलिए हम आज भी सभी भाई बहन नमस्कार के चमत्कार को मानते हैं। हमें बात करने में इतनी झिझक शायद नहीं होती थी तब भी क्योंकि हमारे साथ दादा थे, और आज भी वह अभी भी सूक्ष्म रूप में हमारे साथ हैं। गर्मी की छुट्टियाँ ही मेरे लिए खंडवा घर का समय रहता था और इसकी छत ही निराली थी,यह बातें मैं 1990 के दशक की कर रही हूँ,जब कूलर /ए सी नहीं होते थे। टेबल फैन और छत पर पानी डालकर लाइन से गद्दे बिछा कर सोया जाता था, या कहे कि गड़बड़ गोटी, लोट लगाई जाती थी ।

छत पर जाने से पहले दादा के साथ कचहरी में कहानियों किस्सों का दौर होता था, जिसमें दादा के श्रीमुख से हम उनके आंदोलन की बातें सुनते थे, के किस तरह वे गांधी जी से मिलने वर्धा सेवाग्राम में मिलने गए और गांधी जी से आश्रम में मिलने पर पूछा कि मैं देश सेवा करना चाहता हूँ तब जवाब में उन्होंने कहा कि देश तो अव्यक्त है उन्होंने कहा कि आप जहाँ रहते हैं उस क्षेत्र में सेवा कार्य करोगे तो वह भी देश सेवा हो जाएगी और हमने सीखा हम सब भी अपने क्षेत्र में अगर पूर्ण निष्ठा से कार्य करें तो वह भी देश सेवा ही है। ऐसे कई अनूठे संस्मरण हमारी गर्मी की छुट्टियों के साथ जुड़े और हँसते - खेलते हमारे जीवन की नींव रखी गई। दादा की एक लकड़ी की पेटी थी जो बचपन में हम सभी भाई बहनों की प्रिय थी। उसमें कीमती खजाना था, उसे उसको खोलने बंद करने का अलग ही आनंद आता था।

मेरे बाल्य काल में ही हमारी बड़ी बाई चली गई। आ दादा ने उनकी पुण्य स्मृति में न्यास बनाया था जो खंडवा स्थित कालमुखी वालों के बाड़े में कुएं के पास स्थित है। वह हमारी धमा चौकड़ी का अड्डा हुआ करता था। हम सभी भाई बहन न्यास में रखे गद्दे ,लोट और तकियों पर घर बनाते और खेलते और घर कुल्या खेलते थे। बड़ी बहनों से किताबें पढ़ना सीखते, जिसमें चित्रों से सजी किताबें मेरी प्रिय होती थी। रामायण के कई अध्याय हमने वहाँ यूँ ही पढ़ लिए थे। दादा की कई कविताओं में से एक मेरी प्रिय कविता रही,जब भी मैं कहीं घुम्मकड़ी कर रही होती हूँ तो सहज

ही बोल लेती हूँ कि,,,

अगर कहीं पर्वत है
तो निश्चित मानिए आसपास
कहीं नदी भी होगी
बिना हृदय में
गहरा दर्द समय सँजोये
कोई इतना ऊँचा
उठ नहीं सकता ...

और खिड़की से नदी झरना खोजने लगती हूँ। दादा की कई रचनाएं पढ़ी समझी, प्रेम के अनंत रूपों में से ही अनेक की व्याख्या करती हूँ। वह हमें समझाती हुई सी लगती है, जीवन को और जीवन के दर्शन को ! मुझे बचपन से आ. दादा लाड़ से बड़वानी का पपीता कहते थे, बड़वानी के पपीते निमाड़ में सबसे स्वादिष्ट और मीठे जो होते हैं सो, दादा जब हमारे यहां आते तो अधिकतर हम साथ में खाना खाते थे, और जब वह माँ को कहते जयश्री ...एक चखोंडी रोटी देना बस (पाव रोटी)तो, उनके जाने के बाद दादा की तरह में भी उनकी नकल कर मेरी माता को यूँ ही कहती थी। भाषा हमें हमारे घर में ही सीखने को मिली है, चाहे वह शुद्ध हिंदी हो या निक्खल निमाड़ी।

मेरे साथ दादा के बहुत से संस्मरण है,जो अधिकतर अंजड़, बड़वाह एवं अधिकांश खंडवा के हैं। दादा एक बार अंजड़ आए और उन्होंने देखा कि मेरे टिफिन पर लगा स्टीकर निकल रहा है ,उन्होंने खुद ही पूरा साफ कर एक सुंदर औरत की तस्वीर से उसको नया रूप दे दिया था जिसे आजकल आर्ट एंड क्राफ्ट कहते हैं। दादा को यह भी बहुत बढ़िया करते आता था। ऐसे कई सारी स्मृतियों के पुलिंदों के साथ कहानियाँ शेष है, मैं एलिस वंडरलैंड की एलिस तो नहीं पर साहित्य कुटीर के आंगन की ऋचा तो हूँ ही। दादा के साथ सीखने लायक बहुत था, है और रहेगा, पर मैंने जो आत्मसात किया वो यह है कि सरल होना बहुत कठिन है, कोशिश है सरल बनने की, सरल बनी रहूँ, और उसी प्रक्रिया में हूँ बस,यहीं विराम लेती हूँ।

ऐसे थे मेरे काकाजी - पं. रामनारायण उपाध्याय

रमेश पुरूषोत्तम उपाध्याय
(भतीजे)

काकाजी के साहित्यकार रूप से तो सभी परिचित हैं किन्तु आदरणीय काकाजी को समाज-सेवा का भी शौक था. लेकिन आजकल के नेताओं जैसा कदापि नहीं। मुझे याद आ रहे हैं सन् 1951-52 के वे दिन जब निमाड़ में अकाल की स्थिति पैदा हो गई थी। सभी ग्रामीण चिंतित व दुखी थे। गाँवों में रोजगार व खेती में कोई काम नहीं हो रहे थे। मौसम कृषि कार्यों के एकदम विपरीत था। उस समय काकाजी को सरकारी राहत कार्यों से कुछ उम्मीद थी। उम्मीदें और इच्छाएँ अपने आप पूरी नहीं होती, यह वे जानते थे। तो दूसरे दिन से ही जुट गए इस दिशा में। हमारे गाँव कालमुखी से जिला मुख्यालय खंडवा में अपनी दौड़-धूप शुरू कर दी। किस अफसर से कौन सा कार्य किस प्रकार करवाया जा सकता है, किस नेता या मंत्री की मदद ली जा सकती है ये सारे विचार क्रमबद्ध रूप में उन्हें स्पष्ट थे। उन्होंने ही सरकार को गाँव कालमुखी से अतर रेल्वे स्टेशन तक की 7 मील लंबी सडक बनाने की योजना राहत कार्य के अंतर्गत प्रारंभ करने का सुझाव दिया। इस योजना को क्रियान्वित करने के सारे नुस्खे भी उन्होंने ही बताए। बस कुछ ही हफ्तों में यह योजना स्वीकृत करवा कर उसे प्रारंभ करवाया। सभी को आश्चर्य था कि सरकारी राहत कार्य इतने कम समय में शुरू भी हो गया। फिर तो हर दिन सड़क पर कार्य करने के लिए आस-पास के 20-25

गाँवों के मजदूर आने लगे। हर रात उसी सड़क किनारे अपना कच्चा आशियाना बनाकर बेफिक्री से रात बिताई। सप्ताह के आखिरी दिन याने हर बुधवार गाँव में बाजार लगता है, अभी भी। उस दिन सड़क का काम बंद। सप्ताह की मजदूरी भी उसी बाजार के दिन मिलती थी। बाजार से अनाज एवं जीवन की अति आवश्यक चीजें खरीदना एवं उसी दिन अपने पास के गांव जाकर वहां रह रहे सदस्यों एवं पालतू जानवरों की देखभाल करके उसी दिन लौटना, यह दिनचर्या होती थी। राहत कार्य गर्मी के मौसम में 4-5 माह चला और पूरा हो गया। निमाड़ के अंचल में गरीब, दुखी, लाचार किसान मजदूरों के लिए काकाजी द्वारा चलाया गया वरदान-अभियान याद कर उनके सम्मान में और बढोतरी हुई है।

काकाजी की एक और छवि हमेशा प्रेरणा देती है। सन् 1982 में

हमारे गाँव कालमुखी में एक दिन दोपहर को आग लग गई थी। गाँव के सभी कच्चे घर, खलिहान उस आग की भेंट चढ़ गए। लोहे की सांकल से बंधे कई पालतू जानवर भी मर गए थे। रात तक आग की खबर खंडवा तब आ गई थी। गाँव में आगे बुझाने का कोई भी साधन नहीं थे। पास के कस्बे सनावद आदि से भी साधन समय पर न आ पाने से कोई भी कुछ भी स्वाह होने से नहीं बच पाया। खण्डवा में काकाजी रात में ही सक्रिय हो गए। सरकारी अधिकारियों, नेताओं, धार्मिक संस्थाओं एवं ट्रस्टों को सूचित किया। लोगों की तकलीफों का अहसास करवाया। दूसरे दिन सुबह से ही जरूरी राहत सामग्रियाँ लेकर स्वयं काकाजी उनके साथ गए। पीड़ितों को सांत्वना दी। आगे और भी मदद दिलवाने की योजना बनाई। किसी एक व्यक्ति द्वारा स्वयं के प्रयत्नों से गाँव वालों के आँसू पोंछने, उन्हें धीरज बंधाने का कार्य काकाजी ने किया है, वह जिसने भी देखा है वह उनके प्रति नत मस्तक है। यह काम उन्होंने अपनी 64 वर्ष की आयु में किया। आग लगने से दूसरे दिन से राहत सामग्री, जिसमें खाना-पानी, ओढ़ने-बिछाने का सामान, अस्थाई आवास व्यवस्था, मेडिकल सहायता याने जो भी जरूरी था वह उतना त्वरित किया गया कि तीसरे दिन से इस प्रकार की सहायता को रोकने या व्यवस्थित करने के प्रयास करना पड़े।

मेरा यह मानना है कि यह सबकुछ काकाजी के व्यक्तिगत प्रयासों, संबंधों एवं मदद के जुनून से ही संभव हो पाया।

सम्पर्क : 182, आनंद नगर, इंदौर म.प्र.

पुरातत्व और इतिहास बचायेंगे तो संस्कृति संरक्षित रहेगी-शिक्षाविद श्री व्यास

जनपरिषद ने पद्मश्री डॉ वाकणकर जन्मजयंती पर संगोष्ठी आयोजित की

मंदसौर । आज भीमबेटका शैलचित्रों की पहचान विश्व में है और यूनेस्को से मान्यता प्राप्त है इसके मूल में मालव अंचल के इतिहास और पुरावेत्ता डॉ. वाकणकर का योगदान है। आज हम इतिहास और पुरातात्विक धरोहरों को बचायेंगे तभी भारतीय संस्कृति संरक्षित रहेगी यह कहा नरसिंहगढ़ के साहित्यकार एवं पूर्व संचालक लोक शिक्षण श्री सत्यप्रकाश व्यास ने। आप प्रमुख सामाजिक संस्था जनपरिषद मंदसौर चैप्टर द्वारा आयोजित पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर जन्मजयंती संगोष्ठी को संबोधित कर रहे थे। हेमू कालानी चौराहे स्थित पांडेय सभागार में सम्पन्न संगोष्ठी की अध्यक्षता शिक्षाविद एवं इतिहासकार श्री गिरिजाशंकर रुनवाल ने की। श्री रुनवाल ने डीकेन जावद भानपुरा अफजलपुर मंदसौर आदि स्थानों पर पुरातात्विक कार्यो की जानकारी दी। दशपुर प्राच्य शोध संस्थान निदेशक एवं राष्ट्रपति पुरस्कृत शिक्षक श्री कैलाशचंद्र पांडेय ने कहा कि अविभाजित मंदसौर - नीमच जिले में पुरातात्विक महत्व के अनेक स्थान हैं । 1975 में पद्म श्री डॉ वाकणकर के साथ अंचल में उत्खनन करते हुए अनेक दुर्लभ और प्राचीन प्रतिमाओं

को संग्रहित किया और जिला पुरातत्व संग्रहालय को समर्पित की है इन्हें बचाना और ज्ञान के साथ नई युवा पीढ़ी को अवगत कराना महत्वपूर्ण है । श्री पांडेय ने कहा कि केन्द्र और राज्य सरकार को पुरातात्विक महत्व के स्थानों को संरक्षित करते हुए जनसाधारण व स्कूली बच्चों को जानकारी के साथ अवलोकन कराना चाहिए तभी इनकी उपादेयता होगी इस दिशा में सरकारें गंभीर नहीं है। सैंकड़ों स्थानों पर केयर टेकर और गाइड ही नहीं हैं। भारतीय शिक्षण मंडल जिला प्रमुख श्री श्याम सुंदर देशमुख एवं शिक्षाविद श्री रमेशचंद्र चंद्रे ने पुरजोर शब्दों में कहा कि पुरातत्व को संग्रहित करें और प्राथमिक व माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को अवगत कराएं इसे पाठ्यक्रम से जोड़ें। आपने कहा कि मध्यप्रदेश पाठ्य पुस्तक निगम के माध्यम से पहल करेंगे। अभिभाषक संघ पूर्व सचिव श्री अजय सिखवाल ने कहा कि जिले और प्रदेश में पुरातात्विक महत्व की असीम संपदा है इसके प्रति जिलों में गठित समितियां निर्जीव हैं इसके दुष्परिणाम भोगने पड़ रहे हैं। प्राचीन दुर्लभ सामग्रियों, प्रतिमाओं पर तस्करों की नजरें हैं और कई चोरी होगई है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रांतीय प्रतिनिधि श्री ब्रजेश जोशी दशपुर जागृति संगठन अध्यक्ष डॉ देवेंद्र पुराणिक, नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ प्रतिनिधि डॉ सहदेव सिंह चौहान, अखिल भारतीय साहित्य परिषद जिलाध्यक्ष श्री नरेंद्र भावसार, वाल्मीकि समाज राष्ट्रीय मंत्री श्री राजाराम तंवर, स्पिक मैके समन्वयक श्री अजय डांगी, पेंशनर महासंघ सचिव श्री नंदकिशोर राठौर, डॉ. दिनेश तिवारी, श्री सत्येंद्र सिंह सोम आदि ने संगोष्ठी में विचार व्यक्त करते हुए सहभागिता की। वक्ताओं ने पद्मश्री डॉ वाकणकर के व्यक्तित्व और कृतित्व को श्रद्धा और आदर से स्मरण करते हुए अतुलनीय योगदान की सराहना की। इसके पूर्व अतिथियों ने पद्मश्री डॉ. वाकणकर के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित की। जनपरिषद प्रांतीय सह सचिव वरिष्ठ पत्रकार डॉ घनश्याम बटवाल, श्री ब्रजेश जोशी, डॉ देवेंद्र पुराणिक, श्री कैलाश चंद्र पांडेय, श्री नरेन्द्र भावसार श्री नंदकिशोर राठौर आदि ने अतिथियों श्री व्यास एवं श्री रुनवाल का स्वागत सम्मान किया। पुष्प मालाओं के साथ शॉल ओढ़ाई। संगोष्ठी में विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधियों के साथ गोपाल बैरागी, राजेंद्र सिंह चौहान, अमरसिंह कुशवाहा, अजय तिवारी, महेश शर्मा, अरविंद जोशी, प्रदीप शर्मा शम्भूसेन राठौर, मनीष रुनवाल, मंगल राठौड़, हिमांशु पांडे, सिद्धार्थ तंवर आदि उपस्थित थे। संगोष्ठी संचालन जन परिषद के डॉ घनश्याम बटवाल ने किया। आभार माना शिक्षाविद अजिजुल्लाह खालिद ने।

रपट: डॉ. घनश्याम बटवाल

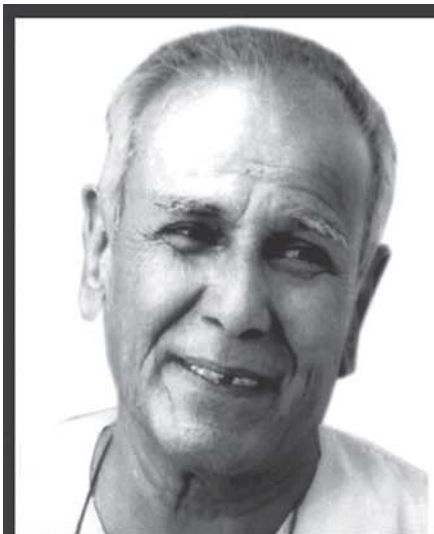

पं.राम नारायण जी उपाध्याय

निमाड़ के लोक संस्कृति पुरुष
गांधीवादी विचारक-ललित निबंधकार

पद्मश्री अलंकृत,साहित्य वाचस्पति
प्रखरवक्ता,शालीन व्यक्तित्व

प्रकाशित ५८ पुस्तकों में से...

वाङ्मयावतार अद्वैताचार्य जगद्गुरु शंकराचार्य

डॉ . राजरानी शर्मा

आदि शंकराचार्य को विश्व अद्वैतवाद के प्रवर्तक के रूप में जानता है। भारतीय मनीषा में विश्वासों के नये अवतार स्वरूप अपनी दृढ़ संकल्पनाओं का परिचय देने वाले आदि शंकराचार्य का भक्ति एवं स्तुति साहित्य में भी प्रचुर योगदान है। उनका तपोनिष्ठ जीवन प्रज्ञा पारमिता का असीमित पारावार होता है। जन्म जन्मान्तरों के संचित पुण्य आद्य शंकराचार्य की विभूति में रचा बसा है। उनका पूरा व्यक्तित्व भारतीय मनीषा का समग्र प्रतिबिंब है, भारतीय मनीषा का पुंजीभूत रूप है। आदि शंकराचार्य का मनोजगत मौलिक उद्भावनाओं और विश्वरूप की विराट अद्वैतचेतना का अनूठा आख्यान है। आदि शंकराचार्य की तपोपूत निर्मल और पारदर्शी चिन्तन धारा में आत्मा और परमात्मा का ऐक्य स्पष्ट परिलक्षित होता है । शंकराचार्य ज्ञान, करुणा और चिरंतन सत्य की त्रयी को अपनी पारमेष्ठी विभूति में लपेट कर जिस भावधारा में मानव चेतना को बहा ले गये वह अद्भुत ब्रह्मानंद की अजस्र धारा रही जिसमें भारतीय मनीषा को नये संकल्प और नयी परिभाषा मिली ।

आद्य शंकराचार्य का दर्शन मनोभूमि के उस धरातल को स्पर्श करता है जब पावनानां पावन चेतना शून्य को अनुभव कर अखंड आनंद की सौ- सौ धाराओं में फूट कर भी अद्वैत का अनुभव करती है । आदि शंकराचार्य (788-820 ई.) भारत के उन महान मनीषियों में से हैं, जिन्होंने न केवल दर्शन के क्षेत्र में अमिट छाप छोड़ी, बल्कि धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना का पुनर्निर्माण भी किया। जब भारत धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि से बंटा हुआ था, शंकराचार्य ने अद्वैत वेदांत के माध्यम से एकता, समन्वय और आत्मबोध का संदेश दिया। आत्मबोध के अनेकानेक आयामों को अपने आत्म साक्षात्कारों का पर्याय बनाकर प्रचुर साहित्य से भारतीय मनीषा को समृद्ध करने वाले आदि शंकर आचार्यत्व की उस धारा को प्रवाहित कर गये जहां ज्ञान मानवीय करुणा और आत्मज्योति का पर्याय बन गया !

स्पष्टत: तो हम जानते हैं कि आदि शंकराचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा, अद्वैत वेदान्त की विचार राशि विकीर्ण की वस्तुत: इससे भी बड़ी बात यह कि उनकी सृजन शैली ने अद्भुत मानवीय समन्वय और करुणा का उपहार दिया। भारतवर्ष की यात्रा और चतुष्पीठ की स्थापना के मूल में शंकर की करुणासिक्त दृष्टि रही और यह अभिव्यक्त करने का मौलिक प्रयास रहा कि देवत्व की राह मानवीय हृदय की निष्कपट गहनता और निश्छलता से होकर जाती है । तत्वचिन्तन और त्तत्व निरूपण के पीछे एक व्यापक दृष्टि मानव मन की गहराई को नापना रही है। यही हमारे वैदिक औपनिषिदिक से लेकर ब्राह्मण ग्रन्थों स्मृति ग्रन्थों, आरण्यक ग्रन्थों और पौराणिक ग्रन्थों का सारभूत तत्व है ।

जगद्गुरु आदि शंकराचार्य भारत के एक अद्वितीय ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, क्योंकि उन्होंने अपने भीतर कवि, तर्कशास्त्री, एक उत्साही भक्त और एक रहस्यवादी की विशेषताओं को समाहित किया और साथ ही वे अद्वैत नामक दर्शन प्रणाली के अग्रणी व्याख्याता थे। प्रस्थानत्रय पर अपनी टिप्पणियों में, उन्होंने निरंतर तार्किक और संयोजित तर्क और खंडन की एक दुर्लभ क्षमता और तर्क की ऐसी सूक्ष्मता का प्रदर्शन किया जो दुनिया के दार्शनिक कार्यों में अद्वितीय है। उनकी मुख्य शिक्षाओं को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि कर्म के कारण जन्म और मृत्यु का क्रम या संसार की पुष्टि और उसका महत्व, सर्वोच्च आत्मा की वास्तविकता की तुलना में घटनाओं की अनिवार्य सापेक्षता का बोध, उस आत्मा का बोध मात्र एक सैद्धांतिक अभ्यास नहीं है, बल्कि उपनिषदों के इस कथन, तत्त्वमसि, 'तुम वही हो' द्वारा सिखाई गई प्रत्यक्ष अनुभूति और वास्तविक अनुभव की प्रकृति है।

जगद्गुरु आदि शंकराचार्य करुणामूर्ति थे । जीवन में प्रत्येक घटना से गहन शिक्षा लेने वाले और मानवीय संदर्भ में देखने वाले थे! आदि शंकराचार्य के एक शिष्य की कहानी प्रसिद्ध है —आनंदगिरि शंकर के साथ श्रृंगेरी में रहने वाले कम विद्वान् शिष्यों में से एक थे। लेकिन गिरि, जैसा कि उन्हें कहा जाता था, आचार्य के प्रति अत्यंत समर्पित थे। गिरि हमेशा अपने गुरु की सेवा में लगे रहते थे। एक बार ऐसा हुआ कि शंकर उपनिषदों पर अपना सामान्य प्रात:कालीन प्रवचन शुरू करने वाले थे और अन्य शिष्य शांति पाठ करने लगे। लेकिन गिरि अनुपस्थित थे क्योंकि वे अपने गुरु के वस्त्र प्रक्षालन के लिए नदी पर गए थे। इसलिए शंकराचार्य जी ने अन्य शिष्यों से गिरि के लौटने की प्रतीक्षा करने को कहा। लेकिन पद्मपाद, जिन्हें स्पष्ट रूप से अपने पांडित्य पर गर्व था, ने कहा, 'गिरि एक मंदबुद्धि व्यक्ति है। वह वास्तव में शास्त्रों को सीखने के योग्य नहीं है। उनके हमारे साथ आने का इंतज़ार करने का क्या मतलब है?' शंकराचार्य जी ने पद्मपाद और अन्य शिष्यों के अभिमान को कुचलने का निर्णय किया। गिरि के प्रति विशुद्ध करुणा के कारण, आचार्य ने उन्हें शास्त्रों के ज्ञान का आशीर्वाद दिया, ऐसा करने के लिए उन्होंने अलौकिक शक्तियों का उपयोग किया। परिणामस्वरूप, गिरि तुरंत ही एक विद्वान बन गये, यही करुणामूर्ति की करुणा का प्रादर्श है। नदी से लौटकर, उन्होंने अपने गुरु जी की स्तुति में सद्यरचित आठ छंद कहे जो तोटकाष्टक के नाम से विख्यात हुए। अन्य शिष्य उन्हें कठिन छंद में तत्काल अष्टक की रचना करते हुए सुनकर आश्चर्यचकित

हो गए। गिरि ने एक और रचना भी की, फिर से तोटक छंद में, जिसे 'श्रुतिसारसमुद्रणा' कहा जाता है। गुरु की कृपा से, गिरि सभी शास्त्रों के ज्ञाता बन गए, और उन्होंने पद्मपाद और अन्य शिष्यों का सम्मान अर्जित किया। उन्हें तोटकाचार्य के रूप में जाना जाने लगा, क्योंकि वे तोटक छंद में छंदों की रचना करने में निपुण हो गये थे। वे शंकर के चार सबसे महत्वपूर्ण शिष्यों में से एक बन गए और बाद में उन्हें बदरी नारायण में ज्योतिर्मठ चलाने का काम सौंपा गया। (उपर्युक्त कहानी माधव विद्यारण्य के शंकर दिग्विजय से ली गई है।) करुणा प्रासादिक होती है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है ये —

तोताकाष्टकम् शंकराचार्य की स्तुति

तोटकाष्टकं श्रीशंकरदेशिकाष्टकं च

आदि शंकराचार्य के सम्मान में रचित आठ श्लोक 'तोटकाष्टकं' वर्णित हैं। इसमें अद्वैत परम्परा का संक्षिप्त विवरण और शंकर के शिष्य तोटक का संक्षिप्त विवरण भी उल्लिखित है।

आह्वान:

शंकरं पुत्रं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः आरंभ ॥

मैं ब्रह्मसूत्रों के रचयिता श्री वेदव्यास को, जो भगवान विष्णु के अतिरिक्त और कोई नहीं हैं, तथा उन सूत्रों के भाष्यकार श्री शंकराचार्य को, जो भगवान शिव के अतिरिक्त और कोई नहीं हैं, बारंबार नमस्कार करता हूँ।

अद्वैत गुरु-परम्परा:

नारायणं पद्मभुवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च
व्यासं शुकं गौड़पदं महान्तं गोविंदयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्।
श्री पितृमथास्य पद्मपादं च हस्तमालकं च शिष्यम्
तं तोटकं वार्तिककर्मण्यंस्मद्गुरुं संततमन्तोऽस्मि ॥

ये दो श्लोक अद्वैत परंपरा का सम्मान करते हैं। यहां क्रम से उल्लिखित नाम हैं 1) श्रीमन्नारायण, 2) ब्रह्मा, 3) वशिष्ठ, 4) शक्ति, 5) पराशर, 6) व्यास, 7) शुक, 8) गौड़पाद, 9) गोविंदपाद, 10) श्री (आदि) शंकराचार्य, और उनके चार शिष्य, 11) पद्मपाद, 12) हस्तअमलका, 13) तोताका, और 14) सुरेश्वर, और अन्य गुरु। सुरेश्वर को वर्त्तिकार के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि उन्होंने बृहदारण्यक और तैत्तिरीय उपनिषद पर प्रसिद्ध वर्तिका लिखी थी। श्रीमन्नारायण ने ब्रह्मा को वेदों का उपदेश दिया।

॥ तोटकाष्टकं ॥

तोटकाष्टकं की रचना तोटक छंद में की गई है, जिसमें प्रत्येक पाद (चौथाई) में चार स-गण हैं। यहाँ एक स-गण दो छोटे अक्षरों और उसके बाद एक लंबे अक्षर से बना है। यह भजन स्वाभाविक रूप से संगीत के लिए उपयुक्त है। सुझाया गया राग (हिंदुस्तानी) तोड़ी है।

विदिताखिलशास्त्रसुधाजलधे
महितोपनिषत् प्रमाणितार्थनिधे।
हृदये कलये विमलं चरणं
भव शंकर देशिक मे शरणम् ॥ 1. ॥

हे ! शास्त्रों के अमृत सागर के ज्ञाता, महान उपनिषदों के ज्ञान के व्याख्याता! मैं अपने हृदय में आपके पवित्र चरण कमलों का ध्यान करता हूँ। हे गुरु शंकर, मेरी शरण बनो।

करुणावरुणालय पालय मां भवसागरदुःखविदूनहृदम्।
रचयखिलदर्शनतत्त्वविदं भव शंकर देशिक मे शरणम् ॥ 2 ॥

हे करुणा के सागर! हे जन्म-सागर के दुःख से व्याकुल मेरे हृदय की रक्षा करो! (अपनी कृपा से) मुझे समस्त दर्शन-पद्धतियों के सत्यों का ज्ञाता बनाओ। हे गुरु शंकर! मेरी शरण बनो।

भवता जनता सुहिता भविता निजबोधविचार चारुमते।
कल्याणेश्वरजीवविवेकविदं भव शंकर देशिक मे शरणम् ॥ 3 ॥

हे शंकर! आप ही के कारण लोगों को सुख मिला है, क्योंकि आपकी बुद्धि आत्मज्ञान के अन्वेषण में निपुण है। मुझे ईश्वर और आत्मा का ज्ञान कराइए। हे गुरु शंकर! आप मेरी शरण बनें।

भव एव भवनीति मे नितरां समाजायत चेतसि कौतुकिता।
मम वारय मोहमहाजलधिं भव शंकर देशिक मे शरणम् ॥ 4 ॥

आप स्वयं भगवान शिव हैं। यह जानकर मेरा मन अपार आनंद से भर गया है। मेरे मोह के सागर का अंत कर दीजिए। हे गुरु शंकर, मेरी शरण बनिए।

सुकृतेऽधिकृते बहुधा भवतो भाविता समदर्शनलालसता।
अतिदिनमिमं परिपाल्य मां भव शंकर देशिक मे शरणम् ॥ 5 ॥

अनेक प्रकार से अनेक पुण्य कर्म करने के पश्चात ही आपके माध्यम से ब्रह्म के अनुभव की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। मुझ अत्यंत असहाय की रक्षा कीजिए। हे गुरु शंकर! मेरी शरण बनिए।

जगतीमवितुं कलिताकृतयो विचरन्ति महामहशश्लतः।
अहिमांशुरिवात्र विभासि गुरो भव शंकर देशिक मे शरणम् ॥ 6 ॥

जगत के उद्धार के लिए आपके महान शिष्य नाना प्रकार के रूप धारण करके विचरण करते हैं। हे गुरुवर! आप उनके बीच सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं। हे गुरुवर! मेरी शरण बनिए।

गुरुपुंगव पुंगवकेतन ते समतामयतां नहि कोऽपि सुधीः।
शरणगतवत्सल तत्त्वनिधे भव शंकर देशिक मे शरणम् ॥ 7 ॥

हे गुरुओं में श्रेष्ठ! हे भगवान्, जिनकी ध्वजा पर बैल का चिह्न अंकित है! बुद्धिमानों में आपकी कोई बराबरी नहीं है। आप शरणागतों पर स्नेह करने वाले हैं! हे सत्य के भण्डार! हे गुरु शंकर! मेरी शरण बनिए।

विदिता न माया विषादक्कला न च किंचन कांचनमस्ति गुरो।
द्रुतमेव विदेहि कृपां सहजां भव शंकर देशिक मे शरणम् ॥ 8 ॥

हे गुरुवर, मैं न तो ज्ञान की एक भी शाखा को स्पष्ट रूप से समझ पाया हूँ, न ही मेरे पास कोई धन है। आप मुझ पर शीघ्र ही अपनी स्वाभाविक दया प्रदान करें। हे गुरुवर शंकर, मेरी शरण बनिए।

इति श्रीमत्तोच्चाचार्यविरचितं श्रीशङ्करदेशिकाष्टकं संपूर्णम्।

ये स्तोत्र शंकराचार्य के करुणावरुणालय होने का प्रमाण है कि तत्काल अपने शिष्य को ज्ञान पुंज बना दिया।

एक और तथ्य है कि जगद्गुरु शंकराचार्य ने हृदय की पावन भूमि को वेदों की वेदिका से भी उँचा स्थान दिया और अद्वैत वाद का व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया कि अणु अणु में कोई द्वैत ही नहीं। इसीलिये तो अकिंचन

ब्राह्मण की वेदना से द्रवित होकर कनक धारा स्तोत्र की रचना की। अद्भुत काव्यकला और दर्शन के साथ रचा यह स्तोत्र और उसे सुनकर देवी लक्ष्मी द्वारा कनक वर्षा का आख्यान इस बात का प्रामाणिक निदर्शन है कि हमारे देवी देवता साक्षात् करुणावतार हैं और हमारे आध्यात्म में भी मानवीय करुणा सर्वोपरि है। महाविभूति हर पराकाष्ठा से, हर सिद्धांत से परे होते हैं। शंकराचार्य जी के जीवन में अनेक प्रसंग हैं जो उन्हें लीक से हटकर मौलिक आख्यान मौलिक चेतना का सम्मान करने वाले वाड्मयावतार के रूप में सिद्ध करते हैं ।

शंकराचार्य जी जिस समय कहते हैं कि सत्य सदा विरुद्धों का सामंजस्य है । दो विरुद्ध ध्रुवों को एक करते हमारे जगद्गुरु शंकराचार्य ने अनेक रचनाएं की, जिनमें दस उपनिषदों पर टिप्पणियां, श्रीभगवद गीता पर टिप्पणी, वेदांत या ब्रह्म सूत्रों पर टिप्पणी, गौड़पाद कारिका, और उपदेश सहस्त्री शामिल हैं। जो सगुण निर्गुण दोनों से ऊपर हैं एक ओर जहां प्रस्थान त्रयी अर्थात् गीता, ब्रह्म सूत्र और उपनिषद पर भाष्य किया वहीं स्तोत्र साहित्य का प्रचुर सृजन किया। सगुण उपासना का खंडन नहीं किया। शंकराचार्य ने सत्य से जीने का उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने अद्वैत चिन्तन को पुनर्जीवित किया और सनातन हिन्दू धर्म के दार्शनिक आधार को सुदृढ़ किया। शंकराचार्य ने जनसामान्य में प्रचलित मूर्तिपूजा का औचित्य सिद्ध करने का भी प्रयास किया। शंकराचार्य के उपदेश सदा ही बहुत प्रभावशाली रहे हैं और आज भी बहुत असरदार हैं।

आदि शंकराचार्य ने सौंदर्य लहरी नाम की रचना की थी। उन्होंने यह रचना कश्मीर के डल झील के किनारे स्थित गोपाद्री पर्वत पर की थी. कहा जाता है कि कश्मीरी महिला के साथ हुए शास्त्रार्थ में शंकराचार्य ने शक्तिवाद की महानता को स्वीकारा और सौंदर्य लहरी की रचना की। शंकराचार्य की सौन्दर्यलहरी नित्यविहाररस अथवा ललिता-रस की उत्ताल-तरंग है! सौन्दर्यलहरी राग की समाधि और समाधि का राग है अथवा रागात्मक-समाधि है! कामेश्वर और कामेश्वरी हाड़-मांस के पुतले नहीं हैं, लीला-विग्रह हैं, राग-रस की देह है! महात्रिपुरसुन्दरी आनन्दविग्रहा हैं! कामेश्वर और कामेश्वरी के हृदय में जो रससिंधु उमँग रहा है, वह एक है, अखंड है और अनन्त है, उसी का एक नाम ललिता है! उसी का एक नाम श्रीविद्या-दर्शन है। शंकर ने न केवल उसे रचा प्रत्युत सौंदर्यबोध के नव्यतम मानकों के साथ अभूतपूर्व अभिव्यक्ति क्षमता के साथ औपनिषदिक प्रज्ञा और चैतन्य मानस के उद्घोष के साथ सृजन की अन्यतम उपलब्धि के रूप में स्थापित कर उस श्रीविग्रह की अभिनव मानसी छबि लोक में बसा दी और आराधना के स्तर को एक शीर्ष अनुभूति तक ले गये। सौन्दर्य लहरी दिव्य सृजन की आनुष्ठानिक संकल्पना है। जिसमें जगद्गुरु ने अपने मनोलोक को लोकोत्तर चेतना के छोरों से बाँधते हुये सृजन का नक्षत्रलोक सा बुन दिया है। जब साम्य-अवस्था प्राप्त हो जाती है, जब अहंकार विगलित हो जाता है, जब वासना भस्म हो जाती है, जब देहभाव मिट जाता है , तब महात्रिपुरसुन्दरी ललिता के माधुर्य-भाव का जागरण होता है! शंकराचार्य की सौन्दर्यलहरी ललिता के उसी माधुर्य-भाव की लहरी है। कामेश्वर-कामेश्वरी की केलि का वही राग, वही गीत है ।निरवधि महाभोग रसिका की वाड्मयी मूर्ति है। संसार का समस्त सौन्दर्य भाव ललिता के उस भावसिंधु का ही तो बिन्दु है। यही शंकराचार्य के साहित्यावतार होने का परम प्रमाण है । वेदान्त को लोकोपयोगी बनाने का संकल्प सगुण साकार भाव की रचनाओं के माध्यम से किया है ।

जगद्गुरु शंकराचार्य की विविध रचनायें मर्मस्पर्शी तो हैं ही जीवन स्पर्शी भी हैं। सभी देवता उन्हें पूज्य, आराध्य, सुसेव्य, स्तुत्य और द्वैत अद्वैत के विचार से ऊपर सहज साध्य लगते हैं तभी तो आचार्य शंकर ने दिने दिने, नवं - नवं रूप दिये हैं और शब्दों के अर्ध्य से फिर चाहे स्तोत्र हों या अष्टक, स्तुतियां हों या क्षमाराधन मंत्र सबमें द्रवित सा करुणा कलित सा सौन्दर्य और मन की सरलता का माधुर्य ओत प्रोत रहता है।

आदि शंकराचार्य जी की रचनाओं को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है - भाष्य, प्रकरण ग्रंथ, स्तोत्र और स्तुतियाँ आदि। जैसे निम्न सभी ग्रंथों पर भाष्य लिखे !

ब्रह्मसूत्र पर ब्रह्मसूत्रभाष्य, ऐतरेय उपनिषद, वृहदारण्यक उपनिषद, ईश उपनिषद (शुक्ल यजुर्वेद), तैत्तरीय उपनिषद (कृष्ण यजुर्वेद), श्वेताश्वतर उपनिषद (कृष्ण यजुर्वेद), कठोपनिषद (कृष्ण यजुर्वेद), केनोपनिषद (सामवेद), छान्दोग्य उपनिषद (सामवेद), माण्डूक्य उपनिषद तथा गौडपादकारिका, मुण्डक उपनिषद (अथर्ववेद), प्रश्नोपनिषद (अथर्ववेद) भागवद्गीता (महाभारत), विष्णु सहस्रनाम (महाभारत), सानत्सुजातिय (महाभारत), गायत्री मंत्र पर भाष्य रचकर तपस्या, स्वाध्याय और लोकोपयोगी सृजन तीनों की त्रिवेणी अजस्र धार बहा दी।

अनेक प्रकरण ग्रन्थ लिखे जैसे विवेक चूड़ामणि, उपदेश साहस्त्री, शतश्लोकी, दशश्लोकी, एकश्लोकी, पञ्चीकरण, आत्मबोध, अपरोक्षानुभूति, साधनापञ्चकम्, निर्वाणशतकम्, मनीषापञ्चकम्, यतिपञ्चकम्, वाक्यशुद्धि, तत्त्वबोध, वाक्यवृत्ति, सिद्धान्ततत्त्वबिन्दु, निर्गुणमानसपूजा और प्रश्नोत्तररत्नमालिका जैसे अमूल्य प्रकरण ग्रन्थ हों।

यही नहीं अनेक स्तोत्र और स्तुतियों की रचना की जो जन - जन की कंठ हार बनी हैं जैसे -

1. गणेश जी की स्तुतिपरक रचनायें जैसे गणेश पंचरत्नम्, गणेश भुजंगम्

2. शिवस्तुति संबंधी रचनायें जैसे, कालभैरवाष्टक, दशश्लोकी स्तुति, दक्षिणमूर्ति अष्टकम्, दक्षिणमूर्ति स्तोत्रम्, दक्षिणमूर्ति वर्णमाला स्तोत्रम्

मृत्युंजय मानसिक पूजा, वेदसार शिव स्तोत्रम्, शिव अपराधक्षमापन स्तोत्रम्, शिव आनंदलहरी, शिव केशादिपादान्तवर्णन स्तोत्रम्, शिव नामावलि अष्टकम, शिव पंचाक्षर स्तोत्रम, शिव पंचाक्षरा नक्षत्रमालास्तोत्रम्, शिव पादादिकेशान्तवर्णनस्तोत्रम, शिव भुजांगम्, शिव मानस पूजा, सुवर्णमाला स्तुति आदि रचनाओं से व्यापक दृष्टि और सहज भाव का परिचय दिया है ।

3. शक्तिस्तुति एवं शक्ति स्तुति संबंधी रचनायें जैसे अन्नपूर्णा अष्टकम्, आनंदलहरी, कनकधारा स्तोत्रम्, कल्याण वृष्टिस्तव, गौरी दशकम्, त्रिपुरसुंदरी अष्टकम् , त्रिपुरसुंदरी मानस पूजा, त्रिपुरसुंदरी वेद पाद स्तोत्रम्, देवी चतुःषष्ठी उपचार पूजा स्तोत्रम् , देवी भुजांगम्, नवरत्न मालिका, भवानी भुजांगम्, भ्रमरांबा अष्टकम्, मंत्रमातृका पुष्पमालास्तव, महिषासुरमर्दिनी

स्तोत्रम्, ललिता पंचरत्नम्, शारदा भुजंगप्रयात स्तोत्रम्, सौन्दर्यलहरी, नर्मदाष्टकम्

4. विष्णु एवं उनके अवतारों की स्तुति अच्युताष्टकम् कृष्णाष्टकम्, गोविंदाष्टकम्, जगन्नाथाष्टकम्, पांडुरंगाष्टकम्, भगवन मानस पूजा, मोहमुद्गार (भजगोविंदम्), राम भुजंगप्रयात स्तोत्रम्, लक्ष्मीनृसिंह करावलंब (करुणरस) स्तोत्रम्, लक्ष्मीनरसिंह पंचरत्नम्, विष्णुपादादिकेशान्त स्तोत्रम्, विष्णु भुजंगप्रयात स्तोत्रम् षट्पदीस्तोत्रम्

5. अन्य देवताओं एवं तीर्थों की स्तुतियाँ जैसे - अर्धनारीश्वरस्तोत्रम्, उमा महेश्वर स्तोत्रम्, काशी पंचकम्, गंगाष्टकम्, गुरु अष्टकम्, नर्मदाष्टकम्, निर्गुण मानसपूजा, मणिकर्णिका अष्टकम्, यमुनाष्टकम् जैसे प्रचुर साहित्य की रचना हमारी परंपरा की उस विशालता को दर्शाती है जहाँ हम सिंद्धान्तों को लेकर संकुचित, संकीर्ण और निर्मम नहीं होते वरन् उदारचेता, सकारात्मक, सृजनात्मक और विशाल हृदय का परिचय देकर नव प्रवर्तन करने में विश्वास रखते हैं। यहाँ तुलसी का यह दोहा चरितार्थ होता है।

हिय निर्गुन नयनन सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥

इस प्रकार वैचारिक समन्वय और कारुणिक प्रज्ञा का अद्भुत विस्तार हमारी परंपरा के शिरोमणि शिखर पुरुष को गढ़ता है। इस हृदय परिवर्तन के पीछे भी एक प्रेरक घटना है। आचार्यशंकर जब भारती के शास्त्रार्थ के प्रश्नों के उत्तर के लिये काशी वास कर रहे थे तब की घटना है।

आचार्य शंकर तो बाल-ब्रह्मचारी थे, अत: काम से संबंधित उनके प्रश्नों के उत्तर कहाँ से देते? इस पर उन्होंने भारती देवी से कुछ दिनों का समय माँगा तथा पर-काया में प्रवेश कर उस विषय की सारी जानकारी प्राप्त की। इसके बाद आचार्य शंकर ने भारती को भी शास्त्रार्थ में हरा दिया। काशी में प्रवास के दौरान उन्होंने और भी बड़े-बड़े ज्ञानी पंडितों को शास्त्रार्थ में परास्त किया और गुरु पद पर प्रतिष्ठित हुए। अनेक शिष्यों ने उनसे दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद वे धर्म का प्रचार करने लगे। वेदांत प्रचार में संलग्न रहकर उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना भी की। अद्वैत ब्रह्मवादी आचार्य शंकर केवल निर्विशेष ब्रह्म को सत्य मानते थे और ब्रह्मज्ञान में ही निमग्न रहते थे। एक बार वे ब्रह्म मुहूर्त में अपने शिष्यों के साथ एक अति सँकरी गली से स्नान हेतु मणिकर्णिका घाट जा रहे थे। रास्ते में एक युवती अपने मृत पति का सिर गोद में लिए विलाप करती हुई बैठी थी। आचार्य शंकर के शिष्यों ने उस स्त्री से अपने पति के शव को हटाकर रास्ता देने की प्रार्थना की, लेकिन वह स्त्री उसे अनसुना कर रुदन करती रही। तब स्वयं आचार्य ने उससे वह शव हटाने का अनुरोध किया। उनका आग्रह सुनकर वह स्त्री कहने लगी- 'हे संन्यासी! आप मुझसे बार-बार यह शव हटाने के लिए कह रहे हैं। आप इस शव को ही हट जाने के लिए क्यों नहीं कहते?' यह सुनकर आचार्य बोले- 'हे देवी! आप शोक में कदाचित यह भी भूल गई कि शव में स्वयं हटने की शक्ति ही नहीं है।' स्त्री ने तुरंत उत्तर दिया- 'महात्मन् आपकी दृष्टि में तो शक्ति निरपेक्ष ब्रह्म ही जगत का कर्ता है। फिर शक्ति के बिना यह शव क्यों नहीं हट सकता?' उस स्त्री का ऐसा गंभीर, ज्ञानमय, रहस्यपूर्ण वाक्य सुनकर आचार्य वहीं बैठ गए। उन्हें समाधि लग गई। अंत:चक्षु में उन्होंने देखा- सर्वत्र आद्याशक्ति महामाया लीला विलाप कर रही हैं। उनका हृदय अनिवर्चनीय आनंद से भर गया और मुख से मातृ वंदना की शब्दमयी धारा स्तोत्र बनकर फूट पड़ी।

अब आचार्य शंकर ऐसे महासागर बन गए, जिसमें अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टा द्वैतवाद, निर्गुण ब्रह्म ज्ञान के साथ सगुण साकार की भक्ति की धाराएँ एक साथ हिलोरें लेने लगीं। उन्होंने अनुभव किया कि ज्ञान की अद्वैत भूमि पर जो परमात्मा निर्गुण निराकार ब्रह्म है, वही द्वैत की भूमि पर सगुण साकार है। उन्होंने निर्गुण और सगुण दोनों का समर्थन करके निर्गुण तक पहुँचने के लिए सगुण की उपासना को अपरिहार्य सीढ़ी माना। ज्ञान और भक्ति की मिलन भूमि पर यह भी अनुभव किया कि अद्वैत ज्ञान ही सभी साधनाओं की परम उपलब्धि है। उन्होंने 'ब्रह्मं सत्यं जगन्मिथ्या' का उद्घोष भी किया और शिव, पार्वती, गणेश, विष्णु आदि के भक्तिरसपूर्ण स्तोत्र भी रचे, 'सौन्दर्य लहरी', 'विवेक चूड़ामणि' जैसे श्रेष्ठतम ग्रंथों की रचना की। प्रस्थान त्रयी के भाष्य भी लिखे। अपने अकाट्य तर्कों से शैव-शाक्त-वैष्णवों का द्वंद्व समाप्त किया और पंचदेवोपासना का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने आसेतु हिमालय संपूर्ण भरत की यात्रा की और चार मठों की स्थापना करके पूरे देश को सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा भौगोलिक एकता के अविच्छिन्न सूत्र में बाँध दिया। उन्होंने समस्त मानव जाति को जीवन्मुक्ति का एक अप्रतिम सूत्र दिया-

दुर्जनः सज्जनो भूयात सज्जनः शांतिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बंधेम्यो मुक्तः चान्यान् विमोच्येत्॥

अर्थात् दुर्जन सज्जन बनें, सज्जन शांत बनें। शांतजन बंधनों से मुक्त हों और मुक्त जन, अन्य जनों को मुक्त करें।

द्रष्टव्य है कि जगद्गुरु शंकराचार्य अनोखे साहित्यावतार हैं जिनकी तपोनिष्ठ मेधा ने हमारी संस्कृति को आध्यात्मिक प्रसाद और मौलिक चेतना के साथ मानवीय करुणा से ओत प्रोत व्यापक दृष्टि प्रदान की। अद्वैत के ऐसे आचार्य के लिये ही तुलसी ने ये दोहा रचा।

उमा जे रामचरन रत, विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत्, केहि सन करहिं विरोध॥

फिर चाहे वह विरोध सैद्धांतिक ही क्यों न हो! वासुदेव सर्वम् साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् सब अमृत दृष्टि का अमृत विस्तार ही लगता है। मात्र 32 वर्षों की अल्पायु में सृजन का हिमालय खड़ा कर देने वाले क्रान्तदर्शी और महाचैतन्य आद्य शंकराचार्य को शत् - शत् नमन कि करूणा की रागिनी से मानवता का उपकार करके, जगत्वंद्य की वंदना की और संस्कृति की देवापगा को आध्यात्मिक, तात्विक, कारुणिक और सौन्दर्यसुधासिक्त भक्ति साहित्य के माध्यम से युगों युगों की चिन्तन सुरसरि प्रवाहित की जिसके तटबंधों पर आज भी सुधी, तापस, चिन्तक, विचारक, तत्ववेत्ता और शोधार्थियों की पावन समाधि लगती ही रहती है।

भारतीय मनीषा के मूर्तिमंत चमत्कार और करुणाकलित साहित्य के अद्भुत प्रणेता ऐसे साहित्य अवतारी, अद्वैत के आचार्य आदि शंकर को कोटिश: नमन!

सम्पर्क : के 67, पटेल नगर, सिटी सेन्टर, ग्वालियर मो. 9425339771

पारंपरिक गोदना की मान्यताएँ और जनजातीय महिलाएँ

लक्ष्मीनारायण पयोधि

कलाएँ विभिन्न रूपों में आत्मा की ही अभिव्यक्ति होती हैं। कलाकार भाव-मुद्राओं को गढ़ता और पढ़ता है। वह उन्हें आकार, आकर्षण और भाषा देता है। पारंपरिक जनजातीय कलाएँ इस तथ्य का प्रमाण है। समय की निरंतरता के साथ इन कलाओं को आस्था, अनुष्ठान, सामाजिक मान्यताओं और श्रृंगार की अनिवार्यताओं से जोड़ते हुए उन्हें प्राचीनकाल से संरक्षित, विकसित और लोकप्रिय बनाने में जनजातीय महिलाओं की महती भूमिका रही है।

पारंपरिक जनजातीय कलाओं में सबसे आदिम और प्रमुख 'गोदना' अथवा 'गुदना' है। विश्व की अनेक जनजातियों से 'गोदना' अनेक रूपों और नामो से देह-अलंकरण के रूप में प्रचलित रहा है। इसके लिये पॉलिनेशियन शब्द 'Tatau' और टहिटियन शब्द 'Tatu' प्रचलित है। संभवत: इन्ही शब्दों के आधार पर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में गोदना के लिये Tattow शब्द रखा गया है, जो वर्तमान में 'Tattoo' नाम से लोकप्रिय हो गया है। गोदना को जापान में 'Irezumi' (Insertation of ink) और ताइवान की अतायल जनजाति में 'Badasun' कहा जाता है। भारत के विभिन्न राज्यों में भी इसकी प्रक्रिया और रंग के अनुरूप संबधित भाषा के शब्द प्रचलित हैं, जैसे- भीलांचल में 'गुदावणा' और तेलुगूभाषी क्षेत्रों में 'पच्चा बोट्लू' (हरी बिंदियाँ)।

विभिन्न जनजाति समुदायों में गोदना का धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और चिकित्सकीय महत्व है। इसे आत्मा का श्रृंगार माना जाता है। गोण्ड जनजाति की महिलाएँ मानती हैं कि गोदना ऐसा अलंकरण है. जिसे मृत्यु के बाद भी शरीर से अलग नहीं किया जा सकता। बाकी आभूषण तो छूट जाते हैं। भील महिलाएँ पहचान चिह्न के रूप में मस्तक पर गुदवाती हैं, ताकि मरणोपरांत उन्हें ईश्वर भील के रूप में पहचान लें।

कोंल, कोंदर, कोरकू, सहरिया सौर आदि जनजातियों में भी गोदना से संबंधित ऐसी ही मान्यताएँ प्रचलित हैं। गोदना चित्रों के लिये पूरे शरीर को कैनवास की तरह प्रस्तुत करने वाली आदिम जाति है बैंगा। यह समुदाय मानता है कि देह में गोदना न हो तो ''मरत समय साबड से गोदही।'' अर्थात् यदि बैगा स्त्रियाँ परंपरा के अनुसार गोदना नहीं कराती हैं तो मृत्यु के समय भगवान सब्बल से गोदेंगे।

गोण्ड समुदाय की महिलाएँ गोदना को परलोक में आजीविका का साधन मानती है। उनके अनुसार जीवात्मा जब देह छोडकर परलोक जाती है तो उससे पूछा जाता है कि ''कहिन लायव, कहिन दयव?'' यानी 'क्या लाये हो, क्या दोगे?' तब जीवात्मा बता सकेगी कि चीन्हा धर के लाय हव! यानी चीन्हा (गोदना-चिह्न) लेकर आयी हूँ, इसी धन से अपना गुजारा कर लूँगी। भारिया जनजाति की स्त्रियों का विश्वास है कि ''हम खाली हाथ आयी है, मगर गोदनाचिह्न हमारे साथ जायेंगे, जो परलोक में हमारे जीवन का सहारा बनेंगे।'' कोल समुदाय की महिलाओं के विश्वास के अनुसार जिस स्त्री या पुरुष का चित्र या नाम शरीर के किसी अंग पर गुदवाया जाता है, अगले जन्म में उसी का साथ मिलता है। इसी विश्वास के कारण माताएँ अपने बच्चे को गोद में लेकर गोदना गुदवाती हैं, ताकि अगले जन्म में वही संतान पुन: मिले। सखियाँ भी परस्पर एक-दूसरे का नाम कलाइयों पर गुदवाती है। गीत है

''संग-संग गोदना गोदाव मोर गुइंया,
गोदना है अंगले जनम केर साथी!''

विन्ध्य क्षेत्र की कोल जनजाति में प्रचलित मान्यता के अनुसार कोल स्त्री के माथे पर पहला गोदना महादेव शिव ने अपने त्रिशूल से गोदा था, ताकि उस चिह्न के कारण वह अलग से पहचानी जा सके। इस जनजाति की स्त्रियाँ गोदना चिह्नों को दोष-निवारक मानकर अलग-अलग अंगों पर गुदवाती हैं। सास-ससुर, जेठ-जेठानी आदि बड़ों से पैर छू जाने पर उस स्पर्श-दोष से मुक्ति के लिये पिण्डलियों पर मचिया, पुतली, फूल, मयूर आदि तथा स्पर्श की शुभता के लिये हथेली के पृष्ठ भाग

फोटो-गोपीकृष्ण सोनी, पंडरिया (छत्तीसगढ़)

पर घोडा, बिच्छू, पुतली, फूल आदि चिह्न गुदवाये जाते हैं। मान्यता यह भी है कि जिन हाथों में गुदने नहीं होते, उनसे देवी-देवता नैवेद्य ग्रहण नहीं करते। प्रेतबाधा से रक्षा के लिये भुजा पर शारदा, गणेश, शिव, हनुमान आदि देवी-देवताओं के चिह्न गुदवाये जाते हैं। एक पारंपरिक गीत का अंश :

बाजू म गणेश, हाथ म
गोदा ले मइया शारदा!

कुछ जनजातियों में गोदना सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है। बैगा समुदाय में जिस स्त्री के शरीर पर जितने अधिक गुदने होते हैं, ससुराल में उसे उतना ही अधिक सम्मान मिलता है। इस समुदाय में किसी लड़की के शरीर पर कम गुदने होने के अर्थ उसके मायके की गरीबी माना जाता है।

जनजाति समुदायों में प्राय: कन्या की किशोरावस्था से पूर्व ही लगभग आठ वर्ष की उम्र से ही परपरा के अनुसार निर्धारित अंगों पर विशिष्ट गोदना-चिह्न गुदवा दिये जाते हैं। प्रथम गौदना के रूप में भौंहों के बीच 'V'और उसके बीच 'टिपका' या बिन्दु (.) अंकित किया जाता है। 'V' चूल्हा और 'बिन्दु' अग्नि का प्रतीक है। इसे 'कपार गोदाय' कहा जाता है। इसमें चूल्हे के अलावा 'आड़े बेडा' (आडी लकीरें), खड़े बेडा (खड़ी लकीरे) और तीन 'टिपके' उकेरे जाते हैं। कोरकू जनजाति समुदाय के लोग

इसे 'कपार-गोड़ई' कहते हैं। कोरकू बालिका के माथे पर प्रथम गोदना के रूप में 'M' आकृति के ऊपर और नीचे एक-एक बिन्दु उकेरे जाते हैं। इसके अलावा माथे पर चन्द्रमा, त्रिशूल, खडी लकीरें. वृक्ष और कोण आदि आकृतियाँ गोदी जाती है। नाक की दोनों ओर तथा दायें गाल पर एक-एक बिन्दु और ठोड़ी पर तीन, पाँच या पन्द्रह बिन्दु गुदवाने का रिवाज है। हर समुदाय में प्रथम गोदना का उत्सव होता है और इसके बाद समाज में लड़की का सामाजिक सम्मान बढ़ जाता है।

किशोर अवस्था में बैगा लडकियाँ स्वयं ही उत्साहपूर्वक अपनी पसंद के गोदना-चिह्न गुदवा लेती है। भिन्न आकार-प्रकार और रूप-स्वरूप के गोदना-चिह्न अलग-अलग जनजाति समुदाय की पहचान स्थापित करते हैं। जैसे आँखों के दोनों किनारों पर दो-दो आडी लकीरों से अंकित किया जाने वाला 'चिरल्या' भील स्त्रियों की पहचान है। भौहों के बीच वे अर्द्धचन्द्र और उसके ऊपर एक 'टिपकूँ' गुदवाती है। भौहों के ऊपर क्रम से सात या दस टिपकूँ उकेरे जाते हैं, जिनसे माथे पर बीजमाता का सौदर्य बढ़ जाता है। पलकों के ऊपर-नीचे टिपकूँ या रेखाएँ तथा दोनों कनपटियों पर खड़े अर्द्धचन्द्र और नाक की नोक पर गुदा टिपकूँ (काँटा) अलग ही शोभित होते हैं। इनके अलावा नाक पर 'फुदडी', कंधों पर 'लाडियाँ' (त्रिभुज) कंठ पर हार, सर्प, वीजमाता या फुदडी आदि भीलनियों की पसद के गोदना चिह्न है। सौर जनजाति की महिलाएँ मस्तक पर बूँदा या फूल गुदवाती हैं। कोंदर या खैरवार स्त्रियों भी भाल पर एक बूँदा, तीन बूँदा या पाँच बूँदा का अंकन करवाती हैं। कोल वनिताएँ गालों पर तीन बिन्दु एक मोटा बिन्दु अथवा गलचूमा (अर्द्धचन्द्र) गुदवाती हैं।

'कपार-गोदाय' के बाद बैगा युवतियाँ विवाह से पूर्व 'पुखडा-गोदाय' यानी पृष्ठ गोदना कराती हैं, जिसमें पीठ पर टिपकों के माध्यम से चकमक, साँकल, डोरी, झेला आदि अनेक आकार उकेरे जाते हैं। बाजुओं के आगे-पीछे टिपका, माछीकाँटा, बेडा, झेला के अलावा मयूर, कलश और चारबीज की आकृतियाँ भी उकेरी जाती हैं। कोल स्त्रियाँ पीठ पर पाँच बाण, पीपल पात, कमल और गमले अंकित करवाती हैं। सौंर महिलाएँ नाभि की दोनों तरफ कमर पेटियाँ गुदवाती हैं। वक्ष पर फूल, टिपका, पुतरी आदि आकृतियाँ स्थान पाती हैं। बाँहों पर चारखूँट, मचिया और कलाइयों पर फूल, गमला या मयूर की आकृतियाँ गुदवायी जाती हैं। बायीं कलाई में सीता रसोई शोभायमान होती है। दायीं कलाई के पृष्ठ भाग पर मोहिनी अथवा धन्धा और उंगलियों पर एक-एक टिपका, तीन आडी रेखाएँ, धन का चिह्न या बाँसुरी की आकृति गुदवायी जाती है। पंजे के पृष्ठ भाग पर घोड़ा, बिच्छू, पुतली, फूल आदि आकृतियाँ गुदवाना कोल महिलाओं को पसंद है। बैगा स्त्रियाँ कोहनी से उंगलियों की पोरों तक विभिन्न चिह्न गुदवाती है, जिसे 'पोरी-गोदाय' कहा जाता है। बैगा स्त्रियों द्वारा जाँघो पर 'पोराकड़ी', टखनों पर झेला, बेडा, टिपका, पोराकड़ी और मछरीकाँटा, घुटनों पर दीवा, झेला, बेडा आदि चिह्न उकेरे जाते हैं। बैगा लडकियों को विवाह से पहले ये सारे गोदने गुदवाने अनिवार्य हैं।

गोदना मूलत: चित्रकला है। इसलिये इसमें विभिन्न आकृतियाँ उकेरने के लिये बिन्दुओं और रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। ये आकृतियाँ संबंधित जनजाति की परंपरा, धार्मिक आस्था, गोत्र, प्रकृति अथवा रुचि के अनुरूप होती हैं।

बैगा और गोण्ड जनजाति समुदायों की सामाजिक मान्यता के अनुसार विवाह से पूर्व लड़कियों के गोदना गुदवाने पर कोई प्रतिबंध नहीं है, परंतु विवाह के बाद कोई स्त्री गोदना गुदवाती है तो वह परंपरा के अनुसार अपने समुदाय के अलावा किसी और समुदाय के घर में भोजन नहीं कर सकती।

गोदना का प्रयोग जनजाति समुदायों में पारंपरिक रूप से सिरदर्द, जोड़ों के दर्द, रक्तचाप, घेघा, लकवा, गठिया, आदि रोगों की चिकित्सा के लिये किया जाता रहा है। प्रत्येक बीमारी के लिये चिह्नत जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल किया जाता है।

गोदना-क्रिया के लिये दस-बारह सूइयों को बाँधकर कलम तैयार की जाती है। रामतिल औ भिलवाँ के काजल से तैयार गोदना के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले घोल में संबंधित औषधि मिलाकर उसमें सूइयों की कलम डुबा-डुबाकर रोगग्रस्त स्थान पर गोदा जाता है। इसे एक्यूपंक्चर का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है।

वास्तव में गुफ़ाचित्रों से आदिम जातियों की देह की शोभा बने गोदना-चित्रों की यात्रा की निरंतरता और उनके संरक्षण और विकास में जनजातीय महिलाओं की असंदिग्ध भूमिका रही है।

स्तंभकार लेखक आदिवासी संस्कृति और भाषाओं के अध्येता,
शब्दकोशकार और प्रतिष्ठित साहित्यकार है।
संपर्क : ए-1, लोटस, स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स, बागमुगलिया,
भोपाल- 462043 (म.प्र.) मोबा. 8319163206

■

ज़िन्दगी की लय लिए रविन्द्र दाहिमा के सेरिग्राफ

चेतन औदिच्य

बरसों पहले सीतामाता अभ्यारण्य के जंगलों के निकट एक स्कूल में मेरी पोस्टिंग थी। मुझे वहां आने जाने के समय सागवान के बड़े बड़े पेड़ों के बीच से गुज़रना पड़ता था। कई बार, मैं इन पेड़ों के पास कुछ देर के लिए रुक जाया करता था। मेरी निगाहें सागवान के पत्तों पर विचरती रहती थीं। सागवान के पत्ते आकार में बड़े होते हैं। किसी-किसी पत्ते की लंबाई चौड़ाई तो डेढ़ से दो फुट तक होती है। सागवान के किसी किसी पत्ते को कीटो द्वारा बहुत सुंदर विधि से काटा गया होता है। जालीदार ये पत्ते बहुत ही डिजाइन वाले दिखाई पड़ते थे। मैं सोचा करता था कि कितनी सुन्दर सूझ होगी उन कलाकारों में जो ऐसे पत्तों को सुखाकर छापा विधि से कलाकृतियां बनाने में प्रयोग करते थे। शताब्दियों पूर्व जापानी कलाकारों ने भी आरंभ में इन्हीं पत्तों से स्टैंसिल विधि अपनाई होगी। यह सोचकर ही रोमांच होता है कि जलरोधी कागज पर स्टैंसिल विधि अपनाने के लिए कितनी बारीकी से उन्होंने सतह को काटा होगा। रंगों की पारगम्यता बनाने के लिए काटे गए स्टैंसिल के अधर में झूलते सिरों को घोड़े बालों से चिपकाया होगा। इसी तरह से बने थे आरंभिक छापा चित्र। तब से आज तक छापा कला माध्यम ने अनेक सोपान पार किए। इसी दरमियान स्टैंसिल छापा विधि में परिवर्धन हुआ और स्क्रीन प्रिंटिंग के रूप में छापा कला का नया स्वरूप सामने आया।

कला प्रविधियों में छापा-कला का विश्वव्यापी महत्व है। भिन्न-भिन्न स्वरूपों में यह कलाकारों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम रही है। कलाकार अपनी रुचि के अनुसार छापा-कला के विविध स्वरूपों में से किसी एक अथवा एकाधिक माध्यमों को चुनता है। इस तकनीकी विधि में काम करने के लिए विशेष रूप से दक्ष होने की आवश्यकता रहती है। समुचित अभ्यास के बिना भी कलाकार को इसके इच्छित परिणाम नहीं मिलते । बावजूद इसके देश-दुनिया में अनेक कलाकारों के सृजन का यह प्रिय माध्यम बना हुआ है।

चूंकि स्क्रीन प्रिंटिंग विधा का व्यावसायिक उपयोग ही अधिक होता रहा है ऐसे में समकालीन कला के परिप्रेक्ष्य में इस माध्यम में काम करने वाले कलाकार बहुत कम हैं। राजस्थान के रविन्द्र दाहिमा इस विधा के विरल कलाकार हैं । सेरीग्राफी के मूल स्वरूप के साथ उन्होंने अनवरत प्रयोग किए, जिसके फलस्वरूप छापाविधि में उनकी निजी शैली सामने आई। उनकी कलाकृतियों को देखने पर यह नहीं बताया जा सकता कि वे किस तरह से रची गई होंगी। क्योंकि उसमें तकनीक के प्रयोगों की इतनी बारीकी होती है कि हम सुनिश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि वे फलां तरह की विधि से बनाई गई होगी । सबसे ख़ास बात यह है कि रविन्द्र दाहिमा ने अपनी कृतियों में फोटोग्राफी कला का सम्मिश्रण किया है। चूंकि वे दशकों से फोटोग्राफी करते रहे हैं, ऐसे में एक विधि से प्राप्त परिणाम को उन्होंने दूसरी कसौटी पर परखा और अपने खींचें हुए फोटोग्राफ को सेरीग्राफी में प्रयोग करते हुए कलात्मक अभीप्सा के तहत सर्वथा नूतन परिणाम प्राप्त किये। उनके चित्र देख कर स्वाभाविक रूप में यह समझ आ जाता है कि कला की किसी नई विधि का प्रयोग करते हुए इन्हें सृजित किया गया है। रविन्द्र दाहिमा ने छापा कला की अनेक प्रविधियों में काम किया है। इसमें इंटिग्लियो मेथड में अम्लांकन (ऐचिंग) ,धातूत्कीर्णन (मेटल एनग्रेविंग), एक्वाटेंट, मेजोटिंट, ड्रायप्वांइट आदि प्रमुख है। किंतु अंततः उन्होंने सेरीग्राफी की प्रयोगात्मक विधि को ही अपनाया। अब वे इसी विधा में सृजन करते हैं।

न्यूयॉर्क से शुरू हुए सेरियोग्राफी कला आंदोलन ने व्यापक रूप से इस विधा को लोकप्रिय बनाया। इसके पीछे मूल मंतव्य यह था कि अधिकतम लोगों तक इस विधा की कृतियों को पहुंचाया जाए। एंडी वारहाल, पीरट मैक्स, रॉबर्ट रोज़ेनबर्ग, हुसैन, रजा, ज्योति भट्ट, परितोष सेन, थोटा वेकुंटम आदि लोगों ने विश्व तथा भारत के स्तर पर इस विधा को बढ़ावा देने में सहयोग किया। सेरीग्राफी के सीमित प्रिंट इसकी मौलिकता को बरक़रार रखतें हैं, साथ ही इसे व्यावसायिक स्वरूप से अलग करते हुए ललित कला के दायरे में ले आते हैं। सेरीग्राफी के निर्माण की प्रक्रिया भी इतनी जटिल होती है कि अंतिम परिणाम के रूप में सीमित मात्रा में ही प्रिंट प्राप्त किए जाते हैं। रविन्द्र दाहिमा बताते हैं कि उनकी कृतियों के परफेक्ट प्रिंट लेने में बीस पच्चीस प्रिंट तो प्रयोग करने में ही खराब हो जाते हैं। ऐसे में धैर्य की पराकाष्ठा और कौशल की उच्चता के बिना इससे कला परिणाम प्राप्त

करना मुश्किल है। व्यावसायिक स्टूडियो भी अत्यंत सीमित मात्रा में है जिसके परिणामस्वरूप आज सेरीग्राफी में काम करने वाले कलाकार बहुत कम हैं।

रविन्द्र दाहिमा की सेरीग्राफ कृतियों का सर्वांगीण मूल्यांकन उन्हें उच्च स्तरीय संवेदनशील कलाकार सिद्ध करता हैं। उनकी कृतियां सामान्य जनजीवन की वेदना के वे चितराम हैं जिसमें मनुष्यता अपने यथार्थ स्वरूप में दस्तक देती है। मनुष्य की आंतरिक तथा बाह्य दशा का जीवंत चित्रण वहां उपस्थित है । भाव, अभाव, विडंबना, वितृष्णा, प्रेम, उमंग आदि मनोवेगों का साक्षात कराते उनके चित्रों की विषयवस्तु सीधे ही जनजीवन के हृदय-तारों को झंकृत करती है, बल्कि झिंझोड़ देती है। समकालीन समय की वास्तविकता को रवीन्द्र दाहिमा ने अपनी चित्र भाषा दी है। जोखिम उठाते हुए उन्होंने ना केवल रूप के स्तर पर चित्र की भाषा बदली है अपितु तकनीकी स्तर पर फोटोग्राफी का प्रयोग करके उसकी अभिव्यंजना में नया स्वर जोड़ा है । वे सामान्य मनुष्य के किसी एक प्रकार के कार्यव्यापार को पकड़ते हैं और उसी के साथ उससे जुड़े बिंबों पर काम करते हैं। वे बिंब हताशा, निराशा, विडंबना अथवा उल्लास के समय उठे मनोवेगों से संबंधित हो सकते हैं । एक लौकिक यथार्थ की स्थिति को वह चित्र भाषा में ढालकर, सामने ले आते हैं। यही उनकी कृतियां का सबसे मजबूत पक्ष है । उनके चित्र की संप्रेषणीयता विषय के स्तर पर किसी अतिरिक्त बुद्धि की मांग नहीं करती किंतु कलात्मक स्तर पर गहरी दृष्टि की अपेक्षा अवश्य रखती। एकरंगी हो अथवा बहुरंगी उनके चित्र दृष्टि को खींचते हैं और दर्शकों को किसी मंथन के संजाल में ले जाते हैं ।

यह केवल आदर्श बात है कि विचार शून्य होकर दृश्य-मात्र की दृष्टता पर ठहरा जाए। विचार शून्य चाक्षुष अनुभव की स्थिति तो योगी मनुष्य को ही संभव है। आम दर्शक के अनुभव में दृश्यता और विचार संयुक्त होकर ही उपस्थित होते हैं। ऐसे में कलाकृति के सरोकार अथवा प्रयोजन के प्रश्न भी सामने आते हैं। कलाकार प्रयोजन के प्रति बेखबर रहता है या रह सकता है किंतु उसकी कृति या कलाकारी प्रयोजन से रिक्त नहीं हो सकती। इसी संदर्भ की सुघड़ता रविन्द्र दाहिमा के चित्रों का सार है। वहां जीवन की कठिन स्थितियों का कलात्मक दर्शन है। रंग-पोत आदि द्वारा मार्मिक यथार्थ की उघाड़ को वे एक जिम्मेदार कलाकार की भांति सामने लाते हैं। ग़रीबी अथवा अभावग्रस्त जीवन की झलक किसी फैशन के तहत नहीं है अपितु कलाकार के निज अनुभवों की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति है। एक चित्र है जिसमें एक परिवार को खेल दिखा रहा है । इस चित्र के केंद्र में एक युवती अपने मुंह में छोटी कावड़ पकड़े है । कावड़ के छेलों में दो छोटी-छोटी कलसियां टंगी है। युवती ने छेलों की रस्सियों को पकड़ रखा है । चित्र के दायें भाग में एक पुरुष करतब दिखा रहा है उसने अपने दोनों हाथ आसमान में उठा रखें हैं। आसमान में उठे इन हाथों पर एक नंगे बालक को खड़ा कर रखा है बालक की गर्दन उंगलियों पर है जिन्हें उन दो हाथों ने थाम रखा है चित्र के उपरी अर्ध भाग में किसी बाजार में विचरण करता कुछ लोगों समूह हैं जो हो करतब दिखा रही युवती को निहार रहे हैं। इस चित्र में रंगाकार और पोत का इतना प्रभावी चित्रण है कि दर्शक किसी रहस्य लोक की अनुभूति करता है । अपने आकर्षण के साथ चित्र अपनी व्यंजना में अनेक प्रकार की प्रश्नाकुलता छोड़ता प्रतीत होता है। चित्र के नीचे का भाग एक नीरवता को प्रदर्शित करता है जो किसी भी मनुष्य के अंतरतम की नीरवता हो सकती है।इस चित्र में कलाकार ने समय द्वारा प्रदान की गई उपेक्षा को दर्ज़ करते हुए एक व्यंग्यार्थ स्थिति उत्पन्न की है। करतब दिखा रहे पुरुष और बालक को चित्र में किनारे पर दिखाना अन्य भिन्न अर्थ को अभिव्यंजित करता है। इस चित्र द्वारा मूल ढांचे से एकांत में ढकेले गये मनुष्य का प्रतिनिधित्व भी सामने आता है। इस तरह एक ही चित्र के बहुअर्थी विन्यास द्वारा कला कलाकार की संश्लिष्ट रचनाप्रक्रिया को समझा जा सकता है। विषयवस्तु प्रत्यक्ष द्वारा अप्रत्यक्ष की अभिव्यक्ति करती है। यह बात रविंद्र दाहीमा की चित्रों में विशेष रूप से पहचानी जा सकती है । कलाकार अपने समय और समाज के प्रति कितना सावचेत है यह बात भी उनके चित्रों का कलेवर स्पष्ट कर देता है। कृति यद्यपि देश-काल से अतीत होती है किन्तु इससे उसके सरोकार लुप्त नहीं हो जाते , बल्कि वे समय और देश के पटल पर लगातार दस्तक देते रहते हैं। रविन्द्र के सेरीग्राफ भी अपने संयोजन में यही करते हैं। वहां कोई मिथकीय चरित्र का चित्रण नहीं है। है तो बस! यथार्थ का जीवंत उद्घाटन। ऐसा यथार्थ जो काल को भेद कर पुन:पुन: हमारे सामने आ पड़ता है। यह यथार्थ हमारे आसपास का यथार्थ है। इसमें जीवन के उन पक्षों का अंकन है जिन्हें आंखें देखने से चूक जाती है किंतु कलाकार की दृष्टि वहां तक पंहुच बना देती है। उनके चित्रों में खिलखिलाते बच्चे हैं,, हाथ गाड़ी खींचता मजदूर है, ढोर को नहलाता देहाती है, बोझा ढोता किसान है , पशु हांकता चरवाहा है, ठठाकर हंसती ग्राम बालाएं हैं... इस तरह जिंदगी के अलग-अलग रंगों की झांकी उनके चित्रों का कलेवर है। किसी एक क्षण को पकड़ने के लिए वे रोज ही पैदल घूमते हैं। कभी गहमागहमी भरे बाजार में तो कभी झील के किनारे एकांत में। कहीं से कोई एक फोटोग्राफ खींच कर लाते हैं तो कहीं दूसरी जगह से कोई दूसरा फोटो। फिर अपने स्टूडियो में उन पर काम करते हैं । अंतत: उन्हें सेरीग्राफी का स्वरूप देकर हमारे सामने एक कृति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं मेरे चित्र सिर्फ़ चित्र नहीं, ज़िन्दगी की लय हैं ।

स्तंभकार लेखक: वरिष्ठ चित्रकार और कवि हैं।
सम्पर्क : 49, सी, जनता मार्ग, सूरजपोल अंदर, उदयपुर- 313001(राज.)
मो. 9602015389 ■

मध्य प्रदेश की विलक्षण ध्रुपद गायिका- असगरी बाई

डॉ. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'

राग ताल अभ्यास संग, गायो ध्रुवपद गान,
धाक जमाई असगरी, पायो खूब सम्मान ।
पायो खूब सम्मान, शब्द वरनन नहिं जावे,
कहें ब्रजरंग कथा, जन जन मन भावे ।।

स्वर ही ईश्वर है और कला ही जीवन है। नाद ब्रह्म की साधना से ईश्वर को सहज रूप से पाया जा सकता है। भारतीय वांगमय इस प्रकार के अनेकों उदाहरणों से भरा पड़ा है। मीराबाई, सूरदास, कबीर दास, तुलसी दास, स्वामी हरिदास, रविदास, गुरु नानक देव आदि ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जिन्होंने नाद ब्रह्म की सतत साधना से ही प्रभु को पाया है। जिसने भी संगीत कला को आत्मसात किया है, उसने जीवन का उद्देश्य और जीने की कला को सीख लिया। ये संगीत और कला ही हैं जो आत्मा के साथ-साथ मन, मस्तिष्क, बुद्धि, ज्ञान एवं शरीर के एक-एक तंत्र को परिष्कृत करती है और यह परिष्करण ही मानव को महामानव बनता है। नादब्रह्म साधना के परिणाम स्वरुप ही वैदिक काल के साम गान से धुर्वा का पदार्पण माना जाता है और इन्हीं धुर्वा गीतों से ही ध्रुपद गायन शैली का जन्म हुआ है। वैसे तो यह कहना मुश्किल है कि ध्रुपद का जन्म कब हुआ है ? परन्तु यह सुनिश्चित है कि ध्रुपद गायन शैली का प्रचार-प्रसार और विकास ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के काल में विशेष रुप से हुआ इसलिये ध्रुपद का जन्म 1520 ईस्वी में तथा जन्मदाता के रूप में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर को इसका श्रेय प्राप्त है।

ध्रुपद एक मर्दानी गायन विधा है जिसके लिए बलिष्ठ शरीर, दमदार और जवारीदार आवाज का होना अच्छा माना जाता है परन्तु कुछ ऐसी विभूतियां भी भारत में पैदा हुई हैं जिन्होंने महिला होते हुए भी इस पुरुषोचित गायकी को आत्मसात किया है। इनमें मध्य प्रदेश की असगरी बाई का नाम अग्रगण्य है। असगरी बाई वैसे तो ख्याल, उपशास्त्रीय, गीत, गजल, भजन और लोकगीत इत्यादि सभी कुछ गाती थीं परन्तु उन्होंने ध्रुपद गायन शैली की विशिष्ट साधना करके समाज के समक्ष यह उदाहरण प्रस्तुत कर दिया कि महिलाएं भी किसी भी रूप में पुरुषों से कम नहीं हैं। उनके मार्ग में अनेकानेक कठिनाइयाँ आने पर भी असगरी बाई ने ध्रुपद को ही अपने जीवन की संगीत यात्रा के लिये चुना।

इस दिव्य और असाधारण प्रतिभा की धनी असगरी बाई का जन्म 25 अगस्त 1918 को बिजावर जिला छतरपुर, मध्य प्रदेश में दरबारी गायकों के परिवार में हुआ। आपकी माँ नजीर बेगम बिजावर राजघराने की दरबारी गायिका और दादी बिलायत बीवी अजयगढ रियासत की दरबारी गायिका थीं। वैसे तो असगरी बाई को संगीत विरासत में मिला था। जन्म से ही स्वरों की गूंज, तबला और मृदंग की थाप उनके रग-रग में बस गई थी। माँ के नियमित अभ्यास को सुन-सुनकर ही उन्होंने घर में ही बहुत कुछ सीख लिया था। परन्तु कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के कारण असगरी बाई को 6 वर्ष की अवस्था में अपनी माँ के साथ टीकमगढ़ आना पड़ा था। जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती गई उनका संगीत अभ्यास भी जारी रहा। टीकमगढ आने पर वे उस्ताद जहूर खान के निर्देशन में संगीत प्रशिक्षण प्राप्त करने लगीं।

टीकमगढ़ महाराज वीर सिंह जूदेव संगीत रसिक थे। उनके दरबार में गोहद निवासी उस्ताद जहूर खान का आना जाना था। एक बार महाराज ने उस्ताद जहूर खान से दरबार के लिए एक अच्छी महिला गायिका की इच्छा व्यक्त की, ताकि दरबार में गायन परंपरा अनवरत चलती रहे। उस समय उस्ताद जहूर खान नजीर बेगम की प्रतिभा संपन्न बेटी असगरी बाई को संगीत शिक्षा प्रदान कर ही रहे थे। उस्ताद जहूर खान के मन में सर्व प्रथम असगरी बाई का ही ध्यान आया। परन्तु असगरी उस वक्त एक छोटी बालिका ही थी।

एक बार टीकमगढ़ दरबार में विदुषी सिद्धेश्वरी देवी का गायन चल रहा था। सिद्धेश्वरी देवी राग तोड़ी गा रही थीं। उस समय नजीर बेगम के साथ असगरी भी महफिल में मौजूद थीं। वह छोटी बच्ची असगरी उचक उचककर सिद्धेश्वरी देवी को देखना चाह रही थी लेकिन ठीक ढंग से देख नहीं पा रही थी। बच्ची असगरी की चंचलता की ओर महाराज का ध्यान गया और महाराज ने असगरी को इशारा कर अपने पास बुला लिया। महाराज ने असगरी से पूछा कि तुम किसकी बेटी हो ? असगरी ने उस्ताद जहूर खान की ओर इशारा करते हुए बता दिया कि मैं उनकी बेटी हूँ।

राजा साहब ने असगरी से पूछा कि क्या तुम गाना गाती हो ? बालिका असगरी ने तुरंत स्वीकार करके बताया जी। उन्होंने पूछा कि अभी सिद्धेश्वरी

बाई क्या गा रही थीं? उन्होंने तुरंत जवाब दिया राग तोड़ी। महाराज ने पूछा कि क्या तुम राग तोडी गा सकती हो ? असगरी बाई ने तुरन्त स्वीकार किया और राग तोड़ी गाना शुरू कर दिया। राजा साहब सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने उस्ताद जहूर खान और असगरी बाई को बधाई दी।

14-15 वर्ष आयु की असगरी बाई को 10-15 रागों का अच्छा अभ्यास हो चुका था। राजा साहब असगरी बाई के गाने से खूब प्रसन्न थे और राजा साहब ने असगरी बाई को टीकमगढ़ किले के राधा माधव मंदिर में गाने के लिए नियुक्त कर दिया। यहीं से असगरी बाई का भाग्योदय प्रारंभ हुआ।

असगरी बाई अपने गुरु उस्ताद जहूर खान के संरक्षण में निरन्तर संगीत अभ्यास कर रहीं थीं। निरन्तर अभ्यास से असगरी बाई के गायन में माधुर्य, आकर्षण, लय-ताल पर पकड़ और तैयारी दिखने लगी थी। श्रोतागण असगरी बाई का गायन सुनकर झूमने लग जाते थे। यद्यपि असगरी बाई गायन की सभी विधाओं को अच्छी तरह गाती थीं लेकिन उन्होंने ध्रुपद गायकी को ही अपनी मूल विधा चुना और ध्रुपद गायकी में ही अपने आपको सिद्धहस्त करने का निश्चय किया। उस समय ध्रुपद मंदिरों तक की सीमित था। आम महफिलों में ध्रुपद कम ही सुनने को मिलता था। लेकिन उनकी उत्तम गायकी और दमदार आवाज का जादू चारों ओर फैल गया। अब असगरी बाई सुप्रतिष्ठित एवं सुव्यवस्थित ध्रुपद गायिका थीं। एक बार असगरी बाई का ध्रुपद गायन श्री गुणसागर सत्यार्थी जी ने सुना। वे उनकी गायकी के दीवाने हो गये। उन्होंने असगरी बाई की चर्चा तत्कालीन संस्कृति अधिकारी श्री अशोक बाजपेयी जी से की और उनका नाम मध्य प्रदेश के संगीत समारोहों हेतु अंकित करने हेतु संस्तुति भी की। परिणामत: असगरी बाई नाम मध्य प्रदेश के संगीत समारोहों की सूची में सम्मिलित हो गया। अब असगरी बाई बड़े-बड़े सगीत समारोहों में अपनी प्रस्तुतियाँ प्रदान करने लगीं। इस तरह असगरी बाई की ख्याति चारों ओर फैल गई। उन्हें निरन्तर विविध समारोहों के निमन्त्रण आने लगे और वे अपनी प्रस्तुतियों से गुणिजनों, श्रोताओं और रसिकजनों के हृदय में स्थान बनाने में सफल रहीं।

एक बार मध्य प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री श्री अर्जुन सिंह जी ने उनका गायन सुना और उनकी गायकी से प्रभावित होकर मुख्यमंत्री महोदय ने उन्हें 5000 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया। असगरी बाई ने संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली, सुर श्रृंगार संसद, मुम्बई के साथ-साथ भोपाल, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, फैजाबाद, जयपुर, वृंदावन, हैदराबाद, भुवनेश्वर, कोलकाता के साथ-साथ देश के विभिन्न स्थानों पर अपनी प्रस्तुतियाँ प्रदान की। उनकी असाधारण प्रतिभा के सभी कायल थे। उन्हें 1985 में मध्य प्रदेश सरकार का तानसेन सम्मान, 1986 में मध्य प्रदेश सरकार का शिखर सम्मान, 1986 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और 1990 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें अनेकों अन्य पुरस्कार प्राप्त हुए।

उनके रसिक श्रोताओं में आगरा नगर के एक व्यापारी श्री चिम्मनलाल गुप्ता भी थे जो असगरी बाई के गायन से अत्यंत प्रभावित थे। निरन्तर मिलने जुलने से दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुए और अन्ततोगत्वा दोनों ने गधर्व विवाह कर लिया। गुप्ता जी से असगरी बाई के पांच पुत्र और दो पुत्री हुई। सभी लोग टीकमगढ़ से आगरा आ गये लेकिन चिम्मन लाल गुप्ता जी के परिवार ने असगरी बाई को कभी स्वीकार नहीं किया। सन 1962 में लम्बी बीमारी के बाद श्री चिम्मनलाल गुप्ता की मृत्यु हो गई। गुप्ता जी के परिवार का सहयोग न मिलने के कारण पूरा परिवार पुन: टीकमगढ़ वापस आ गया। असगरी बाई और उनका परिवार गरीबी और बदहाली का शिकार बन गया।

सामाजिक उपेक्षा के कारण असगरी बाई ने पुन: इस्लाम धर्म अपना लिया और उनके पुत्र कमल गुप्ता से कमल खान और बेटी अंजू से अंजूमारा बन गईं। गरीबी के दौर में परिवार के भरण पोषण के लिए असगरी बाई ने बीड़ी और अचार बनाना और बेचना शुरू कर दिया। लेकिन गरीबों के इस दौर में भी उन्होंने अपना अभ्यास नहीं छोड़ा। वह नियमित सुबह 4 बजे उठकर अभ्यास करती थीं। उनके लिये मध्य प्रदेश शासन ने टीकमगढ़ जिले में ध्रुपद केंद्र की स्थापना करके उन्हें गुरु के रूप में नियुक्त किया। उन्हें 6000 प्रति माह वेतन मिलने लगा परंतु दुर्भाग्य से यह वेतन उन्हें 3 वर्ष तक ही मिला। असगरी बाई सन 1935 से सन 2005 तक खूब सक्रिय रहीं।

अब उन्हें केवल 500 मासिक पेंशन ही मिल रही थी। अपनी गरीबी और बदहाली से तंग आकर उन्होंने अपने सभी पुरस्कारों को सरकार को वापस करने का निर्णय ले लिया और सार्वजनिक घोषणा भी कर दी। कई बार रोटी जुटाने के लिये असगरी बाई को घर का सामान तक बेचना पड़ा। ऐसी स्थिति में उस्ताद अमजद अली खान ने अपनी उदारता दिखाते हुए उन्हें उस्ताद हाफिज अली खान ट्रस्ट की ओर से एक लाख बीस हजार रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की जिससे उन्होंने अपनी दो पौत्रियों की शादी की। मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल गौर ने भी उन्हें एक लाख रुपये की सहायता प्रदान की।

जीवन के उत्तरार्ध में वक्त के झंझावातों से लड़ती हुई यह दिव्य संगीत साधिका असगरी बाई लंबी बीमारी के कारण 9 अगस्त 2006 को प्रभुलोक को प्रस्थान कर गई और पीछे छोड़ गई अनेकों अनकहे प्रश्न और शासन की कला एवं कलाकारों के प्रति उदासीनता। अगले दिन उन्हें पूरे राजकीय सम्मान के साथ सुपुर्दे खाक किया गया। ऐसी दिव्य संगीत साधिका को शत-शत नमन।

गायो है मधुर गान, पायो गुनियन से मान,
विविध ढंग गाय गाय, रसिकन रिझायो है।
ख्याल, ठुमरी, दादरा, और गायो है सादरा,
पर हियरा को असगरी, ध्रुपद में लगायो है ।।1 ।।
ऐसी गायिका असगरी, बात करत रसभरी,
टीकमगढ़ में अंत तलक, सर्वस्व निज लुटायो है।
मान सम्मान पाय, जीवन समृद्ध करो,
चौथोपन कठिन भयो, विपन्नता सतायो है ।।2 ।।
बीड़ी अचार बेच, काटे हैं गिन गिन दिन,
शासन ने नेक नहीं, ध्यान निज लगायो है।
ऐसो प्रभुवर दु:ख, गुनियन को मत दीजो,
'ब्रजरंग' सुन गाथा, हियरा भर आयो है ।।3 ।।

सम्पर्क : 353, भूतल, सूर्य नगर फेस 2,
सेक्टर 91, फरीदाबाद 121013 हरियाणा सम्पर्क : 9999539998

■

आलेख

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर

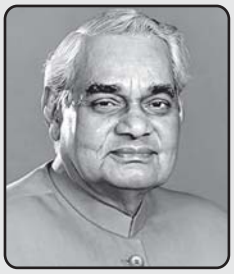
अटल बिहारी वाजपेयी

भारत माता के महान् सपूत डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर अपने विराट व्यक्तित्व और कालजयी कृतित्व के कारण सदैव ही आदर के साथ स्मरण किये जायेंगे। उनका प्रखर पांडित्य, उनकी पारदर्शी प्रामाणिकता, उनकी विलक्षण वागदग्धता, उनकी असाधारण संगठन कुशलता और अन्याय के विरुद्ध लोहा लेने की उनकी वज्र संकल्पबद्धता उन्हें सहज ही एक महान् इतिहास पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित कर देती है। डॉ. अम्बेडकर दलित के रूप में जन्में, दलितों के लिए जिए, दलितों के लिये जूझे और अंतिम क्षण तक दलितों का हित चिंतन करते हुए ही निर्वाण को प्राप्त हुए, किंन्त इस आधार पर उन्हें दलित या हरिजन नेता कहना उनके साथ बड़ा अन्याय करना होगा। वे हमारे महान् राष्ट्रीय नेताओं में थे और उनकी गणना मार्टिन लूथर किंग की तरह मानवमुक्तिदाता के रूप में की जाएगी।

बहुत लोगों को यह बात ज्ञात नहीं है कि जब डॉ. अम्बेडकर को स्वतन्त्र भारत के प्रथम मंत्रिमण्डल में शामिल किया गया तो वे आर्थिक नियोजन का मंत्रालय संभालना चाहते थे। किन्तु उन्हें विधि मंत्रालय मिला। डाक्टर की उपाधि प्राप्त करने के लिये डॉ. अम्बेडकर ने जो शोधप्रबन्ध लिखा था उसका विषय था– द प्राब्लम् ऑफ द रूपी। वह इतना प्रभावशाली था कि सुप्रसिद्ध समाजवादी विचारक श्री हैराल्ड लास्की ने उस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि इसका लेखक बड़ा रेडिकल है।

अर्थ और विधि सम्बन्धी विषयों पर उनका गहना अध्ययन था। इस सम्बन्ध में उनका लेखन उनकी दो पुस्तकों के रूप में सामने आया जो उन्हें सहज ही एक अर्थशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित कर देता है।

यह धारणा भ्रामक है कि डॉ. अम्बेडकर स्वराज्य की प्राप्ति के बारे में उत्तने उत्सुक नहीं थे जितने दलितों के उद्धार के बारे में। वस्तुस्थिति यह है कि वे सब के लिये स्वराज्य चाहते थे। स्वराज्य सम्पूर्ण हो सबके लिय हो, वह मुट्ठीभर हाथों में केन्द्रित न हो, यह उनकी इच्छा थी। उन्हें यह भी लगता था कि जब तक दलित समाज जागृत और संगठित नहीं होता और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने को तैयार नहीं होता तब तक स्वराज्य, यदि मिल भी गया तो वह शासक तक सीमित रह जाएगा। एक बार उन्होंने कहा था कि यद्यपि हमारे यहां सामाजिक अन्याय है, किन्तु वह हमारा आंतरिक प्रश्न है, हम उसका हल निकालेंगे किन्तु अंग्रेजों को यह कहने का नैतिक अधिकार नहीं है कि जब तक हिन्दू समाज में सामाजिक अन्याय है तब तक हम आपको स्वराज्य कैसे दे सकते हैं। स्पष्टत: डॉ. अम्बेडकर दलितों के हितों की रक्षा के लिए किसी भी सीमा तक जाने के लिये तैयार होते हुए भी, अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति का कभी मोहरा नहीं बने। डॉ. अम्बेडकर एक महान राजनीतिज्ञ थे किन्तु उनकी राजनीति सिद्धान्तों से जुड़ी थी। अस्पृश्यता को वे अभिशाप मानते थे और उसके उन्मूलन के लिए उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया, किन्तु उनका संघर्ष सदैव शांतिपूर्ण रहा। कतिपय सवर्णों द्वारा जब महाड़ के सत्याग्रह में कुछ भड़काने वाले कार्य हुए तब भी डॉ. अम्बेडकर ने अपने अनुनायियों को संयम से काम लेने के लिये तैयार किया और उसमें उन्हें सफलता भी मिली। उन्हें अस्पृश्य शब्द स्वीकार नहीं था, किन्तु गांधी जी द्वारा दिए हरिजन शब्द को भी पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था कि हरिजन शब्द में उपकार करने की भावना झलकती है जो उनके द्वारा दी गई स्वाभिमान, स्वाबलम्बन तथा आत्मोद्धार की त्रिसूत्री के विरूद्ध थी। वे ब्राह्मणों विरुद्ध थे। स्वतन्त्र भारत के संविधान के शिल्पकार के रूप में डॉ. अम्बेडकर के योगदान को राजनीति और विधिशास्त्र के विद्यार्थी सदैव ही बड़े गौरव के साथ स्मरण करेंगे। संविधान स्वतन्त्र भारत की आधुनिक स्मृति है। इस दृष्टि से डॉ. अम्बेडकर को आधुनिक मनु कहा जा सकता था। भारत में समय-समय पर स्मृतियां बदलती रहीं। हिन्दू समाज में युग के अनुकूल अपने को परिवर्तित करने की

सन्देश

सुश्री तारा परमार,

आपका बिना तारीख का पत्र प्राप्त हुआ धन्यवाद। उत्तर में विलम्ब के लिये खेद है। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अनुसूचित जातियों के हितों के लिए डॉ. अम्बेडकर की भूमिका का अध्ययन पर शोधकार्य कर रही हैं और उस पर एक शोध ग्रन्थ लिख रही हैं। मैं आपके प्रयासों की सफलता चाहता हूँ। मुझे खेद है कि मैं प्रश्नावली का उत्तर नहीं दे सकूंगा। डॉ. अम्बेडकर के संबंध में मैंने एक लेख लिखा था, उसकी एक प्रति आपको भेज रहा हूँ।

शुभकामनाओं सहित,

आपका
अटल बिहारी वाजपेयी

असीम क्षमता है। डॉ. अम्बेडकर उस क्षमता के पूंजीगत प्रतीक थे। लोकतन्त्र कतन्त्र में उनकी अटूट निष्ठा, संविधान परिषद में उनके भावों से पूरी तरह प्रकट होती है। लोकतन्त्र की मान्यताओं और उसकी परम्पराओं के उल्लंघन से किस तरह के संकट उत्पन्न होंगे, उन्होंने इस बारे में भी स्पष्ट चेतावनियाँ दी थी। उन चेतावनियों को आज पढ़कर ऐसा लगता है कि डॉ. अम्बेडकर भविष्य को भेदकर दूरगामी काल को देखने की अपूर्व क्षमता रखते थे । साम्यवाद की विचारधारा और मुस्लिम समाज की मानसिकता के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर का विश्लेषण बड़ा सटीक और युक्तिसंगत है। उन्होंने साम्यवाद के दर्शन को अमान्य कर दिया था। मुस्लिम समाज में व्याप्त कट्टरता भी उन्हें पसन्द नहीं थी। वे सच्चे लोकतवादी और सुधारवादी थे। अन्याय और अधिनायकवाद पर आधारित उन्हें कोई व्यवस्था मान्य नहीं थी। तिब्बत पर चीन की सार्वप्रभुता स्वीकार करने की नीति पर भारतीयों से उनका तीव्र मतभेद था। वे भारत सहित दक्षिण पूर्व एशिया के बौद्ध धर्म प्रभावित देशों को मिलाकर एक सांस्कृतिक राष्ट्रमण्डल बनाने के पक्ष में थे। वे समाज से धर्म के महत्व को स्वीकार करते थे। उन्हें भारतीयता और भारतीय संस्कृति से गहरा प्रेम था।

जीवन के संध्या काल में जब डॉ. अम्बेडकर ने नई उपासना पद्धति अपनाने का निर्णय किया तो उनकी दृष्टि बौद्ध धर्म पर टिकी। वे भगवान बुद्ध की करूणा के समवेत से बहुत प्रभावित हुए। आज हमारे समाज की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह करुणाविहीन होता जा रहा है। न व्यक्ति के अन्त:करण में करुणा की धारा है और न समाज के आचार-व्यवहार में ही कहीं करूणा का परिचय मिलता है। बौद्ध धर्म स्वीकार करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने जो भाषण दिया वह उनके भारत प्रेम को पूरी तरह उजागर करता है। उन्होंने कहा-मैंने एक बार अस्पृश्यता के प्रश्न पर गांधी जी से चर्चा करते हुए उनसे कहा था कि अस्पृश्यता के सवाल पर भले ही मेरे साथ आपके मतभेद हों, जब समय आएगा तो मैं देश को कम से कम क्षति पहुँचाने वाला मार्ग स्वीकार करूंगा। आज बौद्ध धर्म स्वीकार करके मैं देश का अधिक से अधिक हित साधन कर रहा हूँ। कारण यह है कि बौद्ध धर्म संस्कृति का भी एक भाग है। इस देश की संस्कृति, इतिहास तथा परम्परा को कोई आघात न लगे, यह सावधानी मैंने बरती है। आज जब सारा देश डॉ. अम्बेडकर की जन्म शताब्दी का समारोह बड़े उत्साह से मना रहा है तब उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रेरणा लेकर यह संकल्प करें कि हम स्वतन्त्रता को अमर बनाएंगे, लोकतन्त्र को अक्षुण्य रखेंगे और आर्थिक शोषण तथा सामाजिक अन्याय को समाप्त कर ऐसे भारत की रचना करेंगे जो डॉ. अम्बेडकर के सपने के अनुरूप हो ।

सौजन्य: डॉ. देवेन्द्र दीपक

कला समय : नवांकुर

अंकुरित संस्कार उम्र से बड़े है इनके...

बाल-मन उम्र की मंजिल तय करते-करते बच्चों को आज की तीव्र गति से भागने वाली दुनिया की हर गतिविधि के साथ ताल से ताल मिलाकर चलने की प्रेरणा देता स्तंभ 'नवांकुर' -' कला समय।'

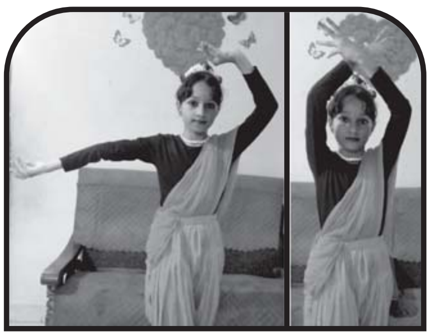

खुशबू केवल महकाना जानती है

नाम - खुशवू बुवा
उम्र - 10 वर्ष, जन्म तिथि - 7 सितम्बर 2014
जन्म स्थान - भोपाल, कक्षा - 6
पिता - स्व. रमेश बुवा स्कूल-होली क्रास
माता - श्रीमती सुनीता बुवा (हाउस वाईफ)

खुशबू बुवा दो वर्ष की उम्र से ही अपनी खुशबू फैलाने लगी थी। नृत्य, गायन, कराटे, ड्राइंग सहित आशु कहानियाँ लिखने में भी महारत रखती है वह किसी न किसी रूप प्रदर्शित करने लगी थी। ज्यों ज्यों खुशबू बड़ी होती गई उक्त गुणों में निखार आता गया। कराटे में जहां 'येलो बैल्ट' इसी वर्ष प्राप्त किया है वहीं कत्थक नृत्य में द्वितीय वर्ष की परीक्षा पास की है। गायन की शिक्षा तृतीय वर्ष (शास्त्रीय गायन) वह प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक प्रकाश पाठक एवं श्रीमती आरती शर्मा से ग्रहण कर रही हैं। कोलार रोड स्थित त्रिधा संगीत की नियमित शिक्षार्थी है। खुशबू ने फैंसी प्रतियोगिता में कई पुरस्कार प्राप्त किये हैं। क्राफ्ट की वस्तुयें वह अपने खाली समय में तैयार करती है। चित्रकारी बहुत ही सुंदर करती है। कम्प्यूटर में प्रवीणता रखती है। स्कूल में 97% उपस्थिति दर्ज कराती है। आलस करने से उसे परहेज है। ज्यादा सोना पसंद नहीं। आज का काम आज करना प्राथमिकता है। घर में माँ का हाथ बंटाना तथा घर को साफ सुथरा रखना, चिड़ियों को दाना-पानी देना उसका रोज का काम है। बड़े होकर देश का नाम रोशन करना चाहती है।

सत्यनारायण शर्मा, बी- 102, जानकी अपार्टमेंट, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) मोबा. 9926364058

निवेदनः आप भी अपने बच्चों की प्रतिभाओं, कलाओं को उजागर करने हेतु कला समय 'नवांकुर' एवं 'उत्तराधिकार' स्तंभ में इस पृष्ठ का हिस्सा बन सकते हैं। -संपादक

पुण्य-स्मरण

(मई में जन्मतिथि एवं पुण्यतिथि पर विशेष)

साहित्य को ओढ़ना-बिछौना बनाने वाले श्री मदनलाल मनचन्दा

मधुभट्ट तैलंग

''सा विद्या या विमुक्तये विद्या'' वही जो मुक्ति प्रदान करे, यह मुक्ति वह है, जिसे मानव-प्रेम एवं सद्भाव से पूर्ण मानवता से सार्थकता तक अपने जीवन की यात्रा को तय करता हुआ आनन्दलोक तक पहुंचा देता है, जिसका उत्कृष्ट माध्यम है साहित्य, इस अवधारणा के पक्षधर और संवाहक विख्यात साहित्यकार श्री मदनलाल मनचन्दा जी की इसी मानवीय प्रवृत्ति को बचपन में ही भाँपते हुए आपके पिता ने आपका बाल्य-नाम 'विद्यासागर' रखा किन्तु आपके सहज, सरल, सद्भावी, सुन्दर एवं सम्मोहक व्यक्तित्व का आभास करते हुए आपकी मौसी द्वारा 'मदन' (प्रेम का देवता) नाम रखा गया। आपकी साहित्यिक साधना द्वारा स्थापित मानवता और भारतीय संस्कृति के मूल्याधारित प्रतिमानों ने आपके इस नाम को सार्थक कर दिया।

पाठकों के हृदय तक सीधे उतरने वाली आपकी सहज, सरल एवं अत्यन्त रोचक शैली में अपने इर्द-गिर्द रोजमर्रा घटने वाली घटनाओं को जिन शब्दों के चयन और उसको सम्प्रेषित करने में पाठक-मन के निकट पहुँचाने वाली संवेदनशीलता द्वारा मनचन्दा जी का उस स्थिति को जानने, बूझने एवं परख कर अपने ढंग से विश्लेषित करना और एक नई सोच के साथ पाठकों को जीवन की सकारात्मक एवं आशावादी दृष्टि दिये जाने का हुनर आपको एक अलग पहचान देता है।

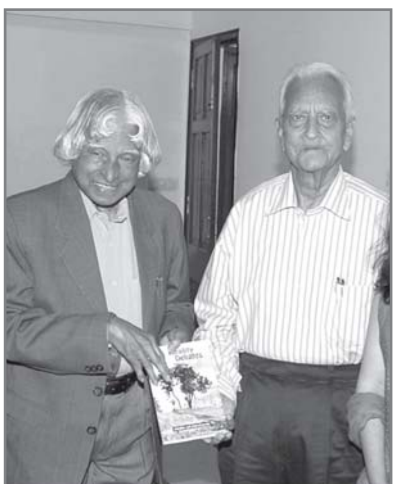

Former President of India Dr. APJ Abdul Kalam releasing the Book **'Reality Delights'** by Madan Lall Manchanda on 23 Mar 2012

इस अजीम शख्सियत का जन्म 15 मई 1924 को वर्तमान में पाकिस्तान में स्थित रावलपिंडी जिले में स्थित पैतृक गांव मटोर में हुआ। यहां के सनातन धर्म उच्च विद्यालय और इसी नाम के महाविद्यालय में आपकी विद्यालयीन एवं उर्दू विषय में स्नातक (आनर्स) में शिक्षा हुई एवं नागपुर विश्वविद्यालय से आपने अंग्रेजी भाषा साहित्य में स्नातकोत्तर उत्तीर्ण किया।

आपकी बहुभाषाओं में दक्षता का प्रमाण उनके प्रकाशित बहुआयामी लेखन-कार्य में दृष्टव्य है। आपने देश के प्रमुख प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं यथा - हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इण्डिया, इण्डियन एक्सप्रेस, पायनियर, पेट्रियट, फ्री प्रेस जर्नल, ओरिएण्ट, लिंक, द इलस्ट्रेटेड, वीकली ऑफ इण्डिया एवं अमृत बाजार पत्रिका में खूब लिखा और बेहतरीन लिखा, जो पाठकों की गहन रुचि का विषय बने। आपके लेखन की प्रमुख विधाएँ कहानियां, लघु कथाएं एवं लेख, जिन्हें खासी लोकप्रियता मिली, कुछ एक बहुत उल्लेखनीय हैं यथा उनकी 21 कहानियों का संग्रह 'चिराग-ए-आरजू' उसमें भी चर्चित 'सफेद कौवे,' लेख-आपके बच्चों को किन किताबों की जरूरत है, कुछ महामनाओं के साथ मुलाकातों एवं साक्षात्काराधारित कृति 'प्रेशियस मेमोरीज' में लेख डॉ. कलाम के साथ एक यादगार शाम, एक और लेख 'सेविंग द महात्मा', यादों की महक: नरेशकुमार शाद, बहुत महत्वपूर्ण लेखन ग्लिम्प्सेस ऑफ मॉडर्न उर्दू लिटरेचर एवं रियलिटी डिलाइट्स एवं Caste Crossed आदि विस्तृत कार्य।

विद्यार्थी जीवन में ही बीजारोपित साहित्य के संस्कारों की मज़बूत बुनियाद पर खड़े उनके साहित्य के प्रति रुझान ने उन्हें उस जुनून तक पहुँचाया, जो जीवन की अंतिम सांस तक पूरे शबाब पर बना रहा। उर्दू की प्रसिद्ध पत्रिकाओं शमा, सुषमा, बनो, खिलौना, सफीना, नदीम, अफकार और आजकल में भी लगातार और कमाल लिखा। आपने अनेक नामचीन शायरों के अशआरों के उद्धरणों के माध्यम से अपने लेखों में जीवन के विभिन्न पहलुओं और शाश्वत मूल्यों का दर्शन कराने वाले यथार्थ से पाठकों को जीवन की सार्थकता की ओर मोड़ा। आजकल उर्दू पत्रिका में आपका अन्तिम लेख यादों की महक नवम्बर 2020 के अंक, जो उर्दू के नामचीन शायर नरेश कुमार शाद से उनकी दिलचस्प मुलाकात पर आधारित है, में मनचन्दा जी शाद के एक मिसरे से खूबसूरत संदेश दे जाते हैं 'जिन्दगी डूबकर उभरी है, गर्क नहीं हो सकती। गालिब के एक शेर के माध्यम से भी वह खूबसूरत सच्चाई एवं यथार्थ से पाठकों को रूबरू करा जाते, हैं' ''रौ में है रख्श-ए-उमर, कहाँ देखिये थमे, न हाथ बाग पर है, ना पाँव रकाब में, यही जिन्दगी की तल्ख हकीकत है, वह दरिया है, जो रुकता नहीं बहता जाता है। इकबाल के मानिन्द से भी वे कहते हैं'' फलसफा-ओ-शायर की और हकीकत है क्या, हर्फ-ए-तमन्ना, जिसे कह न सके रूबरू।

मनचन्दा जी की सबसे बड़ी खासियत है कि रक्षामंत्रालय (सशस्त्र

Shri Madan Lall Manchanda Receiving Urdu Akademy Award - 2010 for his Book "Karvan-e-Urdu" from Senior Writer and Journalist Shri Kuldip Nayar

सेना) स्थित कार्यालयों में बतौर सिविलियन अधिकारी के पद पर कार्य करते हुए नौकरी और परिवार को भी उसी जिम्मेदारी और जूनून से निभाया जितना साहित्य–लेखन को। आपके लेखन को किसी एक ही विशिष्ट क्षेत्र टाइप्ड में बंधा हुआ न देखकर विभिन्न फलकों पर देखा जा सकता है यहाँ तक कि पर्यावरण, अन्तरिक्ष, कानून, विज्ञान, चिकित्सा, राजनीति एवं अर्थशास्त्र जैसे उनसे असंगत लगने वाले असाधारण क्षेत्रों पर भी बेहतरीन लिखा। कुछ वर्षों तक पर्यटन पत्रिका See Indis का भी संपादन किया। मनचन्दा जी को उनकी पुस्तक कारवान–ए–उर्दू के लिए वर्ष 2010 में उर्दू अकादमी अवार्ड से अलंकृत किया गया। उनका कहानी–संग्रह 'चिराग–ए–आरजू' का हिन्दी एवं अंग्रेजी संस्करण अप्रैल 2020 में दीप आशाओं का के शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसकी प्रस्तावना में पूर्व उपराष्ट्रपति मोहम्मद हामिद अंसारी ने लिखा ''मदनलाल मनचन्दा जी उन लेखकों की घटती संख्या में से हैं, जिन्हें पीढ़ियों को जोड़ने वाला कहा जा सकता है। उन्होंने एक वयस्क के रूप में स्वतंत्रता की सुबह उत्साह, उसके आघात, आशाओं–निराशाओं को देखा और विचारों तथा भावनाओं को शब्दों में व्यक्त करने की उत्कृष्ट कला विकसित की। ये कहानियां, जो पिछली पीढ़ी के लिए लिखी गई थीं, अब युवा पाठकों के लिए पठन–सामग्री का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होंगी।''

दिल्ली की पूर्व मुख्यमंत्री शीला दीक्षित के शब्दों में ''रियलिटी डिलाइट्स निश्चित रूप से विभिन्न आयु और समाज के सभी वर्गों के पाठकों के दिल और दिमाग में बेहतर छाप छोड़ने में सक्षम होगी।''

डॉ. कर्णसिंह मनचन्दा जी की कृति 'प्रेशियस मेमोरीज' की प्रस्तावना में लिखते हैं ''उनके पास एक सरल कलम और रुचियों की विस्तृत श्रृंखला है, जिसके माध्यम से उन्होंने अपनी कीमती यादें दी हैं। मुझे विश्वास है कि पाठकों को इस पुस्तक में विचार के लिए बहुत कुछ मिलेगा। मैं श्री मनचन्दा जी को उनके व्यापक बौद्धिक हितों के लिए सराहना करता हूँ।''

श्री मनचन्दा जी का देवलोक गमन 1 मई 2021 को हुआ, आप सही मायने में तीन पीढ़ियों के सेतु के रूप में साहित्य की वह अकूत थाती सौंपकर गये हैं कि यदि आने वाली पीढ़ियाँ भी उसे पढ़ेंगी तो उनके सार्थक जीवन जीने का वह प्रकाशस्तम्भ होंगी। वास्तव में ऐसे कला–साधक वर्षों में पैदा होते हैं–

''हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है
जब कहीं जाकर चमन में दीदावर पैदा होते हैं।''

सम्पर्क : 9928277833

समवेत

''व्यथा-कथा डूब की'' पुस्तक हुई लोकार्पित

आँसुओं की स्याही से लिखी गई है व्यथा-कथा डूब की- मनोज श्रीवास्तव

'व्यथा–कथा डूब की' आँसुओं की स्याही से लिखी गई पुस्तक है। यह पुस्तक हरसूद कस्बे के साथ उन 254 गाँवों की डूब रही धरती के नाम करुणा से ओतप्रोत एक प्रेम पत्र भी है। यह पुस्तक हमें सीधे डूब प्रभावित लोगों से मिलवाती है। यह पुस्तक सिर्फ विस्थापितों का दर्द ही बयां नहीं करती, बल्कि विनाश की शर्त पर बनाए गए बड़े बाँधों के निर्माण को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार भी करती है। इस संग्रह के लेखक अपने लेखकीय दायित्व को पूरी ईमानदारी के साथ रेखांकित करते हैं। उक्त विचार अक्षरा के प्रधान संपादक एवं राज्य निर्वाचन आयुक्त श्री मनोज श्रीवास्तव ने वरिष्ठ ललित निबंधकार डॉ. श्रीराम परिहार द्वारा रचित पुस्तक 'व्यथा–कथा डूब की' के लोकार्पण समारोह को बतौर मुख्य अतिथि संबोधित करते हुए व्यक्त किए।

पुस्तक लोकार्पण समारोह एवं चर्चा का आयोजन आईसेक्ट पब्लिकेशन, वनमाली सृजन पीठ, स्कोप ग्लोबल स्किल्स विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में दुष्यंत कुमार स्मारक पांडुलिपि संग्रहालय, भोपाल में किया गया। सर्वप्रथम अतिथियों द्वारा दीप प्रज्वलित कर एवं सरस्वती जी की प्रतिमा पर माल्यार्पण कर समारोह का शुभारंभ किया गया।

रिपोर्ट लेखन -संजय सिंह राठौर

जिए हुए लम्हों की बारिश है : संग्रह बरसात

पुस्तक विवरण–

पुस्तक शीर्षक : बरसात
विधा : काव्य संग्रह
कवि : उमेश कुमार गुप्ता
समीक्षक : डॉ. लता अग्रवाल 'तुलजा'
प्रकाशन : BFC पब्लिकेशन
पृष्ठ : 104
मूल्य : ₹200/–

डॉ. लता अग्रवाल 'तुलजा'

उमेशकुमार गुप्ता सेवानिवृत न्यायाधीश हैं. वे कला मर्मज्ञ हैं. कला के प्रति उनकी रुचि का एक उदाहरण मैंने उनके घर पर देखा जहाँ श्री गणेश की 1000 आकृतियों का संग्रहण है, साथ ही संस्कृति से जुड़ी कई धरोहर आपने संजोकर रखी है. इसके साथ ही साहित्य के प्रति भी आपकी अभिरुचि हमें उनके प्रथम संग्रह 'बरसात' में देखने को मिलती है. दरअसल यह उनके अतीत की स्मृतियों की बरसात है, यूँ एक न्यायाधीश का नाम आते ही हमारी कल्पना में एक सख्त मिजाज़ शख्सियत उभर कर आती है किंतु कहते हैं ना साहित्य मनुष्य को संवेदनशील बना देता है. उमेश गुप्ता जी की साहित्यिक अभिरुचि की परिणिति है यह पुस्तक, 'बरसात' यह बात में यूँ ही नहीं कह रही; इसका प्रमाण पुस्तक में उनके द्वारा लिखी भूमिका में आप पायेंगे. जहाँ उन्होंने यह पुस्तक समर्पित की है अपने पेट डॉगी स्पाइकी को मैं उनकी भावनाओं को नमन करती हूँ. अब तक माता–पिता, सम्बन्धियों को समपर्ण तो देखा था मगर अपने किसी पालतू जीव को ... पहली बार देखा है. स्पाइकी पर लिखी उनकी कुछ पंक्तियाँ देखिए, –सफेद बालों को/ सुंदरी की तरह झटकना/ पलंग के नीचे छुप जाना। पैरों के नाखून से जमीन कुरचना /अर्चना के पीछे–पीछे बच्चों की तरह भागना और फिर... अंत में एक दिन छोड़कर चले जाना, बरसात की बूंद की तरह / ज़हन को गीला कर जाना।

उमेश कुमार गुप्ता (लेखक) बरसात

अपनी कुछ कविताओं में वे बचपन की पहचान को ताजा करते हैं, मैं कह सकती हूँ कम से कम हमारी पीढ़ी ने उस बचपन को जिया है, सुखद स्मृति हैं ये 'खिलौने देखकर रूठना /ना मिलने पर जमीन पर लौट जाना/कागज की नाव तैराना / रेत में घरौंदे बनाना। स्कूल से जी चुराना । होमवर्क न करना / पेट दर्द का बहाना / केक कटने के पहले चख लेना / गिफ्ट मिलते ही खोलने को मचलना.' इन कविताओं में छोटी–छोटी बाल सुलभ शैतानियाँ हैं, जैसा कि वह कहते हैं ये जिंदगी में घटित घटनाओं की कविताएं हैं. आगे मैं कहना चाहूंगी यह जिए हुए लम्हों को साकार करती कविता हैं. उदाहरण सावन के महीने में उनका जो ऑब्जरवेशन है देखिये– 'शिवालयों की धूम । भोले का बहकना/ नदियों का बमकारा पिट्टू का खेलना / कीचड़ में गुप्पी घोपना. वही होली पर कांजी बड़ा, रंग अबीर गुलाल, भंग, ठंडाई की/ बसंती फाल्गुनी रंगीली मस्ती है।'

जब भी विसंगतियों की बात आती है तो कोरोना जैसे संवेदनशील विषय को भी वे उठाते हैं, शायद ही किसी कलमकार की कलम कोरोना जैसे विषय पर अछूती रही हो. आप भी कहते हैं अदृश्य वायरस ने ताकत दिखा दी/ परमाणु से बड़ी बला बता दी/राजा रंक की पहचान करा दी. बिसात में बंद कर औकात दिखा दी/हम सबने देखा है खौफनाक दौर वह कि दौलत तिजोरी में रखी रह गई और रिश्तों की पोटली बंधी रह गई, एक और बहुत ही संवेदनशील विषय वे लेते हैं 'औरत' लेकिन उनकी कल्पना में लाचार बेबस, आंसू बहाती औरत नहीं, स्वयं में सशक्त स्वाभिमान से भारी अपने अपमान पर प्रतिशोध की मशाल थामे खड़ी औरत है। वे कहते हैं–

''औरत हूँ मैं दिल शीशे का ना समझ पत्थर का है इससे मत खेल / चोट खाएगा जी ना पायेगा/ औरत हूँ मैं/जाल में बहुत फंस चुकी । अब खुद मुस्कुराहट में शहीद हो जाएगा/ औरत हूं, मैं आस्तीन का सांप बन रिझा मत मुझे/ इतना जहर पी चुकी हूं। डस लूंगी मर जाएगा.'' आज की नारी अबला नहीं सबला के रूप में अपने को देखना चाहती है. जिसे एक जज की पारखी नजर जान गई है सम्भव हैं अपने निर्णय काल के कुछ अनुभव भी इस कविता में शामिल हों.

आज देश में जिस तरह का सांप्रदायिक वातावरण है उस पर भी आपकी नजर जाती है, ''वह हिंदू थी या मुसलमान थी पता नहीं/ लेकिन राम और रहीम दोनों बदनाम हो गए।'' जिंदगी के कैनवास पर सब रंग हमारे मन चाहे कहां सजते हैं, लेकिन चाहे अनचाहे रंगों के बीच भी हमें गुजर करनी होती है. इस भाव को वे अपने अंदाज मैं कुछ इस तरह कहते हैं, कॉलेज का प्यार भटकाव इश्क था/ पसंद आती मैडम सहपाठियों के चित्र थे/ गुणी पत्नी तीन लायक बच्चे हैं/ फिर भी जिंदगी की किताब के कुछ पन्ने अधूरे हैं.'' जिन्हें वे रचना चाहते हैं, इसमें कुछ अनूठा करना चाहते हैं हमारी शुभकामनाएं कि वे इनमें कुछ अच्छा और सच्चा रचें।

संग्रह की सबसे मार्मिक कविता मुझे लगी ''आनंद'' जो संभवत अपने किसी प्रिय मित्र के विरह में लिखी है शायद- ''ए मेरे दोस्त / अथर्व को जिंदगी का पाठ पढ़ना बाकी था/ अंजलि की खुशियां अधूरी थी/ फिर भी जाना जरूरी था? सच कहूँ तो यह एक प्रश्न चिन्ह है एक अनुत्तरीय प्रश्न है जिसका किसी के पास कोई जवाब नहीं. इसी तरह हमारी भावनाओं को शब्द का आवरण ओढ़ा कर आत्मीय तक पहुंचाते हैं ख़त, देखिये आप क्या लिखते हैं ख़त के बारे में, ''इश्क का यह मंजर है/ कि जो हम नहीं सोचते/ वह भी समझ लेते हैं'' इश्क पर आपकी कई छोटी-छोटी किन्तु अर्थपूर्ण क्षणिकाएं भी हैं, ''इश्क करो भरपूर करो/ जमाना जलकर खाक ना होजाए/ वह इश्क ही क्या.'' एक और क्षणिका देखिये, ''सूखी नर्म घास को हरा करना/ इश्क तेरी याद दिलाता'' या ''तुझे संवरता देख /उस पर क्या गुजरेगी। यह सोच आईने ने भी आह भरी होगी.'' वही सूत्र शैली में लिखी उनकी कुछ क्षणिकाएं हैं-''कांटों पर चलो/ गुलाब अपने आप खेलेंगे'' गुलाब से खेलोंगे। कांटे तो लगेंगे। तिल जैसा नन्हा बिम्ब भी आपकी आंखों से अछूता नहीं रहा है- ''गाल का तिल बड़ा बवाली है/ जागते रहो की तर्ज पर चौकीदारी है/ रूप के निगहबानों पर ध्यान रखता है/उसे हर नजर से बचा कर रखता है।''

रिश्तों की गरिमा पर आपकी कलम अर्थपूर्ण रचती है ''रिश्तो में जब जाति धर्म भाषा नहीं/ मोहब्बत की खाद डाली जाती है/ तब प्यार के फूल खिलते हैं।''आज यह पंक्तियां अधिक प्रासंगिक हैं क्योंकि रिश्ते सारे टकसाली हो चुके हैं।''मुझे बहुत पहले सुनी वो पंक्तियाँ स्मरण हो आइ मैंने पीना छोड़ दिया उसका नाम लेकर एक दिन महफ़िल में बैठा था दोस्तों ने पिला दिया उसकी कसम देकर.'' जज साहब भी कुछ ऐसी ही चुटकियाँ लेते हैं- ''तेरे शहर के लोग। मुझे तुझसे ज्यादा जानते हैं/ तेरी कसम खिला कर हर गलत काम करवाते हैं।''

उनका चिंतन जाता है शीर्ष कविता 'बरसात' में ''एक दूसरे के झोपड़े सुधारते/ छत पर पैबंद लगाते / भुट्टे भूजते, भजिया बनाते / लोग गायब हैं.'' चाय पर आपकी 27 क्षणिकाएं हैं, मैं जिक्र करूंगी पत्नी अर्चना को समर्पित क्षणिका की. ''शाम को चाय हो/ चाय वाली हो/ ऐ चांद तेरे दीदार की/ जरूरत क्या हो.'' उनकी चाय की रेसिपी भी कुछ हटकर हैं जिसमें अदब की पत्ती है। प्यार का अदरक है/ रूठने की काली मिर्च है/ मनाने की शक्कर / ना हो वह चाय क्या. वह चाय हम अगली बार घर जाकर चखना चाहेंगे।

एक कवि के लिए सबसे संवेदनशील विषय यदि कोई है तो माँ और पिता, देखिए इस संबंध में आप क्या कहते हैं। दूध, दही, हल्दी के उपकरण का पहाड़ कहां से लाऊं/ जो तूने गोरा होने रगड़ा था। सोचा था बड़े होकर कर्ज कुछ चुकाएंगे / दौलतमंद कहलाएंगे / सपना वह सपना ही रहा / 100 दो तो 101 वापस करती है/ बड़ा आदमी कहकर लज्जत करती है/ माँ तो मां होती है ''मैं बार-बार कहती हूँ किसी भी तरह कम नहीं होती भूमिका पिता की इसीलिए 'छोटी सी चोट पर याद आती है उई मां और बड़े-बड़े हादसों में याद आता है अरे बाप रे।' उमेश जी भी अपनी कविता में पिता को स्मरण करते हुए कहते हैं'' कौन कहता हैं कौन कहता है/ पिता मरता है / पिता तो अपने बच्चों में / जीवित रहता है।

वसीयत पर वे तीन दृश्य प्रस्तुत करते हैं, कैसे पिताजी अपनी खुशियां होम कर मकान बनाते हैं, वसीयत तैयार करते हैं और बुढ़ापे में वही वसीयत झंझट की जड़ बन जाती है. पिता को अफसोस है क्यों बनाई यह वसीयत, बेटा चाहता है पिता जाए तो वह वसीयत अपनी पत्नी और बच्चों के नाम करें, बेटी नहीं चाहती पिता मरे और उसकी ड्योढ़ी खत्म हो, पत्नी चाहती है मकान रहे ना रहे माथे का सिंदूर रहे, यह आज का सच है और भी कई बातें हैं किन्तु सबका जिक्र संभव नहीं है. अंत में कुछ वक्रोक्ति और उलट बसिया के रूप में कुछ पंक्तियों का जिक्र करना चाहूंगी 'आज करवा चौथ है चाँद का चाँद को इंतजार है,' तेरी आंखों में इंतजार देखा है/ मेरा ना सही किसी और का देखा है, मौत के बाद तारीफ सुनकर फिर जीने का मन हो गया. 'बड़े खुश रहते हैं वे लोग जिनकी याददाश्त कमजोर रहती है।' कुल मिलाकर बेहद सहज, सरल, जिंदगी से जुडी शब्दावली में, अनावश्यक अलंकारों से बचते हुए, कम शब्दों में बहुत गहरी और अर्थपूर्ण बातें हैं, संवेदनाओं से भरी कवितायें हैं. मैं आपको बहुत-बहुत बधाई देती हूँ, आपकी कलम अनवरत कुछ रचती रहे।

वरिष्ठ साहित्यकार
संपर्क : 30 सीनियर एम् आई जी, अप्सरा कॉम्प्लेक्स,
इंद्रपुरी भेल क्षेत्र भोपाल -462022

■

सम्राट विक्रमादित्य के सम्मान में वार्षिक विक्रमोत्सव, विश्वविद्यालय का नामकरण और अब महानाट्य मंचन की पहल

गौरवशाली इतिहास से युवा वर्ग को परिचित करवाने का सशक्त माध्यम बना, महानाट्य सम्राट विक्रमादित्य

अशोक मनवानी

मुख्यमंत्री डॉ मोहन यादव की पहल पर विक्रम संवत जिनके नाम पर प्रारंभ हुआ ऐसे कल्याणकारी शासक रहे सम्राट विक्रमादित्य के सम्मान में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। इसमें विक्रम विश्वविद्यालय का नामकरण, सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय करने का निर्णय भी शामिल है। इसके पूर्व वार्षिक विक्रम उत्सव की शुरुआत कर राज्य सरकार ने सम्राट विक्रमादित्य को यथोचित सम्मान देने का कदम उठाया था। इस क्रम में हाल ही में सम्राट विक्रमादित्य महानाट्य का मंचन एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने इस महा नाट्य के माध्यम से रंगमंच के महत्व से भी पूरे राष्ट्र को अवगत करवा दिया है। वैसे तो इस डिजिटल युग में सूचना और मनोरंजन के कई फॉर्मेट लोकप्रिय हो चुके हैं, लेकिन भारतीय नाट्यशास्त्र की सुदृढ़ और समृद्ध परंपरा से जन जन को विशेष रूप से युवा वर्ग परिचित करवाने के लिए नई दिल्ली में सम्राट विक्रमादित्य नाटक का निरंतर तीन दिन मंचन होना महत्व रखता है। बहुत दिन नहीं हुए जब हम डिजिटल तकनीक को आत्मसात कर बैठे थे। ऐसा लगता था कि पारंपरिक कलाओं को हम भूल रहे हैं। लेकिन मध्य प्रदेश से जो संदेश पूरे राष्ट्र में पहुंचा है वह यह है कि अभिनय, प्रकाश संयोजन,संगीत वेशभूषा और विशाल मंच के माध्यम से हमारे पौराणिक चरित्रों का जीवन सामने आना चाहिए। हमारे वे आदर्श शासक और आराध्य जो युवा पीढ़ी द्वारा भुला दिए गए हैं या युवा पीढ़ी को हमने उनसे परिचित ही नहीं करवाया तो इसमें कसूर वर्तमान पीढ़ी का भी है। युवाओं के पास समय भी है। सृजन की शक्ति भी है , जिज्ञासा का तत्व भी विद्यमान है तो फिर उन्हें इन राष्ट्र के आदर्श प्रतीकों की जानकारी से वंचित क्यों रखा जाए और बच्चे भी कलाओं के प्रति रुचि रखते हैं,वे भी इस विधा के लिए जिज्ञासु हो सकते हैं। यदि उन्हें महान व्यक्तित्वों के बारे में ज्ञानवर्धक विवरण देने वाले नाटक मंचन से जोड़ा जाए।

प्रतापी शासक राजा भोज और अन्य सेनानियों की गाथा भी आएगी मंच पर

भोपाल में कुछ वर्ष पूर्व लाल परेड मैदान पर जाणता राजा का मंचन हुआ था जिसमें शिवाजी महाराज के कृतित्व को दर्शाया गया था।

इस नाटक के मंचन से यह जागृति प्रारंभ हो जाती लेकिन वह लहर ना बन सकी। एकाध मंचन हुआ और मामला समाप्त हो गया। देश की राजधानी में लाल किले पर तीन दिन लगातार सम्राट विक्रमादित्य महानाट्य का मंचन मध्य प्रदेश के लिए गर्व की बात है। यह मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव का नवाचार है। हमारे ऐसे दानवीर शासक जिन्होंने वीरता और न्याय के क्षेत्र में भी दृष्टांत स्थापित किए, वे पाठ्य पुस्तकों में तो आ गए हैं लेकिन पाठ्य पुस्तकों से बाहर मंच तक क्यों ना पहुंचें। आखिर युवा पीढ़ी को उनकी विस्तार पूर्वक जानकारी क्यों नहीं दी जाना चाहिए? यह नवाचार आगे जाएगा अन्य राज्यों में भी न केवल सम्राट विक्रमादित्य के कार्यों की जानकारी, नागरिकों को मिलेगी बल्कि भगवान राम, भगवान श्री कृष्ण, राजा भोज, सम्राट अशोक और स्वतंत्रता सेनानियों सहित भारत के गौरव रहे अन्य महापुरुषों के कृतित्व की गाथा बताने वाली नाट्य प्रस्तुतियां होंगी। दिल्ली में हुए नाट्य मंचन सफल रहे हैं। हाथी, घोड़ों के उपयोग और बीसियों की संख्या में कलाकार दल के साथ इतिहास के उस दौर को जीवंत करना साधारण कार्य नहीं है। संस्कृति विभाग, विक्रमादित्य पीठ, सामाजिक संगठन और सांस्कृतिक संगठन इसके लिए एकजुट हुए। दिल्ली की मुख्यमंत्री ने इन कार्यक्रमों के लिए जो समन्वय किया उसकी भी मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने प्रशंसा की है।

युवाओं को मिलेगी प्रेरणा

कलाओं के विकास के साथ भारतीय गौरव का स्मरण करते हुए देश की प्राचीन संस्कृति, भारतीय अस्मिता को सामने लाना आवश्यक है। प्रधानमंत्री श्री मोदी ने सिर्फ कहने के लिए विरासत से विकास की बात नहीं कही, वे चाहते हैं इसका दायरा विस्तृत हो। हमारे युवा हेरिटेज वॉक करें। वे किलों और स्मारकों को देखें। तत्कालीन

शासकों के शौर्य से परिचित हों। भारतीय स्वाभिमान के प्रसंग चर्चा का विषय बनें। सिर्फ बंद कमरों में संगोष्ठी ना हो बल्कि भारत के ऐसे गौरवशाली व्यक्तित्व बच्चों के बीच भी जाने जाएं। स्कूली पाठ्यक्रम से लेकर विद्यालयों, महाविद्यालय के पाठ्यक्रमों में सगर्व उनका उल्लेख हो और नाट्य मंचन उस थ्योरी को प्रैक्टिकल रूप में रंगमंच पर प्रस्तुत करे। महानाट्य सम्राट विक्रमादित्य का मंचन युवाओं को रंगमंच विधा की ओर आकर्षित करने के लिए प्रेरित करेगा।

रंगमंच कलाकार भी हुए उत्साहित

रंगमंच से जुड़े देश के हजारों कलाकारों का मन हर्षित है और वे मुख्यमंत्री डॉ. यादव के प्रति आभार का भाव रखते हैं जो उन्होंने इस कला को महत्व दिया और राज्याश्रय भी दिया। सैकड़ों कलाकारों को प्रोत्साहित किया। थिएटर की शक्ति सही दिशा में और सही विषय को लेकर दिखाई दी है।

(लेखक जनसंपर्क विभाग में प्रभारी संयुक्त संचालक हैं।)

सम्राट विक्रमादित्य महानाट्य की दिल्ली में भव्य प्रस्तुति

उपराष्ट्रपति श्री जगदीप धनखड़ ने कहा है कि सम्राट विक्रमादित्य ने अपने शासन से उस काल को और भारत को गौरवान्वित किया। हमारी सांस्कृतिक चेतना के विकास में सम्राट विक्रमादित्य का अतुल्य योगदान रहा। वे शासकों के लिए आज भी एक आदर्श हैं। वे बड़े प्रजा वत्सल थे। उन्होंने शासकों को सिखाया कि एक राजा को किस तरह अपनी प्रजा की सेवा करनी चाहिए। उन्होंने अपने शासनकाल में कला संस्कृति, साहित्य और विज्ञान के संरक्षण और संवर्धन से भारत राष्ट्र को समृद्ध किया। उप राष्ट्रपति श्री धनखड़ ने दिल्ली के लाल किला परिसर स्थित माधादास पार्क में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा आयोजित सम्राट विक्रमादित्य महानाट्य महामंचन के शुभारंभ कार्यक्रम को संबोधित कर रहे थे। उप राष्ट्रपति श्री धनखड़ एवं अन्य अतिथियों ने इस तीन दिवसीय सम्राट विक्रमादित्य महानाट्य महामंचन आयोजन का दीप प्रज्ज्वलित कर शुभारंभ किया। सम्राट विक्रमादित्य महानाट्य महामंचन 14 अप्रैल तक लगातार जारी रहा। महामंचन की शुरुआत राष्ट्र गान से हुई।

उप राष्ट्रपति श्री धनखड़ ने कहा कि हमारी संस्कृति एक मिसाल है कि भारतीय जीवन मूल्यों के साथ जीवन कितना सहज और सरल हो सकता है। उन्होंने कहा कि भारतीयता हमारी पहचान है और राष्ट्रवाद हमारा परम धर्म है। सम्राट विक्रमादित्य ने अपने शासनकाल में राष्ट्र के निर्माण में अमूल्य योगदान दिया। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के कुशल नेतृत्व में हमारा देश बदल रहा है। भारत में भूतल की गहराई से आकाश की ऊंचाइयों तक हर तरफ विकास ही विकास हो रहा है। प्रधानमंत्री श्री मोदी की दूरदर्शिता से भारत की पुरानी प्रतिष्ठा पुनर्स्थापित और जीवंत हो रही है। उन्होंने कहा कि भाषा हमारी सांस्कृतिक चेतना की धुरी है। हमें अपनी भाषा पर गर्व करना चाहिए। हमारी नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी भारत की सांस्कृतिक चेतना के प्रसार और भारतीय ज्ञान परम्पराओं पर आधारित शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया है।

उप राष्ट्रपति श्री धनखड़ ने मध्यप्रदेश सरकार द्वारा दिल्ली में किए जा रहे इस महा आयोजन के लिए मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव को बधाई और साधुवाद देते हुए कहा कि केंद्र एवं दिल्ली सरकार के साथ मिलकर यह सिलसिला आगे भी जारी रहना चाहिए। हमें हमारी संस्कृति के संवर्धन के लिए हमेशा प्रयास करना चाहिए और उन्हें खुशी है कि मध्यप्रदेश में यह कार्य बड़ी लगन और कुशलता से किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत को सहेजे रखना है। हमें इसे वैश्विक स्तर पर मान्यता दिलाने के लिये प्रयास करना चाहिए।

धीरता, वीरता, संवेदनशीलता के प्रतीक थे सम्राट वीर विक्रमादित्य मुख्यमंत्री डॉ. यादव

मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने सम्राट वीर विक्रमादित्य के शासनकाल को भारतीय इतिहास का गौरवशाली काल बताते हुए कहा कि हमारी संस्कृति को सहेजने और संवारने में विक्रमादित्य का अमिट योगदान है। उन्होंने सिर्फ़ शासन को सुशासन की व्यवस्था में बदला। वे अदम्य साहस, धीरता, वीरता और संवेदनशीलता के प्रतीक थे। उन्होंने अपनी प्रजा को कर्जमुक्त किया। वे अनेकानेक गुणों से युक्त थे। गरीबों, लाचारों, वंचितों को उनका हक दिलाने की प्रेरणा हमें सम्राट विक्रमादित्य से ही मिलती है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि सम्राट विक्रमादित्य हमारे लिए सदैव स्तुत्य रहेंगे, उन्होंने हमें जनता की सेवा की सीख दी है। वे अपनी प्रजा का सुख-दुख जानने के लिए भेष बदलकर प्रजा के बीच जाते थे। उनकी यह संवेदनशीलता बताती है कि प्रजा के सुख में ही शासक का सुख है।

मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि हमारी संस्कृति सदैव समृद्ध रही है और आगे भी रहेगी। हमारी संस्कृति मां गंगा की अविरल धारा की तरह सदैव अक्षुण्ण रहेगी। हमें अपने अतीत पर गर्व है और यह भावना हमें भावी पीढ़ी तक भी पहुंचानी है। देश की राजधानी दिल्ली में विक्रमादित्य महानाट्य के महामंचन के मूल में हमारी यही मंशा है। उन्होंने सभी से इस आयोजन का लाभ उठाकर अपने इतिहास के गौरवशाली काल को देखने, समझने और आनंद लेने की अपील की।

सांस्कृतिक उत्कर्ष का सोपान था विक्रमादित्य का शासन-केन्द्रीय मंत्री श्री शेखावत

केन्द्रीय पर्यटन और संस्कृति मंत्री श्री गजेंद्र सिंह शेखावत ने कहा कि मध्यप्रदेश सरकार द्वारा दिल्ली में सम्राट विक्रमादित्य महानाट्य का आयोजन देश के इतिहास को जीवंत करने के साथ-साथ हमारी सांस्कृतिक चेतना को भी सशक्त कर रहा है। उन्होंने कहा कि सम्राट विक्रमादित्य का शासनकाल भारत की सांस्कृतिक ऊंचाइयों का उत्कर्ष था। उनके शासन पर आधारित महानाट्य का मंचन विक्रमादित्य के उस स्वर्णिम युग का मंचन है। वे ज्ञान, विज्ञान कौशल के पोषक और वीरता की मिसाल थे। वे आदर्श शासक थे। उन्होंने अपने नवरत्नों के जरिए भारत की संस्कृति को उच्चतम स्तर पर ले जाने का प्रयास किया। वीर विक्रमादित्य के शासनकाल का मंचन एक नई धारा है, एक नया सोपान है, जिसका आगाज मध्यप्रदेश सरकार ने किया है। उन्होंने इस पहल के लिए मुख्यमंत्री डॉ. यादव को बधाई और शुभकामनाएं दीं।

दिल्ली और मेरे लिए परम सौभाग्य की बात- सीएम श्रीमती गुप्ता

दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती रेखा गुप्ता ने मुख्यमंत्री डॉ. यादव का आभार जताया। उन्होंने कहा कि डॉ. यादव ने दिल्ली की जनता को विक्रमादित्य के चरित्र और शौर्य से साक्षात्कार करने का अवसर दिया है। मेरा और दिल्ली का परम सौभाग्य है कि आज सम्राट विक्रमादित्य को और अधिक समझने का अवसर प्राप्त हुआ। सौभाग्य की बात है कि शौर्य और पराक्रम के प्रतीक सम्राट विक्रमादित्य पर महानाट्य का महामंचन यहाँ हो रहा है। दिल्लीवासी आज इतिहास से रुबरू हो रहे हैं। वे सम्राट विक्रमादित्य के शौर्य, पराक्रम, वीरता, कुशलता और सुशासन को अपनी आंखों से देख रहे हैं इसके लिए मुख्यमंत्री डॉ. यादव का बहुत-बहुत धन्यवाद। कार्यक्रम में मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री मंगुभाई पटेल, श्री शिवप्रकाश, उप राष्ट्रपति की धर्मपत्नी डॉ. श्रीमती सुदेश धनखड़, मध्यप्रदेश के प्रमुख सचिव पर्यटन और संस्कृति श्री शिवशेखर शुक्ला, प्रमुख सचिव आनंद विभाग श्री राघवेंद्र कुमार सिंह, मुख्यमंत्री के संस्कृति सलाहकार डा. श्रीराम तिवारी, डॉ. अतुल जैन सहित मध्यप्रदेश एवं दिल्ली सरकार के मंत्रीगण, विधायकगण तथा विक्रमादित्य महानाट्य महामंचन के 250 से अधिक कलाकारों सहित बड़ी संख्या में मध्यप्रदेश एवं दिल्ली के कलाप्रेमी और नागरिक उपस्थित थे। 14 अप्रैल तक चला महानाट्य का महामंचन रविवार 13 अप्रैल से आयोजित हुए महानाट्य के महामंचन में मुख्य अतिथि के रूप में केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण तथा रसायन एवं उर्वरक मंत्री श्री जे.पी. नड्डा शामिल हुए। सम्राट विक्रमादित्य महानाट्य महामंचन 13 एवं 14 अप्रैल को भी हुआ। इसमें 250 कलाकार सम्राट विक्रमादित्य की जीवन गाथा को जीवंत कर रहे हैं। इस महानाट्य के दृश्यों को सजीव बनाने के लिए पालकी, रथ, घोड़ों और एलईडी ग्राफिक्स के स्पेशल इफेक्ट का प्रयोग किया जा रहा है। कार्यक्रम में महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ द्वारा विक्रमादित्य-कालीन मुद्रा और मुद्रांक की प्रदर्शनी भी लगाई गई। भारतीय ऋषि वैज्ञानिक परंपरा पर केंद्रित आर्ष भारत प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया है। इसमें 100 से अधिक ऋषियों के जीवन और योगदान को प्रदर्शित किया गया। जनसम्पर्क विभाग द्वारा मध्यप्रदेश का विकास एवं उपलब्धियां विषय पर और पर्यटन एवं उद्योग विभाग द्वारा भी प्रदर्शनियां भी यहां लगाई गई हैं।

सत्यमेव जयते

प्रधान मंत्री
Prime Minister

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि उज्जैन के महान सम्राट विक्रमादित्य के गौरव और वैभव को लोगों तक पहुंचाने के लिए 'विक्रमोत्सव' का आयोजन किया जा रहा है। इस कड़ी में दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किला मैदान में तीन दिवसीय 'सम्राट विक्रमादित्य महानाट्य' और इससे जुड़ी प्रदर्शनियों का आयोजन सराहनीय है।

युगपुरुष सम्राट विक्रमादित्य का शासनकाल जनकल्याण, सुशासन और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए जाना जाता है। वह भारत की न्यायप्रिय और लोककल्याणकारी नेतृत्व परंपरा के प्रतीक थे। उन्होंने साहित्य, कला और विज्ञान को जिस रूप में प्रोत्साहित किया, वह आज भी हमारे लिए आदर्श है। उनके काल की 'विक्रम संवत' परंपरा आज भी भारतीय संस्कृति की पहचान है।

मुझे खुशी है कि मध्य प्रदेश के ऊर्जावान मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव जी के मार्गदर्शन में आयोजित इस महोत्सव के माध्यम से सम्राट विक्रमादित्य की गौरवगाथा को जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया जा रहा है।

इस महानाट्य और प्रदर्शनी का महत्व एक सांस्कृतिक आयोजन से कहीं अधिक है। इसका उद्देश्य हमारे इतिहास, हमारी जड़ों और हमारे आत्मबोध को एक उत्सव के रूप में मनाने का है। मुझे विश्वास है कि ऐसे आयोजनों से वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियां भारत के स्वर्णिम अतीत से परिचित होंगी और उससे प्रेरणा लेकर राष्ट्र निर्माण में आगे बढ़ेंगी।

अपने सांस्कृतिक मूल्यों को आधार बनाकर, आधुनिकता और विरासत को साथ लेकर, इस अमृत काल में विकसित भारत की ओर अग्रसर राष्ट्र पर हम सभी को गर्व है। इस यात्रा में सम्राट विक्रमादित्य समेत हमारे महापुरुषों से मिली न्याय, पराक्रम और सेवा जैसी शिक्षाएं हमारा मार्गदर्शन करेंगी।

आशा करता हूं कि यह आयोजन देश की सांस्कृतिक चेतना को और सशक्त बनाते हुए, युवा पीढ़ी को अपने गौरवशाली अतीत से जोड़कर आत्मविश्वास से पूर्ण, जागरूक और कर्तव्यनिष्ठ नागरिक के रूप में तैयार करने में सहायक सिद्ध होगा।

इस विश्वास के साथ कार्यक्रम के आयोजकों एवं इसमें हिस्सा ले रहे देश भर के कलाकारों को आयोजन की सफलता की हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
चैत्र 21, शक संवत् 1947
11 अप्रैल, 2025

भोपाल स्थित माया देवी गुप्ता ओपन आर्ट गैलरी ने चतुर्थ स्थापना दिवस मनाया

1 अप्रैल 2025 भोपाल। उमेश कुमार गुप्ता और योगेश कुमार गुप्ता का जन्मदिन मनाया गया। उमेश कुमार गुप्ता द्वारा लिखित बरसात काव्य संग्रह का विमोचन किया गया। श्रीमति लता अग्रवाल द्वारा सारगर्भित सामीक्षा की गई। आर्ट एवं हॉबी पॉसबिल ग्रुप के कलाकारों ने उपस्थित होकर परिचय दिया वरिष्ठ सदस्यो को सम्मानित किया गया है पोसिबल ग्रुप संयोजक भास्कर रेड्डी जादूगर एवम सोनम नामदेव द्वारा opne mic कार्यक्रम रखा गया जिसमे सभी ने अपनी मन की बात, अनुभव रखे और उन्हें पुरस्कृत किया गया। झागरिया बस्ती के कलाकारों ने भी भजन गायन किया। बैठक हाउस के बाल कलाकारो ने पारंपरिक गायन प्रस्तुत कर गुरु सुरेखा कामले जी का नाम गौरवान्वित किया। पिकासो आर्ट पर सृष्टि गर्ग की प्रदर्शनी उल्लेखनीय रही। युवा कवि चंदन दास का कविता पाठ समूह सदस्य का कला प्रदर्शन गायन उदगार स्नेह बंधन ने गैलरी में आर्ट की इन्द्र धनुषी आभा बिखेर दी। डॉ. नारायण व्यास जी साधना व्यास डॉ. सुभाष अत्रे वरिष्ठ जन की आशीर्वाद गंगा ने माहौल पवित्र कर दिया। अनेक लिम्का वर्ल्ड होल्डर, रिकॉर्ड धारी कलाकारों, माचिस मैन, काइन नोट होल्डर कबाड़ से जुगाड़ के राजा, डाकटिकट किंग, सिक्के के omg. पत्थर में प्राण फूंकने वाले, बाँस के जादूगर, बच्चों के रेड्डी अंकल, गोबरशिल्प को स्थापित करने वाले गोबर को सोनम करने वाले ने आर्ट गैलरी में इस बार चार चाँद लगाकर कला हुनर, की चाँदनी बिखेर दी 86 साल की माया गुप्ता के उत्साह ने चार पीढ़ी दो बेटों, दो बेटो की दो बेटियों, दो बेटियों के दो बच्चों, दो दमाद सहित उपस्थित होकर उत्साह वर्धन किया गाँव के खुशनुमा माहौल में, प्यार के कंडे में सेकी आटे की बाटी, नीले आसमानी बैंगन से सुख से भरा भर्ता. स्नेह से परिपूर्ण सोधियानी दाल, सफ़ेद उपवास की साबूदाना खिचड़ी खटमिठ्ठी ज़िंदगी के रंग बिखेरती चटनी ने स्वाद के रंग भर दिये गौड़ आर्ट कार्यशाला में भाग लेने वाले नन्हे कूँचिकारो को पुरस्कृत किया गया।

लवकुश गुप्ता का परिवार सबका हार्दिक अभिनंदन करता है शब्दातीत आभार व्यक्त करता है सबको मिल–जुलकर कार्य करने पर ही यह जादू संभव है।

संयोजक: माया देवी गुप्ता, आर्ट गैलरी भोपाल

समवेत

डॉ अम्बेडकर का सन्देश सार्वभौमिक है, जो समानता और बन्धुत्व का मार्ग प्रशस्त करता है – प्रो. शैलेन्द्र शर्मा

राष्ट्रीय शिक्षक संचेतना द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में हुआ भारतीय परंपरा में वैशाखी पर्व और डॉ भीमराव अंबेडकर के वैश्विक सन्देश पर मंथन देश की प्रतिष्ठित संस्था राष्ट्रीय शिक्षक संचेतना द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में भारतीय संस्कृति और परम्परा में वैशाखी पर्व पर मंथन हुआ। कार्यक्रम में डॉ भीमराव अंबेडकर के जीवन दर्शन और अवदान पर वक्ताओं ने प्रकाश डाला। संगोष्ठी के मुख्य वक्ता विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के कुलानुशासक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर शैलेंद्र कुमार शर्मा थे। मुख्य अतिथि नागरी लिपि परिषद नई दिल्ली के महामंत्री डॉ हरिसिंह पाल थे। विशिष्ट अतिथि भारत नॉर्वेजियन सांस्कृतिक फोरम के संस्थापक अध्यक्ष श्री सुरेश चंद्र शुक्ल शरद आलोक, ओस्लो नॉर्वे, संस्था के संगठन मंत्री डॉक्टर प्रभुलाल चौधरी, डॉ मुक्ता कान्हा कौशिक, रायपुर, डॉ मुक्ति शर्मा, श्रीमती श्वेता मिश्रा बरेली ने विचार व्यक्त किए।

मुख्य व्याख्यान देते हुए प्रो शैलेन्द्र कुमार शर्मा ने कहा कि वैशाखी पर्व ऋतु वैभव, प्रकृति राग और सांस्कृतिक विरासत का समन्वित पर्व है। इस पर्व पर मनुष्य प्रकृति के उल्लास को विविध गीत, संगीत, और नृत्य के माध्यम से प्रकट करता है। वैशाखी पर्व को दक्षिण एशिया में कई नामों से पुकारा जाता है, लेकिन सभी स्थानों पर इसमें भारत की सनातन

संस्कृति के दर्शन होते हैं। डॉ अंबेडकर का सन्देश सार्वभौमिक है, जो समानता और बन्धुत्व का मार्ग प्रशस्त करता है। उन्होंने लोकतांत्रिक व्यवस्था की मजबूती के लिए सामाजिक परिवर्तन की अलख जगाई। उनकी चिन्ताएँ हमें गहरे सामाजिक – सांस्कृतिक उत्तरदायित्व से जोड़ती हैं। उनका जीवन दर्शन क्रांतिकारी वैचारिकता एवं नैतिकता के सूत्रों पर आधारित है। भारतीय समाज के साथ-साथ संपूर्ण विश्व में जहां कहीं भी विषमतावादी भेदभाव मौजूद है, वहां डॉ. अम्बेडकर के दृष्टिकोण को चरितार्थ करने की आवश्यकता है।

इस आयोजन में सम्मिलित मुख्य अतिथि डॉ हरिसिंह पाल ने अपने उद्बोधन में वैशाखी पर्व के महत्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि यह पर्व सम्पूर्ण भारत वर्ष में मनाया जाता है। उन्होंने कहा कि डॉ भीमराव अंबेडकर ने स्वतंत्र भारत के लिए जो सपना देखा था, उसे साकार करने की आवश्यकता है।

नवसंवत्सर पर शिप्रा तट पर सूर्य को अर्ध्य अर्पित कर किया गया नववर्ष का अभिनन्दन सृष्ट्यादि युगादि नवसंवत्सर आयोजन समिति द्वारा

विक्रम विश्वविद्यालय के कुलानुशासक प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा श्रेष्ठी श्री जगराम गुप्त स्मृति नव संवत्सर अलंकरण से सम्मानित

सृष्ट्यादि युगादि नवसंवत्सर आयोजन समिति द्वारा कालगणना के केंद्र उज्जैन स्थित शिप्रा तट पर नवसंवत्सर के अवसर पर शिप्रा तट पर सूर्य को अर्ध्य प्रदान करते हुए पुण्यसलिला शिप्रा का पूजन कर नववर्ष का अभिनन्दन किया गया। आयोजन में नवसंवत्सर अभिनन्दन करते हुए मध्य प्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री डॉ मोहन यादव ने देशवासियों को नववर्ष की मंगलकामनाएं अर्पित कीं। आयोजन में उज्जैन उत्तर के विधायक श्री अनिल जैन कालूखेड़ा, पूज्य महामंडलेश्वर स्वामी शांतिस्वरूपानंद जी, पूर्व कुलपति प्रो रामराजेश मिश्र, कुलानुशासक प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा, नव संवत संस्था के अध्यक्ष पंडित योगेश शर्मा, सचिव श्री प्रतीक जैन, वरिष्ठ शिक्षाविद श्री बी के शर्मा, समाजसेवी श्री विनोद काबरा की गरिमामयी उपस्थिति रही। अध्यक्षता विक्रम विश्वविद्यालय के कुलगुरु प्रोफेसर अर्पण भारद्वाज ने की।

कार्यक्रम में विक्रम विश्वविद्यालय के कुलानुशासक प्रोफेसर शैलेंद्रकुमार शर्मा को श्रेष्ठी श्री जगराम गुप्त स्मृति नव संवत अलंकरण से अलंकृत किया गया। उन्हें यह सम्मान साहित्य, संस्कृति एवं भाषा के क्षेत्र में अविराम शोधानुशीलन, लेखन एवं भारतीय साहित्यिक – सांस्कृतिक परिकल्पनाओं को व्यवहारिक रूप से प्रतिष्ठित करने के लिए अर्पित किया गया। अतिथियों द्वारा सम्मान स्वरूप उन्हें सम्मानपत्र, श्रीफल, पुष्पमाला और सम्मान राशि अर्पित की गई। सम्मान पत्र का वाचन श्री ऋषिकुमार गुप्ता ने किया।

कार्यक्रम में पंडित अक्षत व्यास ने पंचांग अनुसार वर्ष फल पर अपना उद्बोधन दिया। व्यास सांदीपनि वेद विद्यापीठ के छात्रों को इस अवसर पर प्रमाण पत्र प्रदान किए गए। संवत्सर मन्त्रों का पाठ किया गया, जिसमें विश्व कल्याण की भावना निहित है। कार्यक्रम का संचालन डॉ संतोष पण्ड्या ने तथा धन्यवाद ज्ञापन नव संवत नव विचार संस्था के सचिव श्री प्रतीक जैन ने किया।

कवि श्री प्रदीप नवीन बाल साहित्य सम्मान से भोपाल में सम्मानित

बाल कल्याण एवं बाल साहित्य शोध केन्द्र भोपाल द्वारा अपने 16 वें वार्षिकोत्सव में हिन्दी परिवार के उपाध्यक्ष सुपरिचित कवि श्री प्रदीप नवीन को श्री प्रभाकर दुबे बाल साहित्य का सम्मान, तुलसी मानस भवन में आयोजित भव्य कार्यक्रम में प्रदान किया गया। यह सम्मान श्रीमती स्नेहलता श्रीवास्तव, श्री द्रविन्द्र मोरे, प्रो खेमसिंह डेहरिया तथा श्रीमती श्यामा गुप्ता एवं संस्था के अध्यक्ष श्री महेश सक्सेना के द्वारा प्रदान किया गया। इस शुभ अवसर पर हिन्दी परिवार के हरेराम बाजपेयी, सन्तोष मोहन्ती, सदाशिव कौतुक, प्रणव व्यास के अलावा डॉ जवाहर कर्नावट, गोकुल सोनी, बी के सांघी आदि विशेष रूप से उपस्थित रहे।

दृढ़ता से आगे बढ़ती
मध्यप्रदेश की
जल संरक्षण यात्रा
डॉ. मोहन यादव, मुख्यमंत्री
नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री
जल गंगा संवर्धन
अभियान
30 मार्च से 30 जून, 2025
जल
गंगा
"प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के जल संरक्षण अभियान से प्रेरित मध्यप्रदेश में सरकार और समाज की साझेदारी से वर्षा जल की बूंद-बूंद बचाने का "जल गंगा संवर्धन" अभियान प्रारंभ हुआ है। जन, जल, जंगल, जमीन और वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए संकल्पित मध्यप्रदेश का यह अभियान जन आंदोलन बन रहा है।"
- डॉ. मोहन यादव, मुख्यमंत्री
• लघु एवं सीमांत किसानों के लिए बनाये जायेंगे 50 हजार खेत-तालाब
• 90 दिनों में 90 लघु एवं मध्यम सिंचाई परियोजनाओं का होगा लोकार्पण
• ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व वाले जल स्रोतों एवं देवालयों की सफाई के साथ होगा जीर्णोद्धार
• 1000 नए तालाबों का निर्माण एवं 50 से अधिक नदियों के वॉटर शेड क्षेत्र में जल संरक्षण एवं संवर्धन के होंगे कार्य
• अनुपयोगी तालाब, चेक डैम एवं स्टॉप डैम का जीर्णोद्धार एवं हर दिन एक जल संरचना का होगा लोकार्पण
• नर्मदा परिक्रमा पथ का चिन्हांकन कर जल संरक्षण एवं पौधरोपण की योजना
• ग्रामीण क्षेत्रों में पानी चौपाल का आयोजन, प्रत्येक गांव से महिला-पुरुषों का चयन कर तैयार किए जाएंगे 1 लाख जलदूत
• सीवेज का गंदा पानी जल स्रोतों में न मिले, इसके लिए सोक पिट निर्माण को प्रोत्साहन
• 54 जल संरचनाओं का संवर्धन एवं नहरों को विलेज-मेप पर "शासकीय नहर" के रूप में किया जाएगा अंकित
• बांध तथा नहरें होंगी अतिक्रमण मुक्त, करीब 40 हजार किलोमीटर लंबी नहर प्रणाली की होगी साफ-सफाई
• सदानीरा फिल्म समारोह, जल सम्मेलन, प्रदेश की जल परंपराओं पर आख्यान, चित्र प्रदर्शनी समेत विभिन्न जन जागरूकता कार्यक्रम होंगे आयोजित
आइये,
मिलकर सहेजें अपने
जल स्रोतों को
जल दूत के रूप में
सहभागिता के लिए
mybharat.gov.in
पर पंजीयन करायें
D19030/25
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी
आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2025

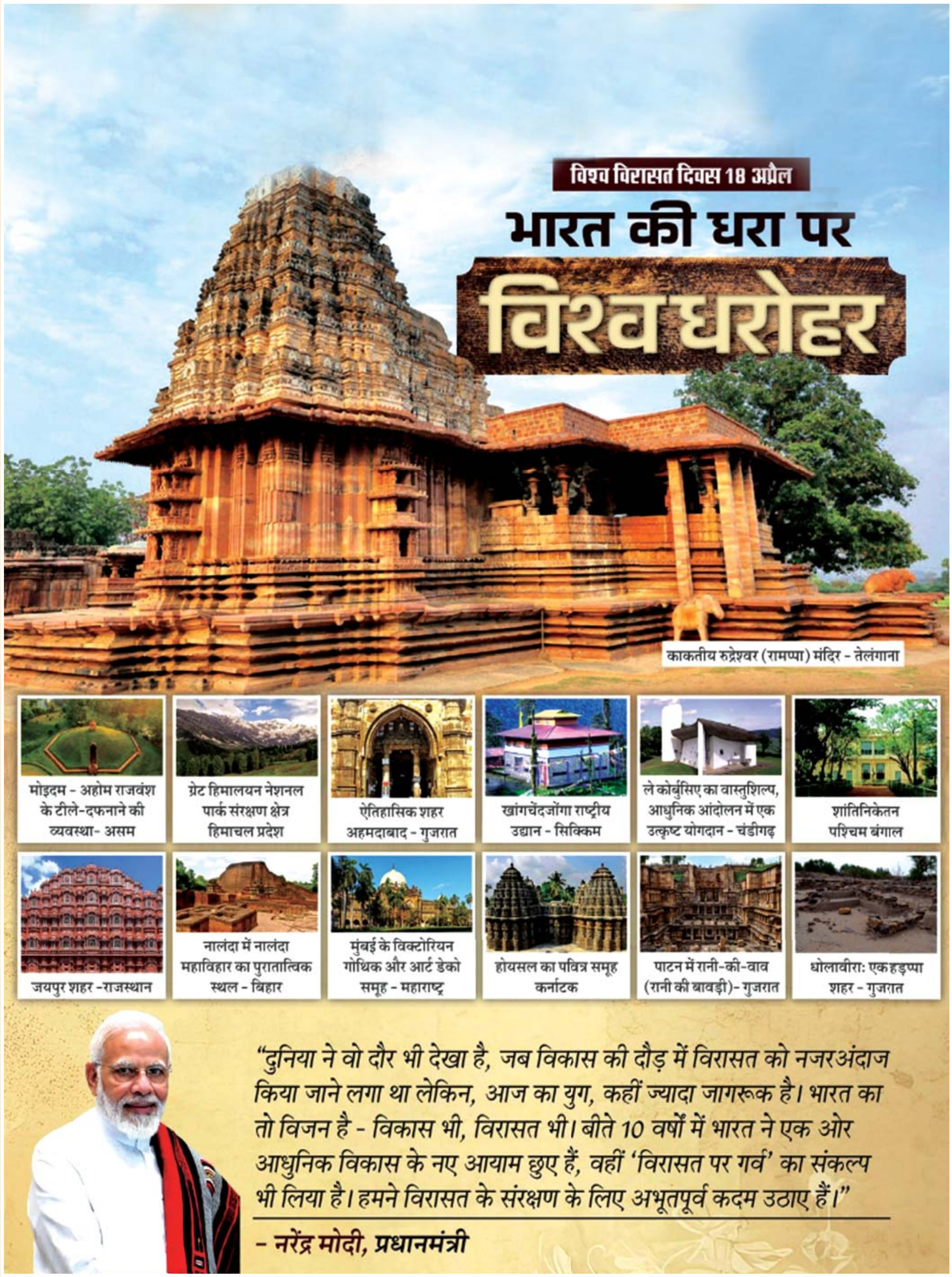

स्रोत: न्यू इंडिया समाचार 16-30 अप्रैल 2025 से साभार

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास